'उत्तररामचरितम्' और 'कुन्दमाला' का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री
पूनम वार्ष्णेय

निर्देशिका
डॉ० राज लक्ष्मी वर्मा
संस्कृत, पालि, प्राकृत एवम् प्राच्य भाषा विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१९८७

दो शब्द

संस्कृत साहित्य अपनी विपुल कृति-सम्पत्ति , भाव-गाम्भीर्य और शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से विश्व में अनुपमेय है । श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य दोनों की ही अत्यन्त समृद्ध परम्परा इस साहित्य की विशिष्टता है ।

संस्कृत का नाट्यसाहित्य तब और भी सुन्दर हो उठता है जब वह भारतीय संस्कृति के प्राणभूत कथानकों, आख्यानों और चरित्रों का आश्रय ग्रहण करता है । तब वह संस्कृति का संवाहक और पोषक बन जाता है । श्री राम और श्री कृष्ण के आख्यान को उपजीव्य बनाकर चलने वाले नाटक इसका उदाहरण हैं ।

इस शोध-प्रबन्ध में ऐसे ही दो नाटकों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । महाकवि भवभूति की रचना "उत्तररामचरितम्" और महाकवि दिङ्नाग की कृति "कुन्दमाला" दोनों ही रामाख्यान पर आधारित नाटक हैं तथा उपजीव्य कथानक की पारम्परिक गरिमा के साथ-साथ मौलिक उद्भावनाओं का आकर्षण भी अपने में संजोए हैं ।

इन दो नाट्यरत्नों के समुचित आंकलन के लिए जैसी समर्थ अन्तर्दृष्टि चाहिए, वह मेरे पास है ऐसा कहने का दुस्साहस मैं नहीं कर सकती तो भी एक विद्यार्थी की लगन से मैंने कार्य किया है । सुधीजनों से विनम्र अनुरोध है कि वह अपनी महत्त्वपूर्ण सम्मति और संशोधन से इसे कृतार्थ करेंगें ।

इस प्रसंग में मेरी शोध निर्देशिका डा० राजलक्ष्मी वर्मा जी के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना मेरा पवित्र कर्तव्य है । उन्होंने विषय-चयन से लेकर इस शोध-प्रबन्ध की प्रस्तुति तक मुझे अपना समुचित सहयोग प्रदान कर

मेरा सफल मार्गदर्शन किया है । उनके स्नेह, मधुर व्यवहार तथा शोध-सम्बन्धी विद्वतापूर्ण निर्देशन की प्रशंसा मेरे शब्दों से परे है । इसके अतिरिक्त मैं परम पूज्यनीय अपने माता-पिता के स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन को भी विस्मृत नहीं कर सकती, जिन्होंने अध्ययन के प्रति सदा ही ममत्वपूर्ण प्रेरणाएं दी । शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित कुछ कठिन तथा द्विविधापूर्ण स्थलों पर प्रकाश डालने के लिए तथा समय समय पर आवश्यक सहायता देने हेतु मैं डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल , डा० माताबदल जायसवाल तथा श्री जनार्दन प्रसाद पाण्डेय के प्रति हृदय से आभारी हूं । मैं श्री आफताब अहमद खां जी को धन्यवाद देती हूं जिन्होंने अल्प समय में शोध-प्रबन्ध का टंकण कार्य सम्पन्न किया । पुस्तकीय सहायता के लिए इस विश्वविद्यालय के पुस्तकालयीय कर्मचारियों को भी धन्यवाद प्रदान करती हूं ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डा० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूं जिन्हों ने इस विषय में शोध कार्य करने के लिए मुझे स्वीकृति प्रदान की ।

पूनम वाष्र्णेय

(पूनम वार्ष्णेय)

विषयानुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद

पंचम परिच्छेद

षष्ठ परिच्छेद

सप्तम परिच्छेद

विषय प्रवेश

विषय-प्रवेश

किसी भी देश की संस्कृति को जानने का प्रमुख साधन वहाँ का साहित्य ही होता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज के उत्थान-पतन, वृद्धि-ह्रास आदि का पूर्ण ज्ञान हमें वहाँ के साहित्य से ही होता है। इस प्रकार साहित्य के इस महत्त्व को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वरूप का जितना प्रचुर एवं प्रामाणिक वर्णन संस्कृत साहित्य में हुआ है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। यह साहित्य न केवल मूल्यों और परम्पराओं का धनी है अपितु अर्थ-गौरव और भाषा सौष्ठव की दृष्टि से भी विश्व साहित्य में अग्रणी है।

नाटकों का एक विपुल भण्डार इस संस्कृति के पास है, जो सहज ही इस देश के साहित्य का उपजीव्य और आदर्श बना है। अधिकांश नाटक महाभारत तथा रामायण को आधार बनाकर लिखे गये हैं, सरस, भावात्मक तथा करूणोत्पादक होने के कारण रामायण को अपना उपजीव्य बनाकर नाटककारों ने अनेक नाटक लिखे जिनमें प्रतिमानाटकम्, महावीरचरितम् उत्तररामचरितम्, कुन्दमाला, अनर्घराघवम्, हनुमन्नाटकम् आदि प्रसिद्ध नाटक हैं। इन नाटकों के द्वारा न केवल मनुष्य की मानवीयता के विभिन्न पक्ष उजागर होते हैं अपितु मानवीयता के एक समग्र और सम्पूर्ण आदर्श का भी निर्दशन और स्थापन होता है। इस प्रकार साहित्यकारों ने प्रत्येक रचना के माध्यम से किसी न किसी जीवन-दर्शन को उपस्थित किया है। श्री राम और श्री कृष्ण के आख्यान तो, बृहत् हिन्दु संस्कृति के जैसे पर्याय ही हो गये हैं। वाल्मीकि-रामायण की कथा ने न सिर्फ भारत को अपितु दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों को भी प्रेरित और प्रभावित किया है। इसका विभिन्न भाषाओं में रूपान्तर

हुआ है । मनोवैज्ञानिक तथा शास्त्रीय दृष्टि से इसका विश्लेषण करने पर सभी दृष्टियों से कसौटी पर खरी उतरती है ।

वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड की रामकथा को आधार बनाकर लिखे गये नाटकों में उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला अपने भाव-सौन्दर्य तथा कला-सौन्दर्य के कारण अत्यन्त विशिष्ट हैं । दोनों ही नाटकों का प्रारम्भ सीता निर्वासन से होता है तथा नाटककारों ने वाल्मीकीय रामायण के विपरीत नाटकों को सुखान्त बनाया है । दोनों नाटकों की विषय-वस्तु तथा घटनाएँ समान होने पर भी इस शोध-प्रबन्ध में इनकी शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा का प्रयास किया गया है ।

इस शोध-प्रबन्ध में दोनों नाटकों की शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की गयी है । कथावस्तु, पात्र, छन्द, अलंकार, प्रकृति-चित्रण तथा रसादि के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयास किया है । प्रथम परिच्छेद में वाल्मीकि-रामायण तथा रामकथा के महत्त्व और उपजीव्यता के कारणों पर विचार किया गया है और रामाख्यान को आधार बनाकर लिखे गये नाट्य साहित्य की विवरणात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है । द्वितीय परिच्छेद में भवभूति तथा दिङ्नाग के समय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा की गयी है । तृतीय परिच्छेद में उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला की कथावस्तु का शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है । नाटकों की कथावस्तु प्रख्यात कोटि की है । दोनों नाटकों का इतिवृत्त पंचसन्धियों अर्थप्रकृतियों तथा अवस्थाओं से सुश्लिष्ट है । चतुर्थ परिच्छेद में नायक राम, नायिका सीता तथा मुख्य पात्रों की व्याख्यात्मक तथा तुलनात्मक समीक्षा

प्रस्तुत की है । नाटककारों ने वाल्मीकि-रामायण के समान ही राम और सीता के उदात्त चरित्र की स्थापना की है । पंचम परिच्छेद में नाटकों के रसपरिपाक की विवेचना की गयी है । दोनों नाटकों का प्रधान रस "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" है । षष्ठ परिच्छेद में भवभूति तथा दिङ्नाग की शैली का सर्वांगीण अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है । इस परिच्छेद में भाषा, संवाद, प्रकृति-चित्रण, बिम्ब-योजना, छन्द व अलंकार आदि की दृष्टि से नाटकों की समीक्षा की गयी है ।

प्रथम परिच्छेद

संस्कृत नाट्य परम्परा में राम-कथा

भवभूति और दिङ्नाग द्वारा रचित उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला दोनों का ही स्रोत वाल्मीकि-रामायण है । वाल्मीकि-रामायण हमारी संस्कृति का मूल-आधार है । भारतीय साहित्य में रामायण और महाभारत दो आर्षग्रन्थ हैं । एक रामकथा से सम्बन्धित है तो दूसरा कृष्ण-कथा से सम्बन्धित है । दोनों ही हमारे देश के इतिहास हैं । जाति, देश और वंश के इतिहास के साथ ही वे दोनों मानवमात्र की विकास यात्रा के इतिहास हैं । जिनमें भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन के विभिन्न उच्च आदर्शों का सम्यक् समावेश हुआ है । बहुधा संस्कृत नाटकों की विषय-वस्तु रामायण तथा महाभारत से ही ली गयी है । शताब्दियों से इन्होंने अपनी पीयूषवर्षिणी कथा एवं आदर्श और वैविध्यपूर्ण चरित्रों के द्वारा यहां के जाति, जीवन को दिशा एवं प्रेरणा प्रदान की है । आज भी गांव-गांव और शहर में लोग रामायण एवं महाभारत की कथाओं को भक्ति-भाव से श्रवण-मनन कर भाव-विभोर हो जाते हैं ।

रामायण और महाभारत की शताब्दियों पुरानी एवं जानी पहचानी कथाओं को उपजीव्य बनाने का रहस्य उसके औचित्य एवं औदात्य में निहित है और साथ ही उसका एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है कि जब नाटककार यह जान लेता है कि सामाजिक दर्शक उसकी कथावस्तु से भली-भांति परिचित है तो वह "कहानी कहने"के श्रम से बच जाता है और इस श्रम से अवकाश पाकर वह अपना ध्यान घटनाओं की मार्मिकता तथा चरित्रों के विकास में केन्द्रित करता है । किसी नयी कहानी को प्रस्तुत करने में नाटककार को यह प्रधान चिन्ता रहती है कि उसके दर्शक गण इस अपरिचित कथानक में उलझ न जायें, तथा वह कथानक कितना सरस तथा भावात्मक है । इस कारण वह घटनाओं, पात्रों के चरित्रों की ओर अधिक ध्यान नहीं देपाता है तथा कहानी कला के इस प्रतिबन्ध में रहकर अपने विचारों को मूर्त रूप नहीं दे पाता है, किन्तु रामायण

तथा महाभारत के चिरपरिचित कथाओं में दर्शकों को कथासूत्र पकड़ने में कठिनाई नहीं होती । फलत: नाटककार कथा निर्माण के श्रम से बचकर घटनाओं के मर्मस्थल के विकास में तथा पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में अधिक तत्पर हो जाता है । यदि ऐसा नहीं होता तो रामायण और महाभारत की कथाओं को उपजीव्य बनाकर इतने नाटक नहीं लिखे जाते । इनकी कथाओं को उपजीव्य बनाने में यहां के कवियों एवं कलाकारों ने गौरव का अनुभव किया है ।

सरस, भावात्मक, करूणोत्पादक होने के कारण महाभारत की अपेक्षा रामकथा को अपना उपजीव्य बनाकर गीर्वाणवाणी- प्रणेता अनेक काव्य शिल्पियों ने महाकाव्य गद्यकाव्य, रूपक आदि के माध्यम से अपनी काव्यमन्दाकिनी को प्रवाहित किया है ।

रामकथा वाल्मीकि-रामायण तक ही सीमित नहीं रही है अपितु कितने ही युगों से इसने न सिर्फ भारत को बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों को प्रेरित और प्रभावित किया है । रामकथा एक भाषा या प्रदेश की सम्पत्ति होकर नहीं रही अपितु विविध प्रादेशिक भाषाओं में इसका प्रसार हुआ है । उदाहरणार्थ-तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, काश्मीरी, पंजाबी, असमिया, बंगला, गुजराती, मराठी, उड़िया आदि भाषाओं में अनेक रामायण लिखी गयी है । हिन्दी भाषा में तुलसीदास कृत "रामचरितमानस" धार्मिक ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है । इसने हिन्दुओं के अतिरिक्त बौद्धों और जैनियों को भी प्रभावित किया है । रामायण मुसलमानों को भी प्रिय थी । उर्दू में रामायण खुशतार, रामायण मन्जूम और रामायण बहार तथा फैजी और बदायूँनी कृत रामायण का फारसी अनुवाद हुआ है । वाल्मीकि-रामायण की कथा से आकृष्ट होकर मुगल सम्राट अकबर ने उसका फारसी भाषा में अनुवाद कराया । अकबर के समय तथा उसके बाद भी इस फारसी अनुवाद की हस्तलिखित प्रतियां तैयार की गई जो आज भी देश-विदेश के संग्रहालयों एवं

व्यक्तिगत संग्रहों में सुरक्षित हैं । आधुनिक युग में भी रामायण पर अनेक शोध कार्य हो रहे हैं । यह रामायण अनेक विदेशी विद्वानों के आकर्षण का पात्र रही है ।

यद्यपि इसका उत्पत्ति स्थान भारत है लेकिन इसने सुदूर देशों की भी यात्रा की है अतः रामायण और रामकथा की इस व्यापकता के आधार पर यह कह सकते हैं कि उसमें अवश्य ही ऐसी कोई विलक्षण शक्ति निहित है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । यही कारण है कि विश्व में विभिन्न भाषाओं में इस कथा को आधार बनाकर बहुत बड़ा मौलिक और व्याख्यात्मक साहित्य रचा गया है तथा मूल कथा और मूल संवेदनाओं को सुरक्षित रखते हुए इसके अनेक रूपान्तरण भी किये गये हैं ।

इसका चाहे मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से विश्लेषण करें या शास्त्रीय दृष्टि से सभी दृष्टियों से कसौटी पर खरी उतरती है । इस प्रकार राम कथा के नायक श्री राम, नायिका सीता और अन्य पात्र भारतीय संस्कृति के,मूल्यों, परम्पराओं और आदर्शों के प्रतीक बन गये । जैसे-जैसे भारतीय संस्कृति का विकास हुआ वैसे वैसे संवेदना के स्तर पर कवियों और लेखकों के समक्ष रामकथा के नये पक्ष और नये आयाम उद्घाटित होते चले गये । छठी शताब्दी ई0 पू0 से आज तक रचनाकारों ने अपनी अपनी रूचि और प्रतिभा के अनुसार इस कथा में अनेक कल्पनाएं और प्रसंग जोड़े हैं ।

उत्तररामचरितम् के रचियता भवभूति और कुन्दमाला के प्रणेता दिङ्नाग दोनों ने ही आधार रूप में वाल्मीकि की राम-कथा को अपनाया है ।अपने युग और व्यक्तित्व के अनुसार रचनाकारों ने जो नया वैशिष्ट्य दिया है, उसके स्वरूप की समीक्षा के लिए यह आवश्यक है कि भवभूति और दिङ्नाग के पूर्ववर्ती और परवर्ती उन सभी कवियों और नाटककारों की साहित्यिक अन्तरदृष्टि और प्रवृत्तियों का एक संक्षिप्त आंकलन प्रस्तुत किया जाये जिन्होंनें अपनी रचनाओं के लिए राम-कथा को उपजीव्य रूप से चुना ।

वाल्मीकि- रामायण ही रामकथा का बीज है । जिसकी कथा इस प्रकार है ।

इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ निःसन्तान होने के कारण पुत्र-प्राप्ति के लिए ऋष्यश्रृंग की अध्यक्षता में पुत्रेंष्टि यज्ञ कराते हैं । इधर रावण से पीड़ित सभी देवता उसके वध हेतु विष्णु से मनुष्य-रूप में आने की प्रार्थना करते हैं । विष्णु देवताओं को आश्वासन देते हैं तथा दशरथ के पुत्रों के रूप में जन्म लेते हैं । वसिष्ठ उनका नाम-करण तथा उपनयनादि संस्कार करते हैं ।

कुछ वर्षों के पश्चात् राजा दशरथ के पास विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए राम एवं लक्ष्मण को लेने के लिए आते हैं । वहीं दोनों भाई ताड़का, सुबाहु तथा मारीच का वध करते हैं । विश्वामित्र प्रसन्न होकर राम को दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं ।

यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के पश्चात् विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को राजा जनक के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए मिथिला ले जाते हैं । मार्ग में गौतम आश्रम में प्रवेश करके राम अहल्या का उद्धार करते हैं । स्वागत एवं परस्पर अभिवादन के उपरान्त जनक विश्वामित्र को सीता के जन्म, विवाह-विषयक प्रतिज्ञा, राजाओं की असफलता तथा उनके द्वारा आक्रमण की समस्त वार्ता सुनाते हैं । विश्वामित्र की आज्ञा से राम धनुर्भंग करते हैं । उसके टूट जाने पर जनक प्रसन्न होकर राजा दशरथ को निमन्त्रण भेजते हैं । दशरथ के समक्ष उनके चारों पुत्रों का विवाह जनक तथा कुशध्वज की कन्याओं से सम्पन्न होता है । धनुर्भंग से क्रुद्ध परशुराम राम को वैष्णव-धनुष सन्धान के लिए देते हैं । राम उस धनुष पर बाण-सन्धान करके परशुराम के तप द्वारा अर्जित तीन लोकों को विनष्ट कर देते हैं । उनका क्रोध समाप्त हो जाता है । सभी प्रसन्न होकर अयोध्या लौटते हैं ।

कैकयी का भाई युधाजित् भरत और शत्रुघ्न को अपने साथ ले जाता है । इधर राजा दशरथ राम को सर्वगुणसम्पन्न देखकर उन्हें राज्य देने का निश्चय करते हैं । राज्याभिषेक का उत्सव प्रारम्भ होता है उधर मन्थरा कैकयी को राम के विरूद्ध भरत के राज्याभिषेक के लिए उकसाती है । कैकयी अपने पूर्व याचित दो वरों के अनुसार दशरथ से राम को चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत को राजगद्दी देने के लिए कहती हैं । वल्कल धारण करने के पश्चात् राम सीता तथा लक्ष्मण के साथ रथ में बैठकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं ।

इसके पश्चात् दशरथ की मृत्यु हो जाती है । अराजकता के भय से भरत को ननिहाल से बुलाया जाता है । भरत राज्य ग्रहण करना अस्वीकार कर देते हैं तथा इस कार्य के लिए कैकयी की भर्त्सना करते हैं । वह सेना एवं प्रजा सहित चित्रकूट की ओर प्रस्थान करते हैं । राम के पास पहुंच कर उनसे राज्य ग्रहण करने का आग्रह करते हैं किन्तु राम का दृढ़ निश्चय देखकर भरत उनकी पादुकाएं लेकर अयोध्या लौट आते हैं ।

चित्रकूट के पश्चात् राम दण्डकवन में प्रवेश करते हैं । वहां विराध नामक राक्षस का वध करते हैं । अगस्त्य मुनि के परामर्श से राम पंचवटी जाते है । वहां उनका परिचय जटायु से होता है । राम वहां पर कुटी बनाकर रहने लगते हैं ।

शूर्पणखा वृत्तान्त के पश्चात् उसके अपमान का बदला लेने के लिए खर दूषण त्रिशिरा तथा चौदह हज़ार चौदह राक्षस राम से युद्ध करने के लिए आते हैं । राम अकेले ही उन सबका संहार करते हैं । रावण का मन्त्री अकम्पन सीताहरण के लिए रावण को प्रोत्साहित करता है । मारीच स्वर्ण मृग का रूप धारण करके राम के आश्रम पर आता है । सीता के मृग के प्रति अभिलाषा देखकर राम उसे पकड़ने के लिए जाते हैं । तभी राम जैसे

ही स्वर में सहायता की पुकार सुनकर सीता लक्ष्मण के न चाहने पर भी उनकी सहायतार्थ लक्ष्मण को भेज देती है । इधर रावण परिव्राजक का रूप धारण करके अन्त में अपने वास्तविक रूप में आकर बलपूर्वक सीता को रथ में बैठाकर ले जाता है । मार्ग में जटायु के साथ घोर युद्ध होता है ।

राम लक्ष्मण के साथ कुटी वापस आते हैं वहाँ सीता को न पाकर व्याकुल हो उठते हैं । लक्ष्मण सहित सीता का अन्वेषण करते हुए उनकी भेंट क्षत-विक्षत जटायु से होती है । जटायु रावण द्वारा सीता-हरण की बात बताकर प्राण त्याग देता है । अन्वेषण करते हुए ही राम तथा लक्ष्मण की भेंट कबन्ध नामक राक्षस से होती है । मृत्यु के पश्चात् दिव्य रूप धारण करके कबन्ध राम को सुग्रीव से मित्रता करने के लिए कहता है । पम्पासर पहुँचकर राम सुग्रीव से मित्रता करते हैं । सुग्रीव के प्रति बालि का अन्याय देखकर राम बालि का वध करते है । तत्पश्चात् किष्किन्धा के सिंहासन पर सुग्रीव का राज्याभिषेक होता है तथा बालि के पुत्र अंगद को युवराज का पद दिया जाता है ।

सुग्रीव सेना सहित राम के पास आते हैं और सीतान्वेषण के लिए चारों दिशाओं में वानर सेना भेजता है । राम हनुमान को अभिज्ञान रूप में अँगूठी देते हैं । हनुमान सभी बाधाओं को दूर करते हुए अशोक वाटिका में राक्षसियों के मध्य सीता को देखते हैं । हनुमान सीता जी को राम की अँगूठी देते हैं तथा शीघ्र ही इस कष्ट से मुक्ति का आश्वासन देते हैं । हनुमान समस्त लंका नगरी को तहस-नहस करके सीता दर्शन के पश्चात् लौट जाते हैं ।

हनुमान सभी को सीता की कुशलता का समाचार देते हैं । हनुमान द्वारा प्रदत्त सीता का चूड़ामणि लेकर राम बहुत विलाप करते हैं ।

राम सभी वानर सेना सहित समुद्र के तट पर पहुंचते हैं । इधर विभीषण रावण से सीता को लौटाने का परामर्श देता है । इन्द्रजित् तथा रावण उसका अपमान करते हैं । विभीषण राम की शरण में आता है । रावण शुक तथा सारण नामक दो मन्त्रियों को सुग्रीव से मित्रता के लिए भेजता है । वे दोनों वानर का वेष रखकर सेना में मिल जाते हैं । विभीषण इन्हें पहचान लेता है तथा राम से इन्हें दण्डित करने के लिए कहता है किन्तु राम उन्हें मुक्त कर देते हैं ।

समुद्र पर सेतु बांधकर राम सेना सहित सुवेल पर्वत पर पहुंचते हैं । इधर रावण राम का मायामय सिर बनवाकर सीता को दिखाता है । सीता विलाप करती हैं । सरमा नामक राक्षसी सीता को वास्तविक स्थिति से अवगत कराती है ।

सुवेल पर्वत से सुग्रीव रावण पर आक्रमण करता है और दोनों का द्वन्द्व युद्ध होता है । राम अंगद को दूत बनाकर रावण के पास युद्ध का संदेश भिजवाते हैं ।

रावण धूम्राक्ष, बज्रदंष्ट्र, अकम्पन तथा प्रहस्त की मृत्यु का समाचार सुनकर स्वयं युद्ध के लिए आता है । हनुमान, नील तथा लक्ष्मण से युद्ध होने के पश्चात् राम का रावण से युद्ध होता है । राम से रावण पराजित होकर लंका लौट जाता है । कुम्भकर्ण के वध के पश्चात् इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्र से सभी को मूर्च्छित कर देता है । हनुमान संजीवनी औषधि लाकर सबको स्वस्थ करते है । तत्पश्चात् लक्ष्मण इन्द्रजित् का वध करते हैं । राक्षस सेना का संहार हो जाने के पश्चात् राम रावण का वध करते हैं ।

राम सीता को अपना कुशल समाचार देने के लिए भेजते हैं । सीता राम के दर्शन की इच्छा व्यक्त करती है । सीता आती है तो राम उनका

सभी के समक्ष तिरस्कार करते हैं और उनको ग्रहण करने से अस्वीकार कर देते हैं । सीता अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए अग्नि-परीक्षा देती है । स्वयं अग्नि देवता सीता की शुद्धता प्रमाणित करते हैं । राम सीता तथा लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटते हैं । अयोध्या में राम का राज्याभिषेक होता है । उपर्युक्त कथा के पश्चात् उत्तरकाण्ड की कथा इस प्रकार है । अनेक विद्वान इसे प्रक्षिप्त मानते हैं ।

राम के सिंहासनावरूढ़ होने के बाद सभी को यथायोग्य विदा देने के अनन्तर राम सीता के साथ विहार करते हैं । सीता तपोवन-दर्शन की अभिलाषा प्रकट करती है ।इसी बीच श्री राम, भद्र नामक अपने मित्र से अपने विषय में लोकापवाद सुनकर सीता को त्यागने का निश्चय कर लेते हैं । राम लक्ष्मण से सीता को वाल्मीकि आश्रम के पास छोड़ने का आदेश देते हैं । लक्ष्मण उनकी आज्ञा का पालन करते हैं । विलाप करती हुई सीता को वाल्मीकि आश्रय देते हैं ।

लवणासुर से पीड़ित मुनिजन रक्षा हेतु राम के पास आते हैं । राम शत्रुघ्न को लवणासुर के वध के लिए भेजते हैं । मार्ग में शत्रुघ्न एक रात्रि वाल्मीकि के आश्रम में व्यतीत करते हैं । उसी समय लव और कुश का जन्म होता है ।

ब्राह्मण बालक के पुन: जीवित होने के लिए राम शूद्र का अन्वेषण करके उसका वध करते हैं । तत्पश्चात् राम अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं । वाल्मीकि भी लव-कुश तथा सीता के साथ वहाँ आते हैं । लव और कुश सभा के मध्य में रामायण का गान करते हैं । राम उन्हें अपना पुत्र समझ कर सीता के साथ वाल्मीकि को बुलाते हैं । वाल्मीकि सीता की शुद्धि का प्रमाण देते है परन्तु राम सीता से स्वयं सभा के समक्ष अपनी शुद्धता का प्रमाण देने का अनुरोध करते हैं । ज्यों ही सीता अपनी पवित्रता की शपथ ग्रहण करती हैं

त्यों ही पृथ्वी से सिंहासन निकलता है और सीता उस पर बैठ कर धरती में चली जाती है । राम अत्यधिक व्याकुल हो उठते हैं ।

राम अपने पुत्र कुश को कुशावती तथा लव को श्रावस्ती का राज्य देते हैं ।

यद्यपि इस कथा से जनसाधारण तथा विद्वान वर्ग सभी परिचित है किन्तु इस कथा को देने का प्रयोजन यह है कि सभी नाटककारों की कथा का आधार वाल्मीकि-रामायण की ही कथा है । भले ही रचनाकारों ने उसमें कुछ परिवर्तन कर दिये हों । अतः इस कथा को सम्मुख रख करके उनका अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है । वाल्मीकि की इस महाकाव्य के नायक राम के व्यक्तित्व से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है । युगों युगों से राम और सीता कम से कम इस देश के लिए केवल चरित्र विशेष नहीं रह गये अपितु एक विशिष्ट चारित्रिक आदर्श और सांस्कृतिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं ।

<u>राम</u> - राम धीरोदात्त कोटि के नायक है । शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन करने पर उनमें वे सभी गुण पाये जाते हैं जो एक धीरोदात्त कोटि के नायक में होने चाहिए । वे सत्यवान्, दृढवान् तथा कृतज्ञ होने के साथ-साथ असूया, ईर्ष्या, क्रोध एवं अहंकार से रहित है । उन्हों ने प्रत्येक स्थान पर मर्यादा और आदर्श का निर्वाह करते हुए इन भावों से मुक्त रहने का प्रयास किया है । फिर भी कभी कभी राम के जीवन में दु:ख, आवेग आदि के भाव उभरते हैं लेकिन श्री राम उन पर दृढ़ता से नियन्त्रण पा लेते हैं । राम में स्वाभिमान है जो एक उत्कृष्ट नायक का गुण माना जाता है । तत्कालीन परिस्थितियों और क्षत्रिय समाज में बहु-विवाह प्रचलित होने पर भी वे एक पत्नीव्रत है । यहाँ तक की अश्वमेध यज्ञ में भी उन्होंने सीता की ही स्वर्ण-मूर्ति स्थापित की । वाल्मीकि-रामायण के राम युग पुरूष और लोक नायक हैं । मर्यादित मानवता के समस्त उदात्तगुण

उनके महाचरित में समन्वित हो गये हैं । पौराणिक युग ﴾प्रथम शताब्दी से छठी शताब्दी तक﴿ आते आते राम का दैवीकरण हुआ और पौराणिक युग में राम विष्णु के अवतार माने जाने लगे । धीरे धीरे उनके इस चरित्र में और भी अधिक विकास हुआ । मध्यकाल में उन्हें ब्रह्मत्व दृढ़ रूप से स्थापित हो गया । रामचरितमानस के राम महाविष्णु के अवतार होने के साथ साथ परब्रह्म के अवतार माने जाने लगे । आज के इस युग में भारतीय जनजीवन में राम एक आदर्श महापुरूष के साथ साथ भगवान के रूप में भी प्रत्येक व्यक्ति के मानस पटल पर छाये हुए हैं । भिन्न भिन्न कालों में राम का स्वरूप एवं कवि की भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है । राम कहीं आदर्श मानव है तो कहीं भगवान् । कहीं उनका मानवीय चरित्र है तो कहीं लोकोत्तर चरित्र । वे बौद्धिक-वर्ग के लिए आदर्श मानव है परन्तु भक्ति-भावना से ओत-प्रोत भावुक भारतीय जनसमुदाय के प्राण एवं भगवान है । अनेक नाटककारों ने भी राम को विष्णु का अवतार कहा है । कुन्दमाला में वाल्मीकि के आश्रम में तापसी राम के अलौकिक प्रभाव से समुची प्रकृति में परिवर्तन देखकर उन्हें हरि मानती है[1] । उत्तररामचरितम् में शम्बूक ने राम को पुरातन पुरूष कहा है[2] । नाटककारों ने एक ओर तो राम की मानवीय प्रवृत्तियों का चित्रण किया है तो दूसरी ओर उन्हें विष्णु का अवतार माना है । सामान्य जन के समान सीता के विरह में राम बिलख-बिलख कर रोते हैं । इनका रूप समय के साथ-साथ परिवर्तित होता गया है फिर भी संस्कृत साहित्य में राम केवल पूज्यनीय ही नहीं अनुकरणीय बने रहे हैं ।

सीता- शास्त्रों के अनुसार स्वकीया नायिका का जैसा वर्णन बताया गया है वे

1- कुन्दमाला- 3/14 व्यक्तं सोऽयमुपागतो वनमिदं रामाभिधानो हरिः ।

2- उत्तररामचरितम् - 2/13

सभी गुण हम नायिका सीता में पाते हैं । सीता सभी परिस्थितियों में सत्य बोलने उचित सोचने, उचित व्यवहार करने का एक ज्वलंत उदाहरण है । वह कष्ट उठाते हुए भी धैर्य से प्यार और समर्पण के साथ अपने को सुरक्षित रखती हैं । वह एक श्रेष्ठ पत्नी और नारीत्व की आदर्श प्रतिमूर्ति हैं । वह पतिव्रता नारी हैं । राम के द्वारा त्याग दिये जाने पर भी उनके मन में राम के प्रति कोई कलुष नहीं देखा जाता है । रवीन्द्र नाथ का कहना है कि " सीता का परमशत्रु वह विधर्मी रावण नहीं यह धर्मात्मा राम ही है । रावण के घर सीता को उतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि महाराजाधिराज राम के घर में रहते समय हुआ । जो सोने की नाव इतने दिनों तक लड़ते-भिड़ते विपत्ति के तूफान से छुटकारा पा सकी थी, वह घाट के ही पत्थर से टकरा कर चकनाचूर हो गयी, किन्तु ऐसे नृशंस एवं न्यायशून्य पति के प्रति भी सीता के मन में कभी कोई विशेष क्षोभ या दुराव के चिह्न नहीं दिखायी देते ।[1]

जिस प्रकार राम के चरित्र में मानवता के समस्त उदात्त गुण समन्वित हो गये हैं । उसी प्रकार सीता के चरित्र में नारी के समस्त उदात्तम गुण समाये हुए हैं । यत्र तत्र नारी जनोचित दुर्बलता का वर्णन किया गया है किन्तु सीता का चरित्र राम के चरित्र से कम उज्जवल नहीं है । यदा कदा राम के चरित्र की आलोचना तो हुई है किन्तु सीता का चरित्र सदैव पवित्र रहा है । इस प्रकार सीता नारीत्व की उज्ज्वलतम् प्रतीक हैं ।

इस महाकाव्य की यह एक अनोखी विशेषता है कि इसमें आया प्रत्येक चरित्र किन्हीं विशिष्ट मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है । यह

1- प्राचीन-साहित्य- रवीन्द्र नाथ पृ0 52

उद्धृत- उत्तररामचरितम् की शास्त्रीय समीक्षा

महाकाव्य एक हीरक खण्ड की भाँति है जिससे निकलने वाले विविध रंग की किरणें सबको प्रिय लगती हैं । यह महाकाव्य हमारे गौरव ग्रन्थों में से एक है । जो हमें नैतिक मूल्यों से परिचित कराता है । अतः हम यह कह सकते हैं कि यह एक ऐसा विश्वकोश है जिसमें धर्म, राजनीति, दर्शन, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, भूगोल आदि का सम्यक् समावेश हुआ है । रामकथा और वाल्मीकि रामायण को आश्रय बनाकर इस देश में एक सुदीर्घ साहित्य परम्परा उपलब्ध होती है ।

महाकवि कालिदास का रघुवंश, क्षेमेन्द्र की रामायण-मंजरी तथा दशावतार-चरित, अभिनन्द का रामचरित, भट्टि का भट्टिकाव्य, कुमार दास का जानकी-हरण, शाकल्लमलाचार्य का उदारराघव, रूपनाथ उपाध्याय का श्री राम विजय, पाणिवाद का राघवीयम् आदि कथाश्रित महाकाव्य प्रसिद्ध है । भोजराजकृत रामायण-चम्पू, वैंकटकृत उत्तररामचरितचम्पू आदि चम्पू-काव्यों में भी रामकथा का सरस निबन्धन हुआ है । वेदान्तदैशिक का हंसदूत, रुद्रन्यायपंचानन का वातदूत आदि संदेशकाव्य भी राम-कथा से गौरान्वित हैं । सोमदेव का कथासरित्सागर, क्षेमेन्द्र की वृहतकथामंजरी, वासुदेव की रामकथा आदि कथा काव्यों के कलेवर भी रामकथा से अनुप्राणित है । रामकथा का माध्यम बनाकर अनेक नाटकों का भी प्रणयन हुआ है ।

रामकथा की इसी व्यापकता को देखकर प्रसन्नराघवम् के नाटककार महाकवि जयदेव ने - "कथं पुनरमी कवयः सर्वे रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति" । इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा है कि इसमें कवियों का क्या दोष है यह तो उन गुणों का दोष है जो राम में आकर एकत्र हो गये है ।

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणाः ।।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि युग से लेकर रामकथा को आधार बनाकर अनेक नाटक लिखे गये । चूँकि प्रस्तुत शोध का विषय नाटकों से सम्बन्धित है अतः यहाँ भवभूति और दिङ्नाग के काल के पूर्व और पश्चात् रामकथा पर आधारित नाटकों के विकास का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है ।

प्रतिमा नाटकम्- (चतुर्थ शती ई०पू०)

यह नाटक महाकवि भास द्वारा रचित है । सात अंकों का यह नाटक रामायण पर आधारित होते हुए भी अपनी मौलिकता रखता है । इसमें राम के वनवास से लेकर रावण वध तक अनेक घटनाओं का वर्णन कवि कल्पित है । इसकी भाषा सरल, सुबोध तथा हृदयग्राही है ।

प्रथम अंक में दशरथ के राज-प्रसाद में राम के अभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं । सीता अन्तःपुर में चेटियों के साथ परिहास कर रही हैं । एक चेटी वल्कल लेकर आती है जिसे सीता जी धारण करती है । इसी समय राम आकर सीता को राज्याभिषेक से वंचित होने का समाचार देते हैं । तभी कंचुकी राजा दशरथ के मूर्च्छित होने की सूचना देता है । इधर राम के वनवास से क्रुद्ध लक्ष्मण सम्पूर्ण स्त्री जाति को नष्ट करना चाहते हैं किन्तु राम उसे सान्त्वना देते हैं और सीता तथा लक्ष्मण के साथ अयोध्या त्याग कर चले जाते हैं । द्वितीय अंक में पुत्र-बिछोह से दुःखी दशरथ को कौशल्या आश्वासन देती हैं । सुमन्त्र से तीनों के वन-गमन का समाचार सुनकर दशरथ प्राण त्याग देते हैं । तृतीय अंक में दिवंगत रघुवंशी राजाओं का प्रतिमागृह सजाया जा रहा है । पिता की अस्वस्थता को सुनकर ननिहाल से आते हुए भरत मार्ग में अयोध्या के समीपस्थ प्रतिमागृह में अपने वंशजों की प्रतिमाओं के साथ दशरथ की भी प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु से अवगत हो जाते हैं । इसी के आधार पर इस नाटक का नाम 'प्रतिमा' रखा गया है । भरत को जब समस्त

वृत्तान्त ज्ञात होता है तो वह कैकयी पर क्षुब्ध होकर अपने अभिषेक के स्थान पर वनवास की प्रतिज्ञा करते हैं । चतुर्थ अंक में भरत राम के पास पहुंचते हैं तथा राम के अनुसार उनका प्रतिनिधि बनकर अयोध्या का राज्य संभालने को तैयार हो जाते हैं । पंचम अंक में कवि ने सीताहरण का चित्र एक नूतन रूप में प्रस्तुत किया है । रावण परिव्राजक वेष में राम के निवास स्थान पर पहुंचता है और उनका अतिथ्य ग्रहण करता है । वार्तालाप के प्रसंग में रावण दशरथ के श्राद्ध के लिए सुवर्ण मृग का निवाप बताता है । इतने में कपट सुवर्णमृग दिखाई देता है राम उसका पीछा करते है । लक्ष्मण एक महर्षि के स्वागत के लिए चले जाते हैं । इसी बीच रावण अपना वास्तविक रूप प्रकट करके सीता का बलपूर्वक हरण कर लेता है । मार्ग में जटायु यथाशक्ति रोकने का प्रयत्न करता है । षष्ठ अंक में जटायु की मृत्यु होती है । इधर सुमन्त्र इस घटना को भरत से कहते हैं जिसे सुनकर भरत कैकयी पर क्षुब्ध होता है और रावण पर आक्रमण के लिए उद्यत हो जाता है । सप्तम अंक में राम रावण पर विजय प्राप्त करके तपोवन लौटते हैं वहां उन्हें भरत के आगमन की सूचना मिलती है । कैकयी की आज्ञा से राम का राज्याभिषेक होता है तथा राम सबके साथ अयोध्या लौटते हैं ।

अभिषेक नाटकम् - [चतुर्थ शती ई0पू0]

यह भास कृत 6 अंकों का नाटक है । इस नाटक में रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्ध काण्ड तक की कथा परिवर्तन के साथ वर्णित है । इसमें राम को विष्णु का अवतार कहा गया है । इसकी भाषा सरल तथा भावपूर्ण है ।

प्रथम अंक में सुग्रीव के साथ युद्ध करते हुए राम बालि का वध करते है । बालि की मृत्यु के पश्चात् सुग्रीव किष्किन्धा का राजा बनता है ।

द्वितीय अंक में सीता का अन्वेषण करते हुए हनुमान का लंका में सीता से मिलन होता है । तृतीय अंक में हनुमान द्वारा अशोक-वाटिका का ध्वंस, अक्षयकुमार की मृत्यु, मेघनाद द्वारा हनुमान को पकड़कर रावण के पास ले जाने की कथा का वर्णन है । चतुर्थ अंक में रावण से क्षुब्ध होकर विभीषण राम की शरण में आता है । राम के बाणों से भयभीत समुद्र राम को रास्ता दे देता है । रावण के मन्त्री शुक एवं सारण वेष बदलकर राम की सेना का बल जानने के लिए आते है । विभीषण उन्हें राम से दण्डित करने के लिए कहता है परन्तु राम उन्हें छोड़ देते हैं । तथा उनके द्वारा रावण को युद्ध का संदेश भिजवाते हैं । पंचम अंक में राम और रावण की सेनाओं में घोर युद्ध होता है । इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण की मृत्यु से क्रुद्ध होकर रावण सीता का विनाश करने के लिए उद्यत हो जाता है । उसके मंत्री उसे ऐसा न करने के लिए समझाते हैं । तत्पश्चात् रावण राम और लक्ष्मण के सिरों की प्रतिकृति बनवाकर सीता को छलने के लिए उनके समक्ष रखवाता है । किन्तु सफल नहीं हो पाता । षष्ठ अंक में राम रावण में घोर युद्ध होता है और रावण की मृत्यु हो जाती है । सीता की अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि देव स्वयं उपस्थित होकर सीता को निष्पाप घोषित करते है और राम को अपना अभिषेक कराने के लिए कहते हैं । राम सीता को ग्रहण करते हैं और तत्पश्चात् उनका राज्याभिषेक होता है ।

महावीर चरितम् §अष्टम शती ई0§

भवभूति की दो उत्कृष्ट रचनाएं है जो रामायण पर आधार बनाकर लिखी गयी है । उनमें से एक महावीरचरितम् सात अंकों का नाटक है । इसमें राम-सीता के विवाह से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है । इसमें कही कहीं कथानक कवि-कल्पित है ।

प्रथम अंक में विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को अपनी यज्ञ की रक्षा

के लिए आश्रम लाते हैं । सीता तथा उर्मिला अपने चाचा कुशध्वज के साथ भी वहाँ आती हैं । परस्पर परिचय होता है । राम के प्रभाव से अहल्या का उद्धार देखकर कुशध्वज जनक के प्रण के विषय में सोचकर अत्यन्त दुःखी होते हैं । उसी समय रावण का दूत सीता को रावण के लिए माँगने आता है । उसे वापस भेज दिया जाता है । विश्वामित्र कुशध्वज की राम को जमाता बनाने की प्रबल इच्छा देखकर वहीं धनुष मंगाने की आज्ञा देते हैं । कुशध्वज ध्यानमात्र से धनुष मंगवाते हैं । राम के धनुर्भंग करने के पश्चात् उनका सीता से विवाह होता है । विश्वामित्र जनक तथा कुशध्वज की कन्याओं को दशरथ के पुत्रों के लिए माँगते हैं । राम सुबाहु तथा मारीच का वध करते हैं । द्वितीय अंक में शूर्पणखा तथा माल्यवान् राम के अभ्युदय से चिन्तित होकर परशुराम को उकसा कर राम के विनाश की योजना बनाते हैं । परशुराम शिव-धनुष को तोड़ने वाले को दण्डित करने के लिए अन्तःपुर तक आ जाते हैं । तृतीय अंक में सभी परशुराम को शान्त करने का प्रयास करते हैं किन्तु सब अपने अपने प्रयासों में विफल होते हैं । तभी राम वहाँ आकर परशुराम द्वारा प्रदत्त वैष्णव धनुष ग्रहण करके उन्हें पराजित करते हैं । चतुर्थ अंक में परशुराम की पराजय से चिन्तित माल्यवान् पुनः राम के विनाश हेतु योजना बनाता है । वह शूर्पणखा को मन्थरा के शरीर में प्रवेश कराकर कैकयी का पत्र लेकर मिथिला भेजता है जिसमें भरत को राज्य तथा राम को वनवास के लिए लिखा था । राम मिथिला से ही वनवास के लिए चले जाते हैं और भरत राम की पादुकाएँ लेकर वापस लौटते हैं। वनवास के समय राम खर आदि राक्षसों का वध करते हैं । पंचम अंक में रावण सीता हरण करता है जिसकी सूचना दोनों भाईयों को जटायु से मिलती है । माल्यवान् राम के विनाश हेतु बालि को उकसाता है । बालि का राम से युद्ध होता है जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है । मृत्यु से पूर्व बालि राम की सुग्रीव से मित्रता कराता है । सुग्रीव सीतान्वेषण के लिए वानरों को भेजता है ।

षष्ठ अंक में राम तथा रावण की सेनाओं में घोर युद्ध होता है अन्त में राम रावण का वध करते हैं । सप्तम अंक में राम विभीषण को लंकाधिपति बनाते है । सीता की अग्नि-परीक्षा के पश्चात् राम अयोध्या आते हैं । वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है ।

उत्तररामचरितम् - [अष्टम शती ई0]

यह भी भवभूति रचित सात अंकों का नाटक है । वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड से सम्बद्ध कथानक को भवभूति ने नाटकीय सूत्र में बद्ध किया है ।

प्रथम अंक में राम के अभिषेकोत्सव में आये हुए जनक के मिथिला लौट जाने से उदास सीता के मनोरंजन के लिए लक्ष्मण द्वारा लाई हुई चित्रवीथिका को राम लक्ष्मण तथा सीता के साथ देखते हैं । कवि कल्पना प्रसूत यह प्रसंग संस्कृत साहित्य में अपूर्व माना जाता है । चित्र-दर्शन को देखकर सीता भागीरथी-दर्शन की इच्छा व्यक्त करती हैं । राम सीता के भावी पुत्रों को जृम्भकास्त्र के स्वत: प्रकट होने का वर देते हैं । गुप्तचर दुर्मुख द्वारा सीताविषयक लोकापवाद सुनकर सीता को निर्वासित करने का निश्चय कर लेते हैं । लक्ष्मण उन्हें वन छोड़ आते हैं ।लवण नामक राक्षस से त्रस्त होकर ऋषियों का समूह श्री राम के पास आता है । श्री राम उसके संहार के लिए शत्रुघ्न को आज्ञा देते हैं । द्वितीय अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ बारह वर्षों के बाद होता है । वाल्मीकि के आश्रम से आयी हुई तापसी आत्रेयी और वासन्ती के वार्तालाप से लव तथा कुश का जन्म वाल्मीकि द्वारा उनका उपनयन संस्कार, अध्यापन तथा राम का यज्ञ में स्वर्णनिर्मित सीता की प्रतिमा स्थापित करना विदित होता है । इधर राम ब्राह्मण बालक की अकस्मात् मृत्यु का कारण शूद्र तपस्वी का तप जानकर दण्डकारण्य में आकर उसका वध करते हैं । वहाँ अपनी आपबीती का स्मरण करके विलाप करते हैं । तृतीय अंक में मुरला तथा तमसा के वार्तालाप से सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् सीता का गंगा में विलीन

होना ज्ञात होता है । राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम से पंचवटी में आते हैं । भगवान अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा भगवती सीता जी को सूर्य पूजा के बहाने राम की रक्षा हेतु तमसा के साथ पंचवटी में भेजती हैं । राम पंचवटी में अपने पूर्ववास का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता अदृश्य रूप में अपने कर कमलों से उनकी चेतना वापस लाती हैं । राम का अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करना विदित होता है । चतुर्थ अंक में सीता त्याग से क्षुब्ध वाल्मीकि के आश्रम पर वसिष्ठ, अरून्धती राम की माताएँ तथा जनक आते हैं । बालकों के मध्य राम सदृश आकृति वाले बालक लव को देखकर कौशिल्या को विस्मय होता है और उससे बात करते हैं । तभी अवश्मेध के अश्व को देखने के कौतूहल से आश्रम बाल लव को ले जाते हैं । विवाद बढ़ने पर लव युद्ध के लिए उद्यत हो जाता है । पंचम अंक में लव सभी सैनिकों को परास्त कर देता है । वह जृम्भकास्त्र से समस्त सेना को निश्चेष्ट करता हुआ राम के चरित्र पर आक्षेप करता है । तदनन्तर लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु से लव का युद्ध होता है । युद्ध के पश्चात् दोनों मित्र बन जाते हैं । षष्ठ अंक में इसी द्वन्द युद्ध के मध्य राम का प्रवेश होता है । दोनों उनको प्रणाम करते हैं । चन्द्रकेतु लव का परिचय देता है । श्री राम आशीर्वाद देकर उसे जृम्भकास्त्र का महत्त्व बताते हैं । कुश भी वहाँ आ जाता है । राम दोनों बालकों को सीता का पुत्र समझकर अनेक प्रश्न पूछते हैं । राम वहाँ वसिष्ठ, अरून्धती जनक तथा कौशिल्यादि माताओं को देखकर लज्जित होते हैं । सप्तम अंक में सीता की निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए अयोध्या निवासियों एवं राम के समक्ष वाल्मीकि अपनी कृति का प्रदर्शन करते हैं । जिसमें सीता-त्याग, लव, कुश का जन्म एवं सीता का गंगा में विलीन होना दिखाया गया है । सीता का तिरोभाव देखकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता उन्हें अपने हाथ से स्पर्श कर चेतना वापस लाती हैं. तत्पश्चात् राम ने और सीता का सुखद मिलन होता है । इस नाटक के अन्तिम अंक में कवि/वाल्मीकि-

रामायण के विपरीत राम सीता का मिलन करा कर नाटक को सुखान्त बना दिया है ।

उदात्तराघवम् – ﴾अष्टम शती ई0﴿

अनङ्गहर्ष कृत इस नाटक में छः अंक हैं । इस नाटक में राम के वनगमन से प्रारम्भ कर रावण-वध के पश्चात् अयोध्या में प्रत्यागमन तक का वृत्त चित्रित किया गया है । कवि ने सीता-हरण का एक नूतन रूप चित्रित किया है । इसमें लक्ष्मण स्वर्णमृग का वध करने के लिए जाते हैं । उनके जाने के पश्चात् रावण आश्रम के कुलपति का रूप धारण कर राम और सीता के पास पहुँचता है । उसी समय एक छद्मवेषी राक्षस आकर सूचना देता है कि राक्षस कनक मृग के वेष में लक्ष्मण को ले जा रहा है ।यह सुनकर राम सीता को कुलपति रूपी रावण के संरक्षण में छोड़कर लक्ष्मण की सहायता के लिए चले जाते हैं । इस नाटक में माया के प्रभाव से राक्षसों द्वारा रामपक्षीय लोगों का रूप धारण करने के अनेक प्रसंग मिलते हैं ।

कुन्दमाला- ﴾दशम शती ई0﴿

दिङ्नाग कृत कुन्दमाला छः अंकों का नाटक है ।इसकी कथा भी वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड पर आधारित है । इसमें सीता परित्याग से लेकर राम सीता के पुनर्मिलन की कथा वर्णित है । कथानक के परिवर्तन में कवि ने अपनी कल्पना को उन्मुक्त छोड़ दिया है ।

प्रथम अंक में राम की आज्ञा से लक्ष्मण सीता को वन छोड़ आते हैं । सीता का करूण क्रन्दन सुनकर वाल्मीकि वहां आते हैं । पहले तो वे उन्हें आश्रय देने से इन्कार करते हैं किन्तु सीता द्वारा प्रार्थना करने पर उसे आश्रम में ले जाते हैं । आश्रम जाते हुए सीता भागीरथी से प्रार्थना करती हैं

कि सुख-पूर्वक सन्तान उत्पन्न होने पर मैं कुन्दपुष्पों की माला अर्पण किया करूंगी । द्वितीय अंक में मुनि कन्याएं लव और कुश के जन्म तथा वाल्मीकि द्वारा उन्हें रामायण का अध्ययन कराने के विषय में वार्तालाप करती है । सीता खिन्न होकर आत्महत्या करना चाहती हैं और सखी वेदवती से मिलना चाहती हैं । तभी वेदवती वहां आकर सीता के निर्वासन आदि के सम्बन्ध में राम की कटु आलोचना करती है किन्तु सीता को राम के प्रति निष्ठायुक्त पाती हैं । तृतीय अंक में राम और लक्ष्मण नैमिषारण्य में आते हैं । नदी की लहरों के मध्य बहती हुई कुन्दमाला गोमती के तट पर भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण के चरणों से आ टकराती है । लक्ष्मण उसे उठाकर राम को देते हैं । राम उस माला के गूंथने की कला को देखकर सीता द्वारा उसके रचित होने की सम्भावना करते हैं । वे उधर ही चलना प्रारम्भ कर देते हैं जिधर से माला आयी थी । उधर ही वाल्मीकि का आश्रम है और वहां सीता पुष्प चयन के लिए आती हैं । वह राम को देखती हैं परन्तु जनापवाद के कारण सम्मुख नहीं आती है । इधर वाल्मीकि का शिष्य वादरायण राम और लक्ष्मण को लेने के लिए आता है । चतुर्थ अंक में सीता की सखी तिलोत्तमा सीता का रूप धारण कर राम के समक्ष आकर उनके मनोभावों को जानने की योजना बनाती है । विदूषक इस बात को सुन लेता है । आश्रम की स्त्रियां यह निवेदन करती हैं कि अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ होने पर कोई न कोई मनुष्य फूल तोड़ने के लिए बावड़ी में आयेगें तो हमलोग कैसे स्नान करेगें । तब वाल्मीकि जी कहते हैं कि बावड़ी में तुम लोगों को कोई भी मनुष्य नहीं देख सकेगें । तुम लोग निश्चिन्त रहो । इसलिए सीता अपना अधिक समय बावड़ी में व्यतीत करती हैं । राम जल के मध्य में उसका प्रतिबिम्ब देखकर उन्हें सामने न पाकर मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता अदृश्य रहती हुई पहले

हस्त स्पर्श से तदनन्तर अपने उत्तरीय से उन्हें चेतना में लाती हैं । उसी समय विदूषक आकर तिलोत्तमा की योजना की सूचना देता है । राम स्वयं को छला हुआ मानकर दुःखी होते हैं किन्तु उन्हें विश्वास नहीं होता । पंचम अंक में विदूषक सीता-विरह में सन्तप्त राम के पास लव और कुश को लाता है । राम उन बालकों को गले लगाकर रो पड़ते हैं । वे बालकों से समस्त वृत्तान्त ज्ञात करते हैं और उन्हें सीता के गर्भ के समान आयु वाला देखकर अपना पुत्र मानने लगते हैं । षष्ठ अंक में लव-कुश, राम के समक्ष राम के जन्म से लेकर सीता निर्वासन तक की कथा सुनाते हैं । कण्व ऋषि लव और कुश को राम का पुत्र बताते हैं । दोनों बालकों को गले लगाकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं । इतने में वाल्मीकि के साथ सीता वहाँ आती हैं । वाल्मीकि सीता के प्रति किये गये तुच्छ व्यवहार के लिए राम की भर्त्सना करते हैं । पृथ्वी देवी स्वयं प्रकट होकर सीता की पवित्रता का समर्थन करती हैं अन्ततः वाल्मीकि के आदेशानुसार राम लव,कुश और सीता को ग्रहण करते हैं । तत्पश्चात् लव-कुश का राज्याभिषेक होता है । यह नाटक भी सुखान्त है ।

आश्चर्यचूड़ामणि - {नवम शती ई0}

शक्तिभद्र कृत अद्भुत रस प्रधान इस नाटक में वाल्मीकि-रामायण के अरण्यकाण्ड से युद्ध-काण्ड तक की प्रमुख कथा को नाटकीय रूप में दर्शाया गया है । यह सात अंकों का नाटक है ।

प्रथम अंक में पर्णकुटी में लक्ष्मण के पास शूर्पणखा दिव्य रूप धारण करके आती है और प्रणय याचना करती है । द्वितीय अंक में लक्ष्मण से तिरस्कृत शूर्पणखा राम के पास पहुँचती है राम उसे पुनः लक्ष्मण के पास भेज देते हैं । लक्ष्मण के साथ उसका द्वन्द-युद्ध होता है और क्रोधावश लक्ष्मण उसकी नाक काट देते हैं । तृतीय अंक में खर तथा दूषण की मृत्यु से दुःखी रावण प्रतिशोध के कारण

मारीचि को मायामृग बनाकर भेजता है । राम के पास मुनियों द्वारा प्रदत्त एक अँगूठी तथा सीता के पास चूड़ामणि है जिनके स्पर्श होते ही राक्षसों की माया समाप्त हो जाती है । सीता के आग्रह से राम मृग को पकड़ने जाते हैं । राम का स्वर सुनकर सीता लक्ष्मण को भेज देती हैं । इतने में रावण माया से राम का रूप और उसका सारथि लक्ष्मण का रूप धारण करके सीता के पास आते हैं तथा सीता से कहते हैं कि भरत को शत्रु का भय है । सीता साथ चलने का आग्रह करती हैं । मायावी राम रथ मंगवाता है और सीता को ले जाता है । इधर शूर्पणखा सीता का रूप धारण करके वास्तविक राम को उलझाये रखती है । परन्तु मुनियों द्वारा प्रदत्त अद्भुत शक्ति-सम्पन्न अँगूठी के स्पर्श से वह अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाती है । राम उससे सीता हरण की बात जानकर रावण को युद्ध का संदेश भिजवाते हैं । राम की अँगूठी के प्रभाव से मृग मारीच के रूप में आ जाता है । चतुर्थ अंक में राम रूपधारी रावण सीता का स्पर्श करता है किन्तु सीता के चूड़ामणि के प्रभाव से वह अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाता है । जटायु सीता की रक्षा के लिए रावण से युद्ध करता है । पंचम अंक में सीता से तिरस्कृत रावण सीता को मारने की चेष्टा करता है । फलस्वरूप सीता उसे शाप देना चाहती हैं तभी मन्दोदरी आकर रावण को ले जाती है । षष्ठ अंक में हनुमान सीता को अँगूठी देते हैं तथा राम की सुग्रीव से मित्रता की सूचना देते हैं । सप्तम अंक में राम रावण का वध करते हैं । सीता को अनसूया के वरदान से अलंकृत देखकर राम सीता की भर्त्सना करते हैं । लक्ष्मण और हनुमान सीता को दण्डित करने के लिए कहते हैं । तत्पश्चात् सीता अग्नि परीक्षा देती हैं । नारद सीता के चरित्र की शुद्धि तथा अनसूया के वरदान के विषय में बताते हैं । राम सीता को स्वीकार कर अयोध्या लौटते हैं ।

अनर्घराघवम् - ﴾दशम शती ई0﴿

मुरारिकृत सात अंकों का यह नाटक वाल्मीकि-रामायण पर आधारित होते हुए भी अपनी अलग मौलिकता रखता है । इसकी भाषा क्लिष्ट एवं पाण्डित्यपूर्ण है ।

प्रथम अंक में विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को ले जाते हैं । द्वितीय अंक में राम यज्ञ की रक्षा के लिए ताड़का तथा अन्य राक्षसों का वध करते हैं । तृतीय अंक में विश्वामित्र राम एवं लक्ष्मण के साथ मिथिला नगरी में आते हैं । वहाँ रावण का मंत्री शौष्कल रावण के लिए सीता को माँगने आता है । राम विश्वामित्र की आज्ञा से धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हैं । चतुर्थ अंक में धनुर्भंग से क्रुद्ध परशुराम को राम वैष्णव धनुष सन्धान करके शान्त करते हैं । इसी समय जाम्बवान की योजना के अनुसार श्रमणा नामक सिद्धशबरी कैकयी की दासी मन्थरा के शरीर में प्रवेश करके एक पत्र लेकर मिथिला आती हैं, जिसमें भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए वनवास लिखा था । राम सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं । पंचम अंक में रावण भिक्षु का वेष बनाकर राम की अनुपस्थिति में सीता का हरण करता है । राम जटायु वध तथा सीता हरण से दु:खी होते हैं । तत्पश्चात् वे अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए सुग्रीव से मित्रता करके बालि का वध करते हैं । षष्ठ अंक में वानर सेना समुद्र पार करती हैं । इसके पश्चात् राम और रावण की सेनाओं में घोर युद्ध होता है । कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजित् की मृत्यु के पश्चात् रावण स्वयं युद्ध के लिए आता है और राम के हाथों उसकी मृत्यु हो जाती है । सप्तम अंक में सीता की अग्नि परीक्षा के बाद राम उनको ग्रहण करते हैं और अयोध्या लौट आते हैं । वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है ।

बालरामायणम् (दशम शती ई०)

यह राजशेखर कृत, दस अंकों का वीर-रस प्रधान नाटक है । इस नाटक में भवभूति और मुरारि की स्पष्ट छाप दिखाई देती है । प्रस्तावना में कवि ने स्वयं को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार कहा है । भाषा सरल होते हुए भी कहीं कहीं अत्यन्त क्लिष्ट है ।

प्रथम अंक में विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए राम तथा लक्ष्मण को लेने अयोध्या जाते हैं । इधर रावण मिथिला जाने के लिए परशुराम से परशु मँगवाता है । रावण भी अपने मंत्री प्रहस्त के साथ सीता को पाने की इच्छा से स्वयंवर स्थल पर पहुँचता है । शतानन्द और जनक उसे स्वयंवर की शर्त बताते हैं किन्तु वह धनुष प्रत्यंचा चढ़ाने से इन्कार कर देता है । द्वितीय अंक में सीता के दर्शन के पश्चात् रावण का काम उद्दीप्त हो जाता है । उधर परशुराम से परशु न मिलने के कारण अपमानित होने पर उसका क्रोध और अधिक तेज हो जाता है । तृतीय अंक में सीता की अप्राप्ति से खिन्न रावण की सभा में उसके मनोविनोदार्थ सीता स्वयंवर नाटक खेला जाता है । जिसमें शिव-धनुष के टूट जाने के पश्चात् राम-सीता का विवाह दिखाया गया है । चतुर्थ अंक में क्रुद्ध परशुराम राम को वैष्णव धनुष चढ़ाने के लिए देते हैं । परन्तु उसे लक्ष्मण ग्रहण कर लेते हैं और प्रसन्न होकर परशुराम उर्मिला का लक्ष्मण के साथ पाणिग्रहण कराने के लिए कहते हैं । पंचम अंक में सीता-विरह से व्याकुल रावण अपने विनोद के लिए छः ऋतुओं का वर्णन करता है । रावण मायामय राक्षस द्वारा राम के पास सीता को देने के लिए संदेश भिजवाता है । रावण का मंत्री प्रहस्त उसके लिए मायामयी सीता लाता है जिससे वह बहुत प्रसन्न होता है । इतने में शूर्पणखा वहाँ आकर अपने अपमान के विषय में बताती है । रावण राम से प्रतिशोध लेने का

निश्चय करता है । षष्ठ अंक में यह ज्ञात होता है कि राम का निर्वासन तक रावण के आदेश से दशरथ एवं मन्थरा के वेष में मायामय तथा शूर्पणखा करते हैं । इसी अंक में सीता हरण की घटना भी प्रस्तुत है । सप्तम अंक में राम की सुग्रीव से मित्रता होती है । विभीषण राम की शरण में आता है । राम सागर पर सेतुबन्ध कराते हैं उसी समय रावण उन्हें भयभीत करने के लिए मायामयी सीता का कटा सिर समुद्र तट पर फेंकता है । राम उसका स्पर्श करते हैं तभी वह बोल पड़ती है " मै मायामयी सीता हूँ " । अष्टम अंक में इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु से रावण बहुत दुःखी होता है और स्वयं युद्ध के लिए आता है । नवम अंक में राम और रावण का घोर युद्ध होता है । घोर युद्ध के पश्चात् रावण का वध होता है । दशम अंक में सीता की अग्नि परीक्षा के पश्चात् राम सीता के साथ अयोध्या लौटते हैं और वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है । इस नाटक में कवि ने राम विरोधी सभी घटनाओं में रावण का हाथ माना है ।

उल्लालराघवम् – ॥त्रयोदश शती पूर्वार्ध॥

गुर्जरदेशीय सोमेश्वर कवि विरचित आठ अंकों के इस नाटक में राम के विवाह से लेकर राज्याभिषेक तक का वर्णन है । इसमें राक्षसों की माया का उल्लेख है । इनकी भाषा कहीं कहीं अत्यन्त दुरूह है ।

प्रथम अंक में राम स्वयंवर की शर्त को पूर्ण करके सीता से विवाह करते हैं । द्वितीय अंक में भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल जाते हैं । दशरथ राम को राज्य देने की इच्छा व्यक्त करते हैं । तृतीय अंक में कैकयी मन्थरा के द्वारा प्रेरित होकर दशरथ से राम के वनवास के लिए तथा भरत को राजगद्दी देने के लिए याचना करती हैं । चतुर्थ अंक में राम के वन गमन के उपरान्त दशरथ की मृत्यु हो जाती है । भरत राम की पादुकाएँ लेकर वापस लौटते हैं और शासन

करते हैं । भरत राम द्वारा शापग्रस्त विराध का वध करते हैं । पंचम अंक में राम को अगस्त्य ऋषि से दिव्यास्त्र की प्राप्ति होती है । शूर्पणखा वृत्तान्त के पश्चात् सीता-हरण तथा जटायु वध का वर्णन है । षष्ठ अंक में राम द्वारा बालि का वध होता है । विभीषण राम की शरण में आता है । अंगद राम का दूत बनकर रावण के पास युद्ध का संदेश ले जाता है । सप्तम अंक में लंका की विजय के पश्चात् सीता की अग्नि परीक्षा होती है तथा राम सबके साथ अयोध्या लौटते हैं । अष्टम अंक में राम, लक्ष्मण, सीता, विभीषण आदि पुष्पक विमान से अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं । उनके अयोध्या पहुँचने से पूर्व ही लवणासुर का दूत कार्पटिक साधु का वेष बनाकर भरत को बताता है कि राम और लक्ष्मण मारे गये तथा सीता सती हो गई । अब रावण अयोध्या पर आक्रमण करने आ रहा है । भरत अपनी सेना सहित युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं । इसी बीच पुष्पक विमान आ जाने से उसमें राम आदि को देखकर सभी प्रसन्न हो जाते हैं और तत्पश्चात् राम का राज्याभिषेक होता है ।

प्रसन्नराघवम् ॥त्रयोदश शती पूर्वार्ध ॥

जयदेव कृत सात अंकों का यह नाटक रामकथा पर आधारित है । इसमें वाल्मीकीय रामायण के सीता स्वयंवर से लेकर राम-रावण युद्ध के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने तक के वृत्त को चित्रित किया गया है । मुख्यत: वाल्मीकि-रामायण पर आधारित होते हुए भी कवि ने इसमें अनेक अनूठी कल्पनाएं की हैं । इसकी भाषा सरल तथा हृदयस्पर्शी है ।

प्रथम अंक में सीता-स्वयंवर में बाणासुर और रावण आते हैं । दोनों ही धनुष उठाने में असमर्थ रहते हैं । द्वितीय अंक में विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं । राम ताड़का

तथा सुबाहु का वध करते हैं । मिथिलापुरी की वाटिका में विवाह से पूर्व ही राम-सीता के पूर्वानुराग का वर्णन है । तृतीय अंक में विश्वामित्र धनुष मंगवाते हैं । परशुराम शिव-धनुष के आरोपण की शर्त हटा देने का संदेश भेजते हैं । राम सबके समक्ष धनुष भंग करते हैं । चतुर्थ अंक में धनुर्भंग के बाद क्रुद्ध परशुराम का मिथिला में आकर राम एवं लक्ष्मण के साथ वाग्युद्ध होता है । वे राम को वैष्णव धनुष चढ़ाने के लिए देते हैं। राम वैष्णव धनुष चढ़ाकर उनका तेज-भंग करते हैं । परशुराम उन्हें पुराणपुरूष मानकर चले जाते हैं । पंचम अंक में जयदेव गंगा, सरयू, यमुना, गोदावरी, तुंगभद्रा आदि नदियों और सागर का मानवीकरण करके उनके मुख से अपने अपने तट पर घटित राम के वनगमन से लेकर वानरों द्वारा सीतान्वेषण तक की घटनाओं का वर्णन कराते हैं । षष्ठ अंक में राम इन्द्रजाल के द्वारा रावण और सीता के पारस्परिक संवाद और हनुमान द्वारा लंका दहन की सभी घटनाएं देखते हैं । सप्तम अंक में विभीषण का राम की शरण में आना वर्णित है । सर्वप्रथम कुम्भकर्ण और मेघनाद युद्ध के लिए आते हैं । इन दोनों की मृत्यु से खिन्न रावण स्वयं युद्ध के लिए आता है । राम उसका वध करते हैं । तदनन्तर राम, लक्ष्मण तथा सीता के साथ अयोध्या लौटते हैं ।

मैथिली कल्याणम् - (त्रयोदश शती ई०)

हस्तिमल रचित मैथिली-कल्याणम् पांच अंकों का नाटक है । इसकी कथा वाल्मीकीय रामायण से भिन्न है । इसमें राम सीता के पूर्वानुराग का वर्णन किया गया है ।

प्रथम अंक में राम विवाह के लिए मिथिला आते हैं । राम और सीता एक दूसरे के प्रति केवल श्रवणमात्र से ही आकर्षित है । सीता अपनी सखी विनीता के साथ कामदेव भवन में आकर झूला झूलती हैं । वहीं दोनों का परस्पर मिलन होता है । राम सीता को देखकर उनके लावण्य पर मुग्ध हो जाते है ।

द्वितीय अंक में राम सीता के लिए व्याकुल है । उनका मित्र विदूषक उन्हें माधवी वन में ले जाता है । अचानक सीता और विनीता भी वहाँ पहुँच जाती हैं । तथा दोनों एक दूसरे की मन: स्थिति से अवगत होते हैं । राम उन्हें आश्वासन देते हैं । तृतीय अंक में सीता की षंठ नामक सखी राम के पास सीता की वियोगावस्था का कारूण्य पूर्ण वर्णन कर राम को चन्द्रकान्ताधारागृह में आने के लिए कहती है । राम संकेतित स्थान पर पहुँच कर सीता के सम्मुख अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं । चतुर्थ अंक में विदूषक तथा सीता की सखी विनीता की सहायता से राम एवं सीता का प्रमदवन में मिलन होता है । पंचम अंक में राम चापारोपण कर सीता से विवाह करते हैं ।

दूतांगद- (त्रयोदश शती ई0)

कुछ विद्वानों के अनुसार यह एक छाया नाटक है । विभिन्न सन्दर्भ ग्रन्थों में इसका विशिष्ट उल्लेख नहीं मिलता हैं । सुभट्ट द्वारा रचित इस नाटक में भी परिनिष्ठित रामकथा से अपनी रूचि के अनुसार नाटककार ने अनेक प्रसंग जोड़े हैं ।

इस नाटक में राम अंगद को दूत बनाकर रावण के पास सीता को वापस करने का संदेश लेकर भेजते हैं । रावण मायामयी सीता को मंगवाता है । जो रावण के प्रति अनुराग प्रकट करती है और अंगद को वापस प्रस्थान करने के लिए कहती है । उधर राम का अनिष्ट सुनकर सीता प्राण देने के लिए उद्यत हो जाती हैं । रावण सीता की रक्षा का आदेश देता है । नेपथ्य से रावण की सेना के विनाश तथा रावण वध की सूचना मिलती है ।

हनुमन्नाटकम् (चतुर्दश शती ई0)

यह दामोदर मिश्र द्वारा रचित चौदह अंकों का नाटक है । इसमें स्थान स्थान पर प्राचीन कवियों के श्लोक प्राप्त होते हैं । इस नाटक पर

मुरारि, राजशेखर एवं जयदेव का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है ।

प्रथम अंक में अयोध्यापति दशरथ के घर पृथ्वी के भार-स्वरूप राक्षसों के विनाश के लिए भगवान नारायण स्वयं अवतार लेते हैं । भगवान नारायण अपने मूल के चार विग्रह करके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में उत्पन्न होते हैं । महर्षि विश्वामित्र राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिए महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले आते हैं । यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए राम ताड़का तथा सुबाहु का वध करते हैं । तत्पश्चात् मिथिला में होने वाले धनुष यज्ञ का समाचार सुन-कर महर्षि विश्वामित्र इन्हें स्वयम्वर दिखलाने के लिए जनकपुरी ले जाते हैं । वहाँ रावण का पुरोहित बिना धनुष तोड़े ही रावण के साथ सीता के विवाह का प्रस्ताव रखता है जिसे राजा जनक अस्वीकार कर देते हैं । विश्वामित्र की आज्ञा से सभी उपस्थित राजाओं के समक्ष राम धनुष तोड़ते हैं । धनुष के टूटने का शब्द सुनकर परशुराम आते हैं और राम के साथ उनका वार्तालाप होता है । अन्त में अपना वैष्णव धनुष और शिवप्रदत्त परशु श्री राम को देकर चले जाते हैं । तत्पश्चात् राम और सीता का विवाह होता है और सभी अयोध्या वापस चले जाते हैं । द्वितीय अंक में विवाह के पश्चात् राम और सीता की श्रृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन है । तृतीय अंक में कैकयी के पूर्वकथित वरों के अनुसार राम को वनवास तथा भरत को राजगद्दी मिलती है । राम, लक्ष्मण तथा सीता के साथ वन चले जाते हैं । पुत्र-वियोग में राजा दशरथ प्राण त्याग देते हैं । भरत नन्दिग्राम में रहकर राम के प्रत्यावर्तन की आशा से राज्य की देखभाल करते हैं । राम पंचवटी में कुटी बनाकर रहने लगते हैं । इसी बीच एक दिन रावण के आदेश के अनुसार मारीच कनकमृग का वेष बनाकर आश्रम के समीप आता है । सीता उसके रूप पर मुग्ध होकर श्रीराम से उसे मारकर लाने की प्रार्थना करती हैं । सीता लक्ष्मण को भी उनके साथ भेज

देती है । लक्ष्मण उस कुटी के चारों ओर एक रेखा खींच कर चले जाते हैं । चतुर्थ अंक में राम और लक्ष्मण के जाने के पश्चात् रावण भिक्षुक का वेष बनाकर कुटी के पास आता है और सीता से भिक्षा की याचना करता है । सीता भिक्षा देने के लिए ज्यों ही रेखा से बाहर निकलती हैं रावण बलपूर्वक उन्हें पकड़कर विमान में बैठाकर लंका की ओर प्रस्थान करता है । जटायु सीता की रक्षा करने का प्रयत्न करता है और रावण के साथ युद्ध करते हुए घायल हो जाता है । पंचम अंक में राम लक्ष्मण सीता को खोजते हुए किष्किन्धा पर्वत के पास पहुंचते हैं । वहां हनुमान से उनकी भेंट होती है । हनुमान राम तथा लक्ष्मण को सुग्रीव और बालि के बैर की बात बताते हैं । तदनन्तर राम बालि का वध करते हैं तथा सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य प्रदान करते हैं । षष्ठ अंक में वानरों द्वारा सीतान्वेषण, हनुमान का समुद्रलंघन, अशोक-वाटिका में सीता से भेंट, सीता को राम की अभिज्ञान रूप में अंगूठी देना, लंका दहन तथा सीता से अभिज्ञान रूप में चूड़ामणि लेकर राम के पास वापस लौटने तक की घटनाओं का वर्णन है । सप्तम अंक में विभीषण का राम की शरण में आना और राम का समुद्र को पार करके लंका पहुंचना वर्णित है । अष्टम अंक में राम अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजते हैं । अंगद और रावण में वाद-विवाद होता है । अंगद रावण को युद्ध की चुनौती देकर वापस चला जाता है । नवम अंक में मन्दोदरी द्वारा सीता को लौटाने का वर्णन है किन्तु हठी रावण उसकी एक नहीं सुनता है । दशम अंक में रावण माया प्रपंच द्वारा कभी राम का सिर काटकर जानकी को दिखलाता है, कभी अपना सिर राम के हाथ में रखकर जानकी के समक्ष रखता है । सरमा नामक राक्षसी के भेद खोलने पर रावण अपना मनोरथ विफल जान कर लौट जाता है । एकादश अंक में राम और कुम्भकर्ण का युद्ध तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु का वर्णन है । द्वादश अंक में मेघनाद का राम के साथ माया युद्ध प्रारम्भ

होता है । अन्त में मेघनाद का वध करते हैं । त्रयोदश अंक में मेघनाद का वध सुनकर क्रुद्ध रावण युद्ध भूमि में पहुँचता है और एक घातिनी शक्ति द्वारा लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है । हनुमान द्वारा लाई औषधि से लक्ष्मण चेतना प्राप्त करते हैं । चतुर्दश अंक में राम रावण का युद्ध होता है । इन्द्र अपना रथ और दिव्यास्त्र राम के पास भेजते हैं । भयंकर युद्ध के पश्चात् रावण की मृत्यु हो जाती है । इसके बाद अंगद पितृवध से उत्तेजित राम तथा अन्य वीरों को ललकारते हुए युद्ध के लिए उद्यत हो जाता है । तभी आकाशवाणी होती है - "इस बैर का बदला तुम कृष्ण अवतार में लोगे " । अंगद शान्त हो जाता है । सभी प्रसन्न होते हैं । सीता की अग्नि परीक्षा के पश्चात् विभीषण लंका का अधिपति बनता है । अयोध्या लौटने पर वसिष्ठ राम का राज्याभिषेक करते हैं ।

आनन्दराघवम् - [सत्रहवीं शती०]

राजचूड़ामणि द्वारा रचित आनन्दराघवम् पाँच अंकों का नाटक है । यह रामायण पर आधारित होते हुए भी अपनी विलक्षणता रखता है । इसकी भाषा सरल तथा भावपूर्ण है ।

प्रथम अंक में विश्वामित्र राम को अहल्या उद्धार के लिए मिथिला के उद्यान में ले जाते हैं । वहाँ शतानन्द विश्वामित्र के अभिवादन के लिए सीता को भेजते हैं । राम तथा सीता दर्शनमात्र से परस्पर-अनुरक्त हो जाते हैं । योग विद्या नामक तापसी राम और सीता का मिलन कराती है । द्वितीय अंक में विश्वामित्र राम के शौर्य का कथन करके जनक से शिवधनुष मँगाने के लिए कहते हैं । तभी रावण का मंत्री सारण सीता को रावण के लिए माँगता है किन्तु प्रण का बहिष्कार करके वह सीता को बलपूर्वक ले जाने की धमकी देकर चला जाता है । विश्वामित्र की आज्ञा से राम धनुष सन्धान करते हैं । तत्पश्चात् राम सीता के विवाह की तैयारियाँ होती है ।

तृतीय अंक में सारण राम के विनाश हेतु गूढ़वेदी नामक दूत को षण्मुख, हेरम्ब बाणासुर तथा लवणासुर को कुपित करने के लिए भेजता है । इन वीरों के मिथिला पहुंचने पर युद्ध होता है और राम तथा लक्ष्मण इनका संहार करते हैं । अपने पक्ष का विनाश देख कर सारण मूच्छिंत हो जाता है तभी नारद मुनि आकर उसे परशुराम को उकसाने के लिए कहते हैं । सारण गूढ़वेदी को महेन्द्र पर्वत पर परशुराम जी के पास भेजता है । चतुर्थ अंक में कुपित परशुराम का प्रवेश होता है । वे राम को वैष्णव धनुष देते हैं । राम धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर उनका कोप शान्त करते हैं । दशरथ इस विजय को देखकर राम को राज्य देने की इच्छा प्रकट करते हैं । तभी अगस्त्य ऋषि के शिष्य आते हैं और दशरथ से उनके बारह वर्षीय यज्ञ की रक्षा के लिए राम को साथ ले जाने की इच्छा प्रकट करते हैं । दशरथ राम तथा लक्ष्मण को भेजने में अनिच्छा प्रकट करते हैं किन्तु विश्वामित्र कैकयी के वरों का स्मरण कराकर उन्हें भेजने के लिए विवश कर देते हैं । तत्पश्चात् राम सीता तथा लक्ष्मण को लेकर वन चले जाते हैं । पंचम अंक में भरत ननिहाल से वापस आते हैं । सुमन्त्र भरत को राम के शूर्पणखा-विरूपण तक की सभी घटनाएं बताते हैं तथा उनकी पादुकाएं भी देते हैं । इतने में हनुमान लक्ष्मण के लिए औषधि लेने आते हैं । वह भी भरत को सीता-हरण से लेकर रावण के साथ युद्ध की सभी घटनाएं बताते हैं । इसी बीच सम्पाति आकर रावण-वध, सीता की अग्नि परीक्षा और राम के आगमन की सूचना देता है । तत्पश्चात् राम का राज्याभिषेक होता है ।

अद्भुत-दर्पणम् (सप्तदश शती ई0)

महादेव कृत दस अंकों का यह नाटक अद्भुत घटनाओं से युक्त है । नाटक की भाषा क्लिष्ट है ।

प्रथम अंक में राम सेना सहित त्रिकूट पर्वत पर जाते हैं । वे अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजते हैं । इतने में विभीषण का अमात्य अनल

यह संदेश देता है कि शत्रु मायावी युद्ध करने की योजना बना रहे हैं । शम्बर नामक राक्षस दधिमुख वानर का रूप धारण करके उसके कथन की पुष्टि करता है । द्वितीय अंक में सुग्रीव युद्ध करने का संदेश देकर दधिमुख को राम के पास भेजता है । मायावी दधिमुख घबरा जाता है और सुग्रीव का हाथ जाम्बवान् को देकर स्वयं अदृश्य हो जाता है । तभी राम और लक्ष्मण के समक्ष सुग्रीव का कटा हुआ सिर गिरता है । दधिमुख रूपी राक्षस आकर उसे अंगद का कार्य बतलाता है परन्तु नेपथ्य से अंगद के आने की सूचना सुनकर वह तिरोहित हो जाता है । तृतीय अंक में सुग्रीव के वध से दु:खी राम तथा लक्ष्मण पर्वत के शिखर पर पहुँचते हैं । नेपथ्य से पता चलता है कि अंगद दधिमुख को मार रहा है इतने में सुग्रीव आता है सब प्रसन्न होते हैं राम उसको हृदय से लगाते हैं । चतुर्थ अंक में प्रहस्त नामक राक्षस अंगदरूपधारी शम्बर को वास्तविक अंगद समझकर मारता है किन्तु पारस्परिक संकेतों से एक दूसरे को पहचान लेते हैं । जाम्बवान् शम्बर को किष्किन्धा की गुफा में बन्द करने के लिए ले जाता है । पंचम अंक में माल्यवान् और मय राक्षस की वार्त्ता से ज्ञात होता है कि सुग्रीव से युद्ध करते समय रावण के मुकुट की अद्भुत दर्पण मणि गिर गयी थी जिसे सम्पाति ने विभीषण को तथा विभीषण ने राम को दे दी । शूर्पणखा राम का मायावी सिर बनवाकर सीता के समक्ष फेंकती है, जिसे देखकर सीता मूर्च्छित हो जाती हैं । त्रिजटा उन्हें आश्वासन देती है । षष्ठ अंक में रावण का मंत्री महोदर रावण से मायामयी सीता बनवाकर लौटाने के लिए कहता है किन्तु रावण इस बात से इन्कार कर देता है तदनन्तर वे दोनों सीता को अपने वश में करने का उपाय सोचते हैं । अद्भुतदर्पणमणि द्वारा राम और लक्ष्मण यह समस्त दृश्य देखते हैं । सप्तम अंक में रावण राम का रूप धारण कर सीता के पास आता है परन्तु त्रिजटा को देखकर छुप जाता है । त्रिजटा सीता को मायानाटिका के अन्तर्गत युद्ध दिखाती है जिसमें लक्ष्मण रावण की कटु आलोचना करते हैं जिसे सुनकर रावण कुपित होकर

युद्ध के लिए उद्यत हो जाता है । अष्टम अंक में राम अपने पराभव को सुनकर जैसे ही युद्ध के लिए तैयार होते है वैसे ही कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजित् के वध की सूचना मिलती है । तत्पश्चात् रावण युद्ध के लिए जाता है । नवम अंक में राम और रावण का युद्ध तथा रावण की मृत्यु होती है । दशम अंक में शूर्पणखा तथा मय राक्षस सीता के अनिष्ट का विचार करते है किन्तु सफल नहीं हो पाते । नैपथ्य से अग्निपरीक्षा की सूचना मिलती है । सभी पुष्पक विमान से अयोध्या लौट जाते हैं ।

सीताराघवम् ‡अष्टदश शती ई०‡

सात अंकों का यह नाटक कवि रामपाणिवाद द्वारा ट्रावनकोर के महाराज मार्तण्डवर्मा के आमन्त्रण पर आये हुए विद्वान ब्राह्मणों के समक्ष अभिनीत करने के लिए लिखा गया था । रामायण पर आधारित होते हुए भी कवि ने अपनी कल्पना का यथेष्ट प्रयोग किया है । इसकी भाषा कहीं कहीं अत्यन्त क्लिष्ट है ।

प्रथम अंक में विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए ले जाते हैं । राम के निरीक्षण में यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाता है । द्वितीय अंक में ताड़का तथा सुबाहु के वध से दु:खी होकर मायावसु नामक राक्षस राम के विनाश की योजना बनाता है । वह मारीच की अंगूठी के प्रभाव से स्वयं तो दशरथ तथा करम्बक् को सुमन्त्र बनाकर मिथिला जनक की सभा में पहुंचता है तथा राम को धनुष सन्धान से रोकता है । विश्वामित्र उन्हें पहचान लेते हैं । इतने में शतानन्द के साथ दशरथ सपरिवार आते हैं । राम द्वारा धनुर्भंग देखकर मायावसु तथा करम्बक परशुराम के पास जाते हैं । तृतीय अंक में जनक तथा कुशध्वज की कन्यायों का विवाह दशरथ के पुत्रों से सम्पन्न होता है । राम क्रुद्ध परशुराम को शान्त करते हैं । मिथिला में ही राज्याभिषेक की तैयारियां होती है । चतुर्थ अंक में राक्षसों की ही योजना से राम को वनवास

मिलता है । वन में राम द्वारा विराध वध लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा विरूपण का वर्णन है । पंचम अंक में सीता-हरण से लेकर वालि-वध की घटनाएं हैं । मायावसु नामक राक्षस इन्द्र के चारण का रूप धारण करके राम आदि को निराश करने के लिए सीता और हनुमान के वध की सूचना देता है किन्तु तभी दधिमुख के आ जाने से मायावसु का छल प्रकट हो जाता है । षष्ठ अंक में राम एवं रावण की सेनाओं में युद्ध होता है । सप्तम अंक में राम रावण का वध करते हैं । इन्द्र के बल से सभी वानर जीवित हो जाते हैं । राम अयोध्या लौटते हैं और वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है ।

प्रसन्नराघवम् ‡विंश शती ई0‡

दयालुविश्वेश्वर कृत यह पाँच अंकों का नाटक है । रामायण पर आधारित होते हुए भी कवि की इस नाटक में अपनी अनेक मौलिक उद्भावनाएं हैं । इसकी भाषा सरल एवं सुबोध है ।

प्रथम अंक में हनुमान के जन्म तथा सुग्रीव के साथ राम की मैत्री का वर्णन है । द्वितीय अंक में राम बालि का वध करके सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा एवं अंगद को युवराज बनाते हैं । सुग्रीव राम को सीता के आभूषण देता है । हनुमान अभिज्ञान रूप में राम की अंगूठी लेकर लंका को प्रस्थान करते हैं । तृतीय अंक में हनुमान का सीता के पास पहुँचना, उन्हें राम की अंगूठी देना, अशोक वाटिका नष्ट करना, अक्षय-वध, लंका दहन एवं सीता का चूड़ामणि लेकर राम के पास आना वर्णित है । चतुर्थ अंक में राम के ससैन्य समुद्र पार करने के पश्चात् विभीषण राम की शरण में आता है । अंगद राम का दूत बनकर रावण से सीता को लौटाने के लिए कहता है । तदनन्तर युद्ध प्रारम्भ होता है जिसमें मेघनाद तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु होती है । पंचम अंक में रावण अपने पुत्र अहिरावण को पाताल से राम एवं लक्ष्मण के विनाश हेतु बुलाता है । अहिरावण

विभीषण का रूप धारण करके राम एवं लक्ष्मण को पाताल में ले जाता है वहां उनके बलि देने की तैयारियां करता है । इतने में हनुमान वहां पहुंचकर अहिरावण का वध करते हैं तथा दोनों भाईयों को मुक्त करते हैं । राम और रावण का युद्ध होता है । विभीषण राम से रावण के नाभिकुण्ड पर बाण चलाने को कहते हैं । नाभिकुण्ड पर बाण लगते ही रावण की मृत्यु हो जाती है । सीता की अग्नि-परीक्षा के उपरान्त राम अयोध्या लौटते हैं । वहां उनका राज्याभिषेक होता है ।

इसके अतिरिक्त रामकथा विषयक कतिपय अन्य नाटक भी लिखे गए हैं । कुछ तो अप्रकाशित हैं और कुछ का केवल उल्लेख काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है ।

राम सम्बन्धी नाटकों के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम-कथा को सूत्रबद्ध करने वाले आदि कवि वाल्मीकि के समय से लेकर बीसवीं शती तक अनेक राम विषयक नाटक लिखे जा चुके हैं । सभी नाटकों का आधार वाल्मीकि द्वारा वर्णित रामकथा ही रही है । किसी भी काल या युग में राम-कथा का महत्त्व कम नहीं हुआ है बल्कि उसका उत्तरोत्तर विकास ही होता गया है । किसी ने कथा को पांच छ: अंकों में, किसी ने सात अंकों में, किसी ने दस अंकों में तथा किसी ने चौदह अंकों में निबन्धित किया है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि-रामायण की रामकथा में से जो घटनाएं नाटकीय, मार्मिक, हृदयस्पर्शी और अभिनेय है, संस्कृत नाटककारों ने अपने अपने नाटकों के लिए उन्हीं प्रसंगों को मूल आधार बनाया और उन नाटकीय और मार्मिक दृश्यों को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार विकसित करने का प्रयास किया है । संस्कृत के रामकथाश्रयी नाटकों

की कथा का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अनेक नाटककारों ने राम कथा से सम्बन्धित विश्वामित्र यज्ञ, धनुष प्रसंग, परशुराम प्रसंग, राम-वनवास, सीता हरण, राम-रावण युद्ध, अग्नि परीक्षा, राम राज्याभिषेक, सीता निष्कासन, अश्वमेध यज्ञ, लव चन्द्रकेतु युद्ध एवं राम और सीता के मिलन आदि घटनाओं को ही परिवर्तन के साथ चित्रित किया है । सभी नाटकों में नाटककारों ने रस की दृष्टि से ही प्रधान अन्तर किये हैं । कुछ नाटक श्रृंगारिक संरचना विधान पर आधारित है तथा अधिकांश अद्भुत रस सम्पन्न है जिनमें माया-प्रपंच आदि की कल्पनाएं हैं, एसे प्रसंगों की अवतारणा की गई है जो अद्भुत रस की निष्पत्ति में सहायक हैं। आश्चर्यचूड़ामणि, अद्भुतदर्पणम्, हनुमन्नाटकम्, दूतांगद आदि नाटकों में यद्यपि अंगी रस अन्य ही हैं किन्तु अद्भुत रस इन सभी नाटकों पर हावी दिखाई देता है ।

नाटककारों ने अपने अपने नाटकों में वाल्मीकीय रामायण की रामकथा के विपरीत अपनी रूचि तथा कल्पना के अनुसार कथानकों में यत्र तत्र अनेक परिवर्तन किये हैं । महावीरचरितम्, अनर्घराघवम्, बालरामायण, हनुमन्नाटकम्, आनन्दराघवम्, सीताराघवम् इन सभी नाटकों का प्रारम्भ विश्वामित्र के द्वारा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ आश्रम ले जाने से होता है । महावीरचरितम् के अतिरिक्त अन्य सभी नाटकों में वाल्मीकीय रामायण के समान ही विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं । वहाँ धनुर्भंग के पश्चात् राम और सीता का विवाह होता है किन्तु महावीरचरितम् में सीता तथा उर्मिला अपने चाचा कुशध्वज के साथ विश्वामित्र आश्रम में आती हैं । आश्रम में ही राम द्वारा धनुर्भंग करने पर राम और सीता का विवाह होता है ।

प्रसन्नराघवम्, मैथिलीकल्याणम् तथा आनन्दराघवम् नाटकों में

राम और सीता के विवाह से पूर्व अनुराग का वर्णन है । जो कि वाल्मीकीय रामायण से बिल्कुल विपरीत है । आनन्दराघवम् में शतानन्द विश्वामित्र के अभिवादन के लिए सीता को भेजते हैं । वहीं पर राम और सीता परस्पर दर्शनमात्र से ही अनुरक्त हो जाते हैं । योगविद्या नामक तापसी उन दोनों के मिलन में सहायता करती है । मैथिलीकल्याणम् नाटक का आरम्भ तो राम और सीता के पूर्व अनुराग से ही प्रारम्भ होता है और अन्त में धनुर्भंग के पश्चात् राम और सीता का विवाह होता है ।

वाल्मीकीय रामायण में शिव-धनुष के टूटने का शब्द सुनकर परशुराम स्वयं आते हैं तथा राम को वैष्णव धनुष सन्धान के लिए देते हैं । महावीरचरितम् तथा आनन्दराघवम् नाटकों में राक्षस जन राम के अभ्युदय से चिन्तित होकर परशुराम को उकसाते हैं तब परशुराम शिव-धनुष के टूटने पर मिथिला जाते हैं किन्तु जयदेव कृत प्रसन्नराघवम् नाटक में तो परशुराम शिव-धनुष के आरोपण की शर्त हटा देने का जनक के पास संदेश भेजते हैं । तब जनक द्वारा उनका संदेश अस्वीकार कर देने पर शिव-धनुष के टूटने पर वह मिथिला आते हैं । नाटक में राम-लक्ष्मण द्वारा परशुराम के अद्भुत कार्यों का वर्णन है ।

प्रतिमानाटकम्, महावीरचरितम्, अनर्घराघवम्, बालरामायण, उल्लालराघवम्, हनुमन्नाटकम्, आनन्दराघवम्, तथा सीताराघवम् इन सभी नाटकों में राम के वनवास गमन का वर्णन किया गया है । प्रतिमानाटकम् उल्लालराघवम् तथा हनुमन्नाटकम् में वाल्मीकि-रामायण के समान ही कैकयी अपने पूर्वयाचित वरों के अनुसार दशरथ से राम को वनवास तथा भरत को राजगद्दी देने के लिए कहती है किन्तु महावीरचरितम्, अनर्घराघवम्, बालरामायण और सीताराघवम् के नाटककारों ने कैकयी के चरित्र को निर्दोष

सिद्ध करने के लिए रावण के आदेश से शूर्पणखा द्वारा मन्थरा का रूप धारण करके राम को वनवास दिलाया है । आनन्दराघवम् में अगस्त्य ऋषि अपने बारह वर्षीय यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ को कैकयी के वरों का स्मरण दिलाकर राम तथा लक्ष्मण को ले जाते हैं । अनर्घराघवम् में तो राम मिथिला से ही वन के लिए प्रस्थान करते हैं ।

प्रतिमानाटकम्, महावीरचरितम्, उदात्तराघवम्, आश्चर्यचूड़ामणि अनर्घराघवम्, बालरामायण, उल्लालराघवम्, प्रसन्नराघवम्, हनुमन्नाटकम्, आनन्दराघवम् तथा सीताराघवम्, इन सभी नाटकों के नाटककारों ने सीता-हरण की घटना में अनेक नीवन कल्पनाओं का समावेश किया है । प्रतिमानाटकम् अनर्घराघवम् तथा हनुमन्नाटकम्, इन तीनों ही नाटकों में रावण भिक्षुक का वेष धारण कर राम की कुटी में पहुंचता है किन्तु तीनों में ही वार्तालाप के प्रसंग को अलग अलग ढंग से प्रस्तुत किया गया है । प्रतिमानाटकम् में रावण परिव्राजक के वेश में राम की कुटी में आता है और राम से दशरथ के श्राद्ध के लिए सुवर्ण मृग का दान बताता है । तभी स्वर्ण-मृग के दिखाई देने पर राम सीता को अकेले छोड़ कर उस मृग के पीछे चले जाते हैं । राम के जाते ही रावण अपने वास्तविक रूप में आकर सीता का हरण करता है । अन्य दोनों नाटकों में वाल्मीकि-रामायण के समान ही राम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में रावण सीता का बल पूर्वक हरण करता है । उदात्तराघवम् नाटक में रावण आश्रम के कुलपति का रूप धारण करके राम और सीता के पास आता है । उसी समय एक छद्मवेशी राक्षस आकर सूचना देता है कि राक्षस रूपी कनकमृग लक्ष्मण को ले जा रहा है । यह सुनकर राम सीता को रावण रूपी कुलपति के संरक्षण में छोड़कर चले जाते हैं तभी रावण सीता का हरण करता है। जबकि आश्चर्यचूड़ामणि नाटक में मायावी शक्तियों के द्वारा सीता-हरण की घटना का वर्णन है । सुवर्ण मृग को पकड़ने के लिए

राम और लक्ष्मण के जाने के पश्चात् रावण राम के रूप में तथा उसका सारथि लक्ष्मण के रूप में कुटी में सीता के पास आकर भरत को शत्रु का भय बताते है और तीनों रथ पर आरूढ़ होकर चले जाते हैं । उधर शूर्पणखा सीता का रूप धारण कर वास्तविक राम को उलझाये रखती है । अन्त में मायावी शक्तियों के समाप्त होने पर सही स्थिति का पता चलता है । इस प्रकार प्रत्येक नाटककार ने अपने चमत्कार सृष्टि और रस संयोजना की दृष्टि से ही परिवर्तन किये है ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला नाटक का आरम्भ सीता निष्कासन से होता है । उत्तररामचरितम् में "चित्रदर्शन" की कल्पना नाटककार भवभूति के उर्वर मस्तिष्क की उपज है ।वाल्मीकि की रामकथा में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता । दोनों नाटकों में छाया सीता की कल्पना तथा उसका नाटकीय विनियोग नाटककारों की मौलिक प्रतिभा की दिव्य देन है ।

कुन्दमाला में सीता भगवती भागीरथी से मनौती मांगती है कि सफलता-पूर्वक सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् मैं प्रतिदिन कुन्द पुष्पों की माला चढ़ाया करूंगी । वाल्मीकीय रामायण में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि दिङ्नाग ने अपने समय में प्रचलित प्रथा का ही वर्णन किया है ।

शम्बूक वध की कथा यद्यपि वाल्मीकीय रामायण में मिलती है, किन्तु अन्य प्रसंग में । भवभूति ने उत्तररामचरितम् में शम्बूक वध की कथा को एक नाटकीय मूल्य प्रदान किया है ।

वाल्मीकि-रामायण की रामकथा में यज्ञाश्व के प्रसंग में राम के साथ लव और कुश का युद्ध वर्णित है जब कि उत्तररामचरितम् में यह युद्ध लव और चन्द्रकेतु के मध्य होता है ।

उत्तररामचरितम् में अभिनीत गर्भांक नाटक कवि की प्रतिभा का चिर-नूतन प्रयोग है । इसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में नहीं मिलता है । कुन्दमाला में दिङ्नाग ने वाल्मीकि-रामायण के समान ही लव और कुश से रामायण का गान कराया है, किन्तु दोनों ही नाटककारों ने वाल्मीकीय रामायण की दुःखान्त कथा के विपरीत राम और सीता का मिलन कराकर नाटक को सुखान्त बना दिया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परवर्ती कवियों ने जिनमें अधिकांश नाटककार ही रहे, वाल्मीकीय रामायण के कथानक में जो भी परिवर्तन किये वे सब प्रधान्येन रस एवं रोचकता के आग्रह से ही हुए हैं । वाल्मीकि-रामायण का तो प्रधान रस करूण ही रहा है यद्यपि काव्य में वीर रस की भी प्रधानता है । परवर्ती नाटकों में प्रायः श्रृंगार और वीर रस को प्रधान रस बनाया । रामभक्ति की धारा के प्रवाह में राम कथा पर काव्य रचना करने वाले प्रायः सभी कवियों को अवगाहन करने का स्वभाविक अवसर मिला अतः सबकी कृतियों में रामभक्ति न्यूनाधिक मात्रा में अपनी झलक दिखाने लगी और फलतः रामकथा में यादृच्छिक परिवर्तन किये जाने लगे । सभी परिवर्तनों का एक मात्र उद्देश्य राम के प्रति भक्ति की अभिव्यक्ति ही समझ पड़ती है । वे सारे पात्र जो राम से सम्बन्धित रहे उन्हें हर प्रकार से निरपराध सिद्ध करने का प्रयास भी नाटकों में दिखाई देता है । यहाँ तक कि कैकयी और मन्थरा को भी निरपराध सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है ।

इस परिच्छेद में प्रस्तुत रामकथाश्रयी नाट्य-साहित्य की समीक्षा से यह सिद्ध होता है कि इस देश की संस्कृति से एकात्म हुई रामायण ने भारत के साहित्यकारों की रचनाधर्मिता को व्यापक रूप से प्रभावित किया है । राम की कथा अपने आप में एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है जिसमें न केवल मानव के उत्कर्ष के चरम सम्भावनाओं का दिग्दर्शन दिखाई देता है अपितु उसके

सहज दुर्बलताओं और आभावों के लिए भी अवकाश है । इस कथा में सुख और दु:ख के अनेक प्रसंग है, मानवीय जीवन के संघर्ष और उसकी जय-पराजय का लेखा जोखा है । अपने भीतर जीवन के सभी रंग समेटे हुए होने के कारण इसके भीतर साहित्य के सभी रसों का आश्रय बन सकने वाली घटनाएं हैं । यही कारण है कि इसे आधार बनाकर किसी ने करूण, किसी ने श्रृंगार, किसी ने शान्त, किसी ने वीर और किसी ने अद्‌भुत रस सम्पन्न कृतियों का सृजन किया है ।

राम कथानक पर आश्रित नाटकों में से उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला अपने भाव सौन्दर्य और कला सौष्ठव के कारण अत्यन्त विशिष्ट है । एक और विशेष बात यह है कि वे अन्य नाटकों की अपेक्षा अपने प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ वाल्मीकि-रामायण के अत्यन्त समीप हैं । वाल्मीकि का काव्य करूणा और वेदना का काव्य है । जिसकी परिणति विवशता जन्य पीड़ा की अनिर्वचनीय अनुभूति में होती है । उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला यद्यपि सुखान्त हैं तथापि उनमें प्रधानता कभी प्रकट और कभी अप्रकट रूप से बहती हुई कारूण्य की धारा की ही है ।

द्वितीय परिच्छेद

भवभूति और दिङ्नाग का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भवभूति- व्यक्तित्व और समय

महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य के जगमगाते हुए रत्न हैं। महामहोपाध्याय डा० काणे के शब्दों में भवभूति भारतीय नाट्य साहित्य के आकाश में सर्वाधिक देदीप्यमान नक्षत्रों में से एक हैं। संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति को सर्वाधिक सम्मानित स्थान मिला है। उनकी रचनाओं ने संस्कृत साहित्य को एक नई आभा प्रदान की है। प्राय: संस्कृत कवियों ने अपने परिचय के विषय में मौन का ही अवलम्बन लिया है। प्राय: यह देखा जाता है कि नाटककार अपनी रचना की प्रस्तावना में उस रचना के रचियता के रूप में अपना थोड़ा बहुत परिचय लिख दिया करते हैं या फिर सम्पूर्ण नाटक के अन्त में रचयिता और कृति का नाम दिया हुआ मिलता है। वास्तव में महाकवि किसी देश या काल से बद्ध नहीं होते वे तो सारे संसार की निधि हैं।

महाकवि भवभूति ने अपनी तीनों रचनाओं में ही अपना थोड़ा बहुत परिचय दिया है। महावीर-चरितम् की प्रस्तावना में लेखक ने अपना सबसे अधिक परिचय दिया है। मालती-माधवम् और उत्तरराम-चरितम् में उनका आत्मोल्लेख अपेक्षाकृत कम है। उत्तररामचरितम् की प्रस्तावना में नान्दी के अनन्तर सूत्रधार कहता है :-

अस्ति तत्रभवान् काश्यप: श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्त्तते।

उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते।। 2

अर्थात् कश्यप गोत्रीय श्रीकण्ठ पद के उपाधि वाले भवभूति नामक एक परम आदरणीय व्यक्ति है।

भवभूति के समय के विषय में बहुत कुछ तथ्य ज्ञात हैं जिनके आधार पर

1- उ०च० की प्रस्तावना- म०म०काणे-पृ ।

2- उ०च०श्लोक 2

उनका समय निर्धारण किया जा सकता है ।

भवभूति कालिदास के परवर्ती थे क्यों कि उन पर कालिदास का स्पष्टतया प्रभाव दिखाई देता है । बाण भी भवभूति से पूर्ववर्ती थे । क्यों कि मालतीमाधव के नवम और दशम अंक में कादम्बरी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । बाण का स्थिति का-काल सप्तम शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है[1]। बाण ने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन अनेक कवियों और लेखकों का वर्णन किया है लेकिन उन्होंने भवभूति की चर्चा कहीं नहीं की है । जिससे यह स्पष्ट होता है कि भवभूति बाण के समकालीन कवि नहीं थे । बाण हर्ष के आश्रित कवि थे । हर्ष का राज्याभिषेक अक्टूबर 606 ई० में हुआ और मृत्यु 648 ई० में हुई । अतः बाण का समय सातवी शती का पूर्वार्ध माना जाता है । इसी आधार पर भवभूति का समय 650 ई० के बाद ही माना जायेगा[2]।
वामन ने जिनका समय अष्टम शताब्दी का उत्तरार्ध है अपने 'काव्यालण्कार-सूत्र' में भवभूति के 'इयं गेहे लक्ष्मी' आदि पद्यों को उद्धृत किया है । अतः वे वामन से पूर्ववर्ती हैं ।

वामन के अतिरिक्त अन्य परवर्ती लेखकों ने भी भवभूति की रचनाओं के उद्धरण दिये है - राजशेखर ‡ 900 ई०के लगभग ‡ ने काव्यमीमांसा में और बालरामायण में, धनपाल ‡10वीं शती का उत्तरार्ध‡ ने तिलकमंजरी में, सोमदेव ‡959 ई०‡ ने धनंजय ‡ 995 ई० के लगभग‡ दशरूपक में, महिमभट्ट ‡11वीं शती के प्रारम्भ ‡ ने व्यक्तिविवेक में, मम्मट ने ‡ 1100 ई के लगभग ‡ काव्यप्रकाश में अनेक उदाहरण दिये हैं ।

कल्हण के अनुसार भवभूति कान्यकुब्ज ‡कन्नौज‡ के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे । यशोवर्मा को काश्मीर नरेश ललितादित्य ने पराजित किया था[3]। राजतरंगिणी के अनुसार ललितादित्य का शासन काल 693 ई० से 736 ई० था ।

1- भवभूति के नाटक डा० ब्रज बल्लभ शर्मा
2- उत्तररामचरितम्- कपिल देव द्विवेदी
3- राजतरंगिणी-4/134 उद्धृत भवभूति के नाटक

भवभूति और वाक्पतिराज दोनों ही यशोवर्मा के आश्रित कवि थे । कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है :-

कविर्वाक्पतिराज श्रीभवभूत्यादि सेवित:
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ।।

§ राज 4-114§

वाक्पतिराज ने यशोवर्मा की प्रशस्ति के रूप में गउडवहो नामक लिखे गये एक प्राकृत काव्य में सूर्य ग्रहण का वर्णन किया है । डा० याकोबी की गणना के अनुसार इस ग्रहण की तिथि 14 अगस्त 733 ई0 है । वाक्पतिराज ने भवभूति के सम्बन्ध में एक श्लाघात्मक पद्य लिखा है जिसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है:-

भवभूतिजलधि-निर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति ।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ।।

इससे प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज भवभूति से बहुत अधिक प्रभावित थे और उस समय तक भवभूति अपनी कृतियों का निर्माण कर चुके थे । उनकी बहुत ख्याति हो चुकी थी और उनके ग्रन्थों को लोग बड़े आदर के साथ पढ़ते थे । ऐसा भी हो सकता है कि पहले भवभूति राजकवि रहे हों तत्पश्चात् वाक्पतिराज उस पद पर नियुक्त हुए हों । उपर्युक्त सूर्य-ग्रहण के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि "गउडवहो" की रचना 733 ई0 के पश्चात् हुई है और उससे पूर्व भवभूति अपने नाटक लिख चुके थे ।

डा० काणे ने इस विषय में सन्देह प्रकट किया है कि भवभूति यशोवर्मा के आश्रित कवि थे । उनका कथन है कि वाक्पतिराज स्पष्ट शब्दों में यह नहीं लिखते है कि भवभूति यशोवर्मा के आश्रित कवि है । कल्हण ने भवभूति के जलधि० आदि श्लोक को पढ़कर सम्भवत: यह अनुमान लगाया है कि भवभूति भी यशोवर्मा के आश्रित कवि थे अत: उसने राजतरंगिणी में दोनों का नाम लिख दिया है । मैं डा०काणे इस विचार से सहमत नहीं हूँ । केवल जनश्रुति के आधार पर कल्हण या अन्य कोई प्रामाणिक लेखक इस प्रकार की बात नहीं लिख सकता है ।

भवभूति को "श्री भवभूति" इस आदर के साथ संबोधित करना कल्हण की अज्ञता नहीं अपितु विशेषज्ञता को सूचित करता है[1]।

राजशेखर ने ‖880 ई0- 920 ई0‖ में बालरामायण में एक श्लोक लिखा है और उसमें कहा है कि पहले वाल्मीकि कवि हुए, तत्पश्चात् वहीं भर्तृमेण्ठ हुए, वहीं भवभूति हुए और अब वहीं राजशेखर है। इस प्रकार अपने आपको भवभूति का अवतार बताते हैं।

बभूव वाल्मीकभव: पुरा कविस्तत: प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थित: पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते संप्रति राजशेखर ।।

‖ बालरामायण- 1/16‖

भवभूति राजशेखर से पूर्व हुए यह तो निश्चित है ही परन्तु उपर्युक्त पद्य से यह भी सिद्ध हो जाता है कि राजशेखर के समय तक भवभूति इतने प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो चुके थे कि राजशेखर ने स्वयं को उनका अवतार कहा है। राजशेखर कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल का गुरू था। महेन्द्रपाल के शिलालेख 903 और 907 ई0 के है। राजशेखर का अपने आप को भवभूति का अवतार बताना विशेष महत्त्वपूर्ण बात है। इससे स्पष्ट होता है कि वह अपने ही तुल्य भवभूति को भी कन्नौज के राजा ‖यशोवर्मा‖ का गुरू मानता है तथा कन्नौज में भवभूति के रहने आदि का उसे पूर्ण ज्ञान था। दोनों ही कान्यकुब्जेश्वर के राजगुरू थे।

उपर्युक्त तथ्यों से यह पूर्णत: सिद्ध हो जाता है कि भवभूति 650 ई0 के बाद में हुए है क्यों कि 733 ई0 में भवभूति और वाक्पतिराज दोनों ही यशोवर्मा के आश्रित कवि थे। 733 ई0 में यशोवर्मा की पराजय के बाद ये राजाश्रय छोड़कर संभवत: सन्यास लेकर दक्षिण में चले गए और वहां उन्होंने उम्बेक नाम रखकर मीमांसा श्लोकवार्तिक आदि टीकाएं लिखी।

भवभूति का समय लगभग 680 ई0 से 750 ई0 तक मानना उचित है।

1- उद्धृत - उत्तररामचरितम् - डा0 कपिल देव द्विवेदी

अतः सप्तम शती का उत्तरार्ध और अष्टम शताब्दी का पूर्वार्ध मानना चाहिए ।

पाश्चात्य विद्वानों- बेबर, शरूडर, मैक्समूलर, मैक्डानल, विन्सेण्ड, स्मिथ आदि ने भी भवभूति का समय सप्तम शताब्दी के अन्तिम चरण से अष्टम शताब्दी के पूर्वार्ध तक समय निश्चित किया है ।[1]

उनके जन्म स्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है । महावीर-चरितम् की प्रस्तावना में लिखा है :-

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नगरम् "

अतः सम्भवतः भवभूति का निवास स्थान दक्षिण का कोई पद्मपुर नगर था । लेकिन इसकी वास्तविक स्थिति कहाँ है इसके विषय में मालती-माधव की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है :-

"अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम् " ।

इससे पद्मपुर की स्थिति निश्चित हो गयी कि विदर्भ प्रान्त में पद्मपुर नामक नगर में भवभूति का जन्म हुआ था । उत्तरापथ और दक्षिणापथ परस्पर सम्बद्ध शब्द है । प्रसिद्ध कोशकार श्री वी०एस०आप्टे के अनुसार उत्तरापथ का अर्थ है - उत्तर की ओर जाने वाला मार्ग या उत्तरी मार्ग । इसी प्रकार दक्षिणापथ का अर्थ है दक्षिण की ओर जाने वाला मार्ग या दक्षिण मार्ग । दक्षिणापथ का अर्थ दक्षिण भारत नहीं है[2] ।

टीकाकार जगद्धर ने मालतीमाधव की टीका में पद्मपुर का अर्थ पद्मावती कर दिया है[3] । यह पद्मावती मालती की जन्म-भूमि थी जहाँ विदर्भराज के मंत्री का पुत्र माधव विद्याध्ययन के लिए भेजा गया था । मालती-माधवम् के नवम अंक में दिए गये पद्मावती के वर्णन के आधार पर जनरल कनिंघम ने नरवर को । जो वर्तमान मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित है । पद्मावती का आधुनिक नाम मान लिया है[4] । एम बी गर्दे ने इसमें थोड़ा संशोधन किया

1- Weber-Indian Literature P-222 उद्धृत भवभूति के नाटक

2- उद्धृत उत्तररामचरितम्- डा० कपिल देव द्विवेदी

3- पद्मनगरं पद्मावती ।- मा०मा०, जगद्धर- टीका, पृ० 7 ।

4- Cunningham Archaeological Report for 1962-5 उद्धृत भवभूति

और नरवर के समीपवर्ती एक छोटे से गाँव पदमपवाया को, जो डबरा से बारह मील की दूरी पर स्थित है, पद्मावती का परिवर्तित रूप बताया[1]। माधव व्यंकटेश लेले ने भी इसी मत का समर्थन किया है कि पद्मावती ही भवभूति का जन्म स्थान पद्मपुर है[2]।

परन्तु ये सब मान्यताएँ तभी सार्थक हो सकती है जब जगद्धर के कथनानुसार पद्मपुर को पद्मावती से अभिन्न माना जाये। डा० काणे पद्मपुर और पद्मावती को एक नहीं मानते परन्तु ये बताने में असमर्थ हैं कि पद्मपुर कहाँ है।

यदि पद्मावती और उसके समीपस्थ पर्वतों, नदियों और अरण्यों का वास्तविक वर्णन भवभूति ने किया है तो इसका यही अर्थ हो सकता है कि वह नगर उन्होंने स्वयं देखा होगा और उनका उन्हें सूक्ष्म ज्ञान था। यह भी सम्भव हो सकता है कि उन्होंनें कुछ समय तक पद्मावती में ही निवास किया हो। मालती-माधवम् के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि पद्मावती विदर्भ से बाहर थी क्यों कि विदर्भ राज के मंत्री ने अपने पुत्र माधव को विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर से आन्वीक्षिकी पढ़ने के लिए पद्मावती भेजा था। वास्तव में माधव आन्वीक्षिकी पढ़ने के बहाने पद्मावती के मंत्री की पुत्री मालती से विवाह के लिए आया था। इससे ज्ञात होता है कि पद्मावती विदर्भ से बाहर थी। डा० बेल्वलकर की धारणा है कि माधव के रूप में भवभूति स्वयं ही विद्याध्ययन के लिए पद्मावती गए होंगे[3]।

नागपुर के समीप चन्द्रपुर या चाँदा के आसपास अब भी तैत्तिरीय शाखा के आपस्तम्ब सूत्र वाले ब्राह्मण परिवारों का निवास है, अतः डा० भण्डारकर का मत है कि चाँदा जिले का पद्मापुर ग्राम ही भवभूति की जन्मभूमि है। डा० भण्डारकर के इस मत का खण्डन करते हुए डा० मिराशी लिखते हैं कि

1- Archaeological Survey of India. Report for 1915-1916 p.p. 101 to 103 उद्धृत भवभूति के नाटक

2- मालती-माधव-सार आणि विचार पृ० 5 उद्धृत भवभूति के नाटक

3- S.K.Belvalkar. Rama's Later History उद्धृत भवभूति के नाटक

पद्मापुर पद्मपुर से नामतः भिन्न है । वह एक नया बसा गाँव है । उसकी प्राचीनता सिद्ध करने के लिए उसके आसपास कोई अवशेष नहीं है । डा० मिराशी भण्डारा जिले में आमगाँव स्टेशन के पूर्व में स्थित पद्मपुर को भवभूति का जन्म स्थान बताते हैं । वहाँ प्राचीन अवशेष भी प्राप्त है । उसके आस पास भयानक जंगल है जिसका वर्णन भवभूति के नाटकों में उपलब्ध है ।

भवभूति ने अपने परिवार का पूर्ण परिचय अपने नाटकों में दिया है । उनके पूर्वज कश्यप गोत्र के ब्राह्मण थे ।[1] वे पंचाग्नि में वैदिक नियमानुसार हवन करते थे । व्रतों का अनुष्ठान करते थें । वे ब्राह्मण बड़े ही आदरणीय, धर्मनिष्ठ, सोमरस का पान करने वाले औरं वेद के ज्ञाता थे । वे उपदेश देते थे । उनका पारिवारिक नाम उदुम्बर था । वे निरन्तर वेद-शास्त्रों का अध्ययन किया करते थे । उन्हें धन की आवश्यकता केवल यज्ञादि सत्कृत्यों के सम्पादन के लिए अथवा परोपकार में उनका सदुपयोग करने के लिए ही होती थी, केवल सन्तान प्राप्ति की इच्छा से ही वे विवाह करते थे और केवल तप की इच्छा से वे आयु का आदर करते थे ।

इस कुल में महाकवि नाम के एक प्रख्यात महानुभाव उत्पन्न हुए जिन्हों ने बाजपेय यज्ञ किया । उन्हीं की पाँचवी पीढ़ी में भवभूति उत्पन्न हुए । भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था । श्रीकण्ठ इनकी उपाधि थी । भवभूति स्वयं श्रीकण्ठ उपाधि से विभूषित थे । वे व्याकरण मीमांसा और न्याय के ज्ञाता थे । अनन्तपण्डित ने अपनी "आर्यासप्तशती" की टीका में श्रीधर नाम स्वीकार किया है । वीरराघव ने इनके भवभूति नाम होने के सम्बन्ध में एक और विचार व्यक्त किया है कि इन्हें भगवान शंकर (भव) ने स्वयं भिक्षुरूप में आकर विभूति अथवा ऐश्वर्य प्रदान किया । इसीलिए इनका नाम भवभूति पड़ा । भवभूति को विद्वता अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी ।

1- डा० वा०वि०मिराशी - भवभूति पृ० 36, 43 उद्धृत "भवभूति के नाटक

बल्लाल ने "भोज प्रबन्ध" में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महाकवि भवभूति धाराधीश राजा भोज की सभा में विद्यमान थे । इस सम्बन्ध में कुछ रोचक कथाएं भोज प्रबन्ध में प्राप्त होती हैं[1] । परन्तु इनमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है । बल्लाल ने सभी श्रेष्ठ कवियों, जिनके समय में बहुत अन्तर है, सबको राजा भोज की सभा में उपस्थित कर दिया है । टोडरमल का मत है कि भवभूति अवश्य ही किसी राजा की सभा में थे क्यों कि उनके नाटकों में दरबारी जीवन का चित्रण हुआ है परन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता । हो सकता है कि शासन बदलने के बाद विद्वानों और कवियों को वैसा आश्रय न मिलने के कारण भवभूति राजाश्रय छोड़कर पद्मावती कन्नौज आदि स्थानों में आ गये होंगें ।

उनके तीनों नाटकों की प्रस्तावना ने यह स्पष्ट कर दिया है कि उनका प्रथम अभिनय कालप्रियानाथ की यात्रा में हुआ था[2] । यदि उन दिनों भवभूति किसी राजा के आश्रय में होते तो नाटकों का अभिनय किसी दरबार में होता न कि यात्रा में इकट्ठे किए गये उन जन-समूह के सामने ।

<u>कृतियां-</u> भवभूति अपने व्यक्तित्व और पाण्डित्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य की अनुपम निधि है । संस्कृत के उच्च कोटि के कवियों में उनकी गणना होती है । भवभूति की तीन कृतियां उपलब्ध है - 1- महावीरचरितम् 2- मालतीमाधवम् 3- उत्तररामचरितम् यह तीनों ही नाटक हैं । इन नाटकों के कालक्रम के विषय में भी विद्वानों में विभिन्न मत है । नाटकों की प्रस्तावना में दिये गए परिचय से यह सिद्ध होता है कि महावीरचरितम् भवभूति की प्रथम रचना होगी क्यों कि उसमें कवि ने अपना परिचय विस्तार पूर्वक दिया है । मालतीमाधवम् में यह परिचय कुछ कम होने के कारण, दूसरे स्थान पर और उत्तररामचरितम् को अन्तिम स्थान पर माना है ।

1- भोज प्रबन्ध । जगदीश लाल शास्त्री द्वारा सम्पादित। 1955, उद्धृत भवभूति के नाटक

2-उत्तररामचरितम् पृ0 9

महावीरचरितम्= यह सात अंकों का नाटक है । इसकी कथा वाल्मीकीय रामायण पर आधारित होते हुए भी विलक्षणता रखती है । कवि ने अपनी कल्पनाशक्ति के अनुसार अनेक परिवर्तन किये हैं ।

विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम तथा लक्ष्मण को अपने साथ आश्रम लाते हैं । जनक के अनुज कुशध्वज भी सीता और उर्मिला के साथ वहां आते हैं । परस्पर परिचय प्राप्त कर सभी प्रसन्न होते हैं । राम के प्रभाव से अहल्या का उद्धार होता है । राम की प्रभुता देखकर कुशध्वज सीता स्वयंवर के प्रण का स्मरण कर शोक सन्तप्त हो जाते हैं । तभी रावण का दूत सीता को रावण के लिए मांगने आता है । विश्वामित्र राम को जमाता बनाने की, कुशध्वज की प्रबल इच्छा देखकर वहीं धनुष मंगाने का आदेश देते हैं । कुशध्वज ध्यानमात्र से शिवचाप मंगवाते हैं । राम धनुर्भंग करते हैं । रावण के संदेश को न केवल अनादृत किया जाता है बल्कि दूत के समक्ष ही धनुष टूटने पर राम सीता का विवाह हो जाता है । विश्वामित्र जनक तथा कुशध्वज की कन्याओं को दशरथ के पुत्रों के लिए मांग लेते हैं । राक्षस यह समाचार देने माल्यवान् के पास जाता है । राम ताड़का और सुबाहु आदि का वध करते हैं । शूर्पणखा और माल्यवान् राम के अभ्युदय से चिन्तित होते हैं । माल्यवान् परशुराम को उकसा कर राम को मारने की योजना बनाते हैं । परशुराम शिवधनुष के टूटने पर अन्तः पुर तक पहुंच जाते हैं । जनक, परशुराम, विश्वामित्र, वसिष्ठ, शतानन्द आदि परशुराम को समझाने का प्रयत्न करते हैं । तभी राम वहां आकर परशुराम द्वारा प्रदत्त वैष्णव धनुष ग्रहण कर उनका मानभंग करते हैं । परशुराम की पराजय से चिन्तित माल्यवान् पुनः राम के विनाश की योजना बनाता है । माल्यवान् शूर्पणखा को मन्थरा का रूप धारण करके कैकयी का पत्र लेकर मिथिला भेजता है जिसमें राम को चौदह वर्षों के लिए सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास और भरत को राज्य के लिए लिखा था । राम मिथिला से ही वनवास के लिए चले जाते हैं । भरत राम की पादुकाएं लेकर अयोध्या लौट आते हैं । दण्डकवन में राम खर आदि राक्षसों

का संहार करते हैं । तदनन्तर रावण सीता का हरण करते हैं । दोनों भाईयों को इसकी सूचना जटायु से मिलती है । राम सीता के वियोग में व्याकुल होते हैं । उधर माल्यावान् राम के विनाश हेतु बालि को उकसाता है । राम बालि का वध करते हैं । बालि राम के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है । उनके द्वारा मारा जाकर वह दिव्य रूप प्राप्त करता है । बालि सुग्रीव की राम से मित्रता कराता है । महर्षि अगस्त्य राम को दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं । राम दिव्य चक्षु से रावण और माल्यवान् की सभी वार्ता सुनते हैं । राम तथा रावण की सेनाओं में घोर युद्ध होता है । अन्त में राम रावण का वध करते हैं । राम विभीषण को लंका का अधिपति बनाते हैं । सीता की अग्नि परीक्षा के पश्चात् राम अयोध्या लौटते हैं । वहाँ उनका राज्याभिषेक होता है । आकाशयान से इन्द्र, दशरथ महेश्वर और ब्रह्मा आकर आशीर्वाद देते हैं ।

मालतीमाधवम् = भवभूति द्वारा रचित मालती-माधवम्प्रकरण दस अंकों का है । यह एक प्रेम कथानक है । इसका अङ्गी रस श्रृंगार है ।

पद्मावती के महाराज के मन्त्री भूरिवसु ने अपनी पुत्री मालती और विदर्भनरेश के मन्त्री देवरात के पुत्र माधव का विवाह नियोजित कराने के लिए कामन्दकी नाम की परिव्राजिका से कह रखा है । देवरात ने अपने पुत्र माधव को पद्मावती इसी दृष्टि से भेजा रखा है । परन्तु समस्या यह है कि पद्मावती नरेश का नर्मसुहृद नन्दन महाराज के आदेशानुसार मालती से विवाह करना चाहता है । अतः कामन्दकी मालती और माधव के परस्पर मिलन का प्रबन्ध कराने और उनके विवाह कर देने की युक्ति सोचने में लगी रहती है । माधव का मित्र मकरन्द है और मालती की सखी मदयन्तिका है, जो नन्दन की बहन है । प्रथम अंक में दोनों के पुर्वानुराग का वर्णन है । माधव को मालती का नाम पता नहीं है । जिसकी सूचना कलहंस देता है । मालती लवङ्गिका से माधव के सहज स्वाभाविक विलास और अपने पूर्व अनुराग की अवस्थाओं का वर्णन करती है । तभी कामन्दकी आकर मालती की परिस्थिति को जानकर उसे शकुन्तला,

उर्वशी और वासवदत्ता का साहसपूर्ण इतिहास बतलाती है । और माधव का पूर्ण परिचय देती है । तभी नेपथ्य से शंखध्वनि होती है और कामन्दकी चली जाती है । मालती और माधव का मन्दिर में मिलन होता है उसी समय शार्दूल आक्रमण से त्रस्त मदयन्तिका को मकरन्द बचाता है । तभी एक राजपुरूष आकर बताता है कि महाराज ने नन्दन को आज भूरिवसु की पुत्री को देने का निश्चय कर लिया है । कामन्दकी मालती-माधव को आश्वासन देती है कि ऐसा नहीं होगा क्योंकि, कन्या दान देने का हक पहले उसके पिता को होता है । और भूरिवसु ऐसा नहीं चाहते है । माधव दुखी होकर कपालकुण्डला के पास जाता है तभी उसे कपालकुण्डला और अघोरघण्ट के पास मालती दिखाई देती है जो माधव को न पा सकने के कारण अपनी बलि चढ़ाने आयी है । अघोरघण्ट उसका शिरच्छेद करना ही चाहता था कि माधव उसे मारने के लिए हथियार उठाता है । अघोरघण्ट भी लड़ने को तैयार हो जाता है और अघोरघण्ट मारा जाता है । कपालकुण्डला प्रतिशोध के लिए उद्यत हो जाती है । मालती का विवाह नन्दन से होता है परन्तु मकरन्द की चतुरता से मालती और, माधव शिव मंदिर से भाग जाते है । मकरन्द मालती की जगह दुल्हन बनता है । समय मिलने पर, मकरन्द और मदयन्तिका भी भाग जाते है । पीछे पीछे अन्य लोग भी पहुँचते हैं । जिन्हें माधव अपने रास्ते से अलग कर देता है । तभी कपालकुण्डला अपनी माया से मालती को अपहृत कर लेती है । माधव और मकरन्द खोजते है तभी सौदामिनी आकर बताती है कि जहाँ अघोरघण्ट का वध किया था वहीं कपालकुण्डला मालती की बलि चढ़ाना चाहती हैं । माधव और मकरन्द वहाँ पहुँच कर बचाते है और फिर दोनों प्रेमियों का मिलन होता है । महाराज भी माधव और मालती के परस्पर विवाह की आज्ञा देते हैं ।

उत्तररामचरितम् = ये सात अंकों का नाटक है । यह कथानक वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है किन्तु कवि ने अपनी कल्पना के अनुसार अनेक परिवर्तन किए है । 'उत्तररामचरितम्' ही इनकी कीर्ति का मुख्य स्तम्भ है । इसका अंगीरस

करूण है ।

राम के राज्याभिषेक के पश्चात् जनक के चले जाने पर सीता अत्यधिक उदास हो जाती है । राम उन्हें सान्त्वना देते हैं । लक्ष्मण मनोविनोदार्थ चित्रवीथिका लाते हैं जिसे सीता के मनोविनोद के लिए राम लक्ष्मण और सीता के साथ देखते हैं । इसी बीच दुर्मुख आकर सीता के लोकापवाद की सूचना देता है । राम इस दु:संवाद को सुनकर अत्यन्त दुःखित होते हैं । उनके मानस में कर्तव्य और प्रेम का भीषण संघर्ष होता है ।लोकानुरंजन के लिए रामचन्द्र जी अपने पूर्वजों और वसिष्ठ आदि की आज्ञा का स्मरण करते हुए सीता परित्याग का निश्चय कर लक्ष्मण को आदेश देते हैं । राम अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करते हैं । आत्रेयी द्वारा यह पता चलता है कि महर्षि वाल्मीकि किसी देवता के द्वारा सौंपे दो कुशाग्र बुद्धि वाले बालकों को विधिवत उपनीतकर वेदाध्ययन करा रहे हैं । उन्हें बचपन से ही जृम्भकास्त्र प्राप्त है । सीता निर्वासन से दुखी होकर यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् वसिष्ठ, कौशल्या, जनक आदि वाल्मीकि आश्रम में ही निवास करते हैं ।

ब्राह्मण बालक की रक्षा के लिए राम शूद्र तपस्वी का वध करते हैं और पंचवटी में प्रवेश करते है । वहाँ सीता के साथ अपने पूर्वानुराग को स्मरण करके दुखी होते हैं । राम का कुछ अनिष्ट न हो जाये इसीलिए भगीरथी सीता को सिद्धि प्रदान करती है कि वह अदृश्य होकर रहेंगी उन्हें मनुष्य ही नहीं अपितु वन देवता भी नहीं देख पाएँगे । राम अपने पूर्वपरिचित-स्थानों को देखकर मूच्छित हो जाते हैं । सीता अपने हस्त स्पर्श से उनकी चेतना लाती है । इधर वासन्ती के व्यंग्य वचन राम को बिद्ध करते है और राम अधीर होकर मुक्त कण्ठ से क्रन्दन करते हैं । राम के हार्दिक भावों को देखकर राम के प्रति सीता के हृदय का कालुष्य मिट जाता है ।

इधर अश्व रक्षकों की सामन्तशाही घोषणा सुनकर लव क्रुद्ध हो जाता है और यज्ञाश्व को पकड़ लेता है । लव और चन्द्रकेतु में युद्ध होता है । युद्ध विराम

के बाद दोनों में बैर समाप्त हो जाता है । सहसा राम का प्रवेश होता है । लव कुश को देखकर राम के हृदय में वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता है । किन्तु उन्हें यह मालुम नहीं हो पाता कि वह उन्हीं की सन्तान है । प्रजा के समक्ष वाल्मीकि की दिव्य प्रेरणा से गर्भांक नाटक का अभिनय प्रारम्भ होता है । अरून्धती के साथ सीता जी का प्रवेश होता है और मूच्छित राम को अपने हस्त स्पर्श से होश में लाती है । वाल्मीकि कुश और लव को लेकर आते हैं । अन्त में अरून्धती के आदेश से राम सीता को ग्रहण करते हैं । और दोनों का मिलन होता है ।

दिङ्नाग व्यक्तित्व एवं समय

संस्कृत साहित्य के अनुसन्धान एवं अध्ययन की दिशा में पर्याप्त उन्नति हो चुकी है । आज भी बहु संख्यक व्यक्ति अत्यधिक उत्साह के साथ इस कार्य में सतत प्रयत्नशील है । परन्तु यह बड़ी ही विस्मयावह बात है कि अभी तक न तो "कुन्दमाला" नाटक का सम्यक् अनुशीलन हो पाया है और न ही उसके प्रणेता का । एक कुहासे से घिरे हुए होने के कारण उत्पन्न कौतूहल, जिज्ञासा तथा कुन्दमाला की सर्वांग सुन्दरता परम रमणीय रहस्योन्मीलन की ओर प्रेरित करते हैं । सहृदय विद्वानों एवं सामान्य संस्कृतज्ञों के बीच इसका 'शाकुन्तलम्' तथा 'उत्तररामचरितम्' जैसा प्रचार व प्रसार न होने के कारण इस पर अनुसन्धान नितान्त ही अपेक्षित है । अभी तक इसके सम्भवतः एक या दो संस्करण ही उपलब्ध है ।

यह प्रायः सर्वविदित है कि संस्कृत के विद्वानों एवं कवियों में प्राचीन काल से ही अपना परिचय देने की प्रवृत्ति नहीं थी यही कारण है कि आज भी संस्कृत के कवियों एवं ग्रन्थकारों के समय, स्थान, धर्म वंश परम्परा

आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो गया है । परन्तु कवि द्वारा वर्णित नदी, पर्वत, तीर्थस्थल, पशु, पक्षी -आदि के माध्यम से या काव्य शास्त्र के आचार्यों के ग्रन्थों के अनुशीलन से कुछ परिचय अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है क्यों कि लक्षण ग्रन्थ के प्रणेता आचार्यों ने प्राय: अन्य कवियों के काव्यों से ही उद्धरण दिये है तथा आवश्यक होने के कारण उस कवि के ग्रन्थ या नाम को भी उद्धृत किया है । दिङ्नाग का समय और व्यक्तित्व विवाद का विषय है क्यों कि प्राचीन संस्कृत जगत में दिङ्नाग नाम के एक से अधिक व्यक्ति है । इसलिए विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पहले तो यही तय करना होता है कि कौन से दिङ्नाग ने कुन्दमाला की रचना की । विभिन्न संदर्भों और उल्लेखों के आधार पर एक दिङ्नाग कालिदास के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं और एक परवर्ती है । दिङ्नाग का उल्लेख सर्वप्रथम कालिदास ने ही किया है और विभिन्न टीकाकार उनके कथन की भिन्न भिन्न व्याख्यायें करते हैं । जिस श्लोक में कालिदास ने दिङ्नाग का उल्लेख किया है वह इस प्रकार है -

स्थानादस्मात्सरसनिचुला दुत्पतोदङ्मुख: खं ।
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ।।

उक्त श्लोक की व्याख्या में आचार्य मल्लिनाथ ने दिङ्नाग को कालिदास का प्रतिपक्षी बताया है । दिङ्नाग नामक आचार्य कालिदास के प्रतिपक्षी थे जो कि कालिदास की रचनाओं के तथाकथित दोषों की कटु आलोचना करते थे[1] । मल्लिनाथ का उक्त कथन समीचीन नहीं प्रतीत होता है क्यों कि महाकवि कालिदास के उक्त पद्य में "दिङ्नागानां" का उल्लेख करके दिङ्नाग के प्रति आदर ही व्यक्त किया गया है । बौद्ध दर्शन में भी एक दिङ्नाग नाम के आचार्य हुए है । जिनको बौद्धन्याय का पिता कहा गया है । तिब्बती परम्परा उनको तमिल प्रदेश के कांजीवरम्

1- मेघदूतम्- पूर्वमेघ - श्लोक 14 की टीका

(कांची का निवासी) तथा वसुबन्धु का शिष्य बताती है । सिंहवक्र उनके गाँव का नाम था और ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ । उड़ीसा उनकी विश्राम भूमि थी और वहीं उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया । उनका समय 425 ई० के आस - पास था[1] ।

उनके पहले गुरू भिक्षु नाग दत्त थे जिन्हों ने उन्हें बौद्ध धर्म में दीक्षित किया कुछ दिन उन्होंने वहीं रहकर अध्ययन किया किन्तु बाद में गुरू के साथ उनका मतभेद हो गया और वे दक्षिण को छोड़ कर उत्तर भारत में आकर वसुबन्धु के शिष्य हो गये वहाँ उन्हों ने बौद्धन्याय का विशेष अध्ययन किया ।

धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित, कर्मशील शंकर स्वामी उनके शिष्य थे । बौद्ध होते हुए भी इन्हो ने न्याय दर्शन पर लगभग एक सौ ग्रन्थ लिखे जिसमें से कुछ ही उपलब्ध है । उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में प्रमाण समुच्चय, प्रमाण समुच्चय वृत्ति, न्याय प्रवेश आदि का प्रमुख स्थान है[2] । यदि इन्हीं बौद्ध दिङ्नाग को ही कालिदास के समय का प्रतिद्वन्दी स्वीकार किया जाय तो इस कथन में भी कोई प्रमाणिकता नहीं है क्यों कि बहुत से विद्वानों के मत में कालिदास विक्रम की प्रथम शताब्दी में हुए थे इसके विपरीत वसुबन्धु के शिष्य दिङ्नाग पाँचवी शताब्दी में हुए थे । इस स्थिति में काल की विभिन्नता के कारण दिङ्नाग को कालिदास का विरोधी सिद्ध करना युक्ति संगत नहीं है ।

इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि कालिदास जैसा महाकवि अपने सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय के विरोधी विद्वान् के लिए दिङ्नागानाम् इस आदरणीय बहुवचनान्त का प्रयोग क्यों करेंगें । अतः मल्लिनाथ जी का पूर्वोक्त सिद्धान्त पुष्ट प्रमाण के ऊपर आधारित न होकर के कपोल कल्पित ही प्रतीत होता है । अब यहाँ "दिङ्नागानाम्"

1- भारतीय दर्शन - वाचस्पति गैरोला

2- भारतीय दर्शन - डा० वाचस्पति गैरोला पृष्ठ 153 से 154

ऐसा पूजार्थक बहुवचनान्त का प्रयोग कवि ने क्यों किया ऐसा प्रश्न उठ सकता है , इसका समाधान यदि उत्तर दिशा के अतिरिक्त दिग्गजों से किया जाये तो कोई आपत्ति नहीं होगी ।

जहाँ तक विचार है कि आचार्य मल्लिनाथ ने स्वप्नवासवदत्तम, अभिज्ञान-शाकुन्तलम् , विक्रमोवर्शीयम् के वर्णन साम्य को देखकर दिङ्नाग को कालिदास का समसामयिक प्रतिद्वन्दी कवि के रूप में उद्धृत कर दिया हो क्योंकि स्वप्नवासवदत्तम् के चतुर्थ अंक में उदयन विदूषक द्वारा लाये हुए जल से अपनी आसुँओं से भीगी आँखे धोते है उसी प्रकार कुन्दमाला में राम दीर्घिका के जल से अपने आँसू धोते है[1] । स्वप्नवासवदत्तम् के पंचम अंक में उदयन का वासवदत्ता से दैवात् और प्राय: अज्ञात समागम की बात को विदूषक स्वप्न बतलाता है उसी प्रकार राम तथा अदृश्य सीता के क्षणिक मिलन को कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में विदूषक तिलोत्तमा की प्रवंचना कहता है[2] । कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में नैमिषारण्य में दीर्घिका के पास सीता का मुनि प्रभाव से अदृश्य होना[3] विक्रमोवर्शीयम् के द्वितीय अंक में उर्वशी की तिरस्करिणी प्रच्छन्नता से मिलता है ।

1- क- स्वप्नवासवदत्तम् - चतुर्थ अंक

तद्गृहणातु भवती दंमुखोदकम् -----------------।

ख- कुन्दमाला - चतुर्थ अंक

एतद्दीर्घिका तीरम् ------------------।

2- क- स्वप्नवासवदत्तम् - पंचम अंक

तथा - विदूषक - भोवयस्यएतस्मिन्नगरेऽवन्तिसुन्दरीनाम् यक्षिणी प्रति वसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।

ख- कुन्दमाला - चतुर्थ अंक - पृ0 164

सा किल तत्रभवत्याश् चिर काल वियुक्तायाः विदेह - राज - तनयायाश् चरितम् अनुष्ठाय प्रियवयस्यम् उपहसितुम् इच्छति ।

3- विक्रमोवर्शीयम् द्वितीय अंक पृ0 68

तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनीभूत्वा श्रोष्ये तावत् पार्श्ववर्तिना वयस्येन सह विजने किम् मन्त्रयन् तिष्ठतीति ।

कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में वन देवता द्वारा सीता को दिये हुए उत्तरीय की बात शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शकुन्तला को वृक्षों द्वारा दिये गये "क्षौमवस्त्र" से मिलती है[1]।

माधुर्य तथा प्रसाद गुण वैदर्भी रीति भास कालिदास तथा दिङ्नाग की अविकल विशेषता है यदि उक्त विशेषताओं तथा प्रतिपादित विषयों के साम्य के आधार पर ही आचार्य मल्लिनाथ ने दिङ्नाग को कालिदास का समसामयिक प्रतिद्वन्दी स्वीकार किया हो तो वह उनका भ्रम ही प्रतीत होता है।

यदि साम्प्रदायिक दृष्टि से भी विचार किया जाय तो कुन्दमाला के प्रणेता बौद्ध दिङ्नाग के अतिरिक्त अन्य दिङ्नाग ही प्रतीत होते है। क्यों कि कुन्दमाला में वर्णित कथा वस्तु बौद्ध साम्प्रदाय से सम्बन्धित न होकर वैष्णव साम्प्रदाय से सम्बन्धित है। और फिर बौद्ध दार्शनिक या कवि रामायण की कथा से सम्बन्धित रचना क्यों करेगा जबकि बौद्ध साहित्यों में भी करूणोत्पादक कथानक की कल्पना की जा सकती है अतः बौद्ध दिङ्नाग को "कुन्दमाला" का प्रणेता स्वीकार करना सर्वथा असमीचीन है।

तृतीय मत प्रो० वागीश्वर का यह वाक्य दर्शनीय है कि " हम सिद्ध करना चाहते है कि उत्तररामचरितम् कुन्दमाला का एक सुधरा हुआ रूप तथा उत्तरवर्ती है। परन्तु अवसर न होने से इसे भविष्यत् पर छोड़ देते है।" प्रो० वागीश्वर ने केवल इतना ही कहकर छोड़ दिया है कि कुन्दमाला उत्तररामचरितम् से पूर्ववर्ती रचना है और उत्तररामचरितम् उसका परिष्कृत रूप है, परन्तु इस विषय में कोई तर्क अथवा युक्ति नहीं दी है[2]।

रामजी उपाध्याय ने कहा है कि " जहां तक कुन्दमाला के उत्तररामचरितम् से पहले का होने का प्रश्न है - हमें एक ठोस प्रमाण मिलता है। भवभूति ने उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक को छायांक नाम दिया है।

1- अभिज्ञान शाकुन्तलम् - 4/5

2- कुन्दमाला, चुन्नी लाल शुक्ल, प्रस्ताविकम् - पृष्ठ 43

इस अंक में सीता की छाया तो है ही नहीं । भवभूति की छाया कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में पानी में पड़ी सीता की छाया का अनुहरण करती है ।

उत्तररामचरितम् की कथा का कलात्मक विन्यास कुन्दमाला की कथा की तुलना में अधिक संवारा हुआ है । इससे यही प्रतीत होता है कि इस काथांश के विकास लावण्य की जो प्रक्रिया बहुत पहले से चली आ रही थी, उसके संस्कारकों में दिङ्नाग पहले है और भवभूति-पीछे । भवभूति ने इसे चरमोत्कर्ष प्रदान किया है । इन दोनों नाटकों में जहां जहां समान वाक्य है, वहां भवभूति का उत्कर्ष उनका परवर्ती होना व्यक्त करता है[1] ।

किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता है क्यों कि जगह जगह पर कुन्दमाला के परवर्ती होने के प्रमाण दिखाई देते है । उत्तररामचरितम् में सीता केवल राम के ऊपर हाथ ही रखती है परन्तु कुन्दमाला में वह स्पर्श और पंखा करती है जिससे नवीनता आ गई है । इसी प्रकार रामायण गाने के लिए आये हुए लव और कुश को श्री राम अपने सिंहासन पर बिठाते है तभी भयभीत होकर विदूषक कहता है कि रघुवंशियों के अतिरिक्त जो कोई भी इस सिंहासन पर बैठेगा उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे । यह सब लव और कुश का परिचय कराने के लिए ही दिङ्नाग ने विदूषक से कहलवाया है । भवभूति ने राम से लव और कुश का परिचय कराने के लिये अति सूक्ष्म शैली का आश्रय लिया है जो अधिक नवीन नहीं प्रतीत होता है । अतः कुन्दमाला उत्तररामचरितम् से परवर्ती रचना है । चतुर्थ मत यह है कि यदि बौद्ध दिङ्नाग को ही कुन्दमाला का प्रणेता स्वीकार किया जाय तो वह पूर्ण रूपेण निराधार प्रतीत होता है । क्यों कि बौद्ध दिङ्नाग को तमिल परम्पराएं कांजीवरम् (कांची का निवासी) बताती है[2] । जब कि कुन्दमाला नाटक की प्रस्तावना में अरालपुर में रहने वाले महाकवि दिङ्नाग को कुन्दमाला का रचियता स्वीकार किया गया है[3] ।

1- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - द्वितीय भाग, पृष्ठ- 140

2- भारतीय दर्शन - डा0 वाचस्पति गौरेला - पृ0 153

3- कुन्दमाला- चुन्नी लाल शुक्ल, - पृ0 5 - "तत्रभवतोऽरालपुरवास्तव्यस्य कवेर् दिङ्नागस्य कृतिः कुन्दमाला नाम सा त्वया प्रयोक्तव्या ।"

पूर्वोक्त पृष्ठों में भवभूति का समय लगभग 680 ई0 से 750 ई0 तक अर्थात् सप्तम शताब्दी का उत्तरार्ध और अष्टम शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित किया जा चुका है । इस प्रकार भवभूति का समय निर्धारण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 733 ई0 में यशोवर्मा के आश्रित कवि वाक्पति राज ने भवभूति का उल्लेख किया है पर दिङ्नाग या कुन्दमाला की कहीं भी चर्चा नहीं की है । यदि उस समय दिङ्नाग रहे होते तो उनका भी उल्लेख किया गया होता अतः यह सुनिश्चित हो जाता है कि 733 ई0 तक कुन्दमाला के प्रणेता दिङ्नाग से यह भारत - भूमि अनलंकृत रही होगी ।

उक्त साक्ष्यों के अतिरिक्त हम उन ग्रन्थों का उल्लेख कर रहे है जिनमें कुन्दमाला की चर्चा की गयी है ।

1- रामचन्द्र गुणचन्द्र (1100 ई0) ने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ नाट्य-दर्पण में कुन्दमाला का उल्लेख किया है और कुन्दमाला का कर्ता दिङ्नाग को माना है ।[1]
2- (14वीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ कृत "साहित्य-दर्पण" में भी कुन्दमाला का उल्लेख किया गया है तथा कुन्दमाला से श्लोक भी उद्धृत किया गया है ।[2]

किसी भी ग्रन्थ की प्रसिद्धि में लगभग एक शताब्दी का समय अवश्य ही लग जाता है । उक्त साक्ष्यों के आधार पर 7वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 10वीं शताब्दी के मध्य ही दिङ्नाग का समय निश्चित किया जा सकता है । अतः दिङ्नाग का समय 1000 ई0 स्वीकार करना अधिक समीचीन है । राम जी उपाध्याय ने दिङ्नाग को चतुर्थ शताब्दी का स्वीकार किया है । जो स्पष्टतः अन्य मतों से भिन्न है । अतः विभिन्न मतों के आधार पर दिङ्नाग को भवभूति के बाद का स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है ।

1- वीरनागनिबद्धायां कुन्दमालायां (नाट्यदर्पण पृ0 48)
   उद्धृत - सं सा0 का समीक्षात्मक इतिहास पृ0 - 436
2- यथा कुन्दमालायां नेपथ्येइत । साहित्यदर्पण - षष्ठ अंक

कवि ने कुन्दमाला नाटक की भूमिका में स्वयं को अरालपुर का निवासी बताया है[1]। यह बहुत सम्भव है कि यह अरालपुर प्रयाग में विद्यमान वर्तमान युग का अरैल रहा हो जो गंगा यमुना के दक्षिणी तट पर स्थित है। इसके अतिरिक्त कवि ने गोमती तथा भागीरथी का भी उल्लेख किया है। इसलिए इन्हें उत्तर - भारत का निवासी स्वीकार किया जा सकता है।

कुन्दमाला की प्रस्तावना में भी दिङ्नाग ने अपने निवास स्थान का नाम छोड़कर और कुछ नहीं लिखा है। विद्वानों ने भी अन्तः साक्ष्य अथवा वाह्य साक्ष्य के आधार पर कोई निश्चित मत प्रस्तुत नहीं किया है और हमारे लिए दिङ्नाग केवल कुन्दमाला के रचियता भर रह गये है। उनकी कृति के माध्यम से हमें उनके अन्तर्जगत् का परिचय तो मिलता है किन्तु किसी जानकारी के अभाव में उनका वाह्य व्यक्तित्व अनिश्चय और अपरिचय के अन्धकार में डूबा है।

दिङ्नाग ने कुन्दमाला के मंगलाचरण में गणेश और शिव की स्तुति की है अतः महाकवि कालिदास की भाँति दिङ्नाग भी अपनी मान्यताओं में शैव प्रतीत होते है। भरत वाक्य में उन्हों ने त्रिमूर्ति के संकीर्तन में सर्वप्रथम स्थाणु का नाम लिया है[2]। अतः इन्हें शैव मतानुयायी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

चारों वेदों के प्रति इनकी श्रद्धा है। इन्होने सामवेद का अनेक बार उल्लेख किया है। उदाहणार्थ-

स्थाणुर् वेधास् त्रिधामा मकर-वसतयः पावको मातरिश्वा,
पातालं भूर्-भुवः स्वश् चतुर-उदधि-समाः साममन्त्राश् च वेदाः।
सम्यक् संसिद्धि-विद्या-परिणत-तपसः पीठिनस् तापसाश् च,
श्रेयांस्य स्मिन् नरेन्द्रे विदधतु, सकलं वर्धतां गोकुलं च ।। 6/45

एक अन्य श्लोक में भी अग्नि, क्रतु, होम, धूम तथा मुनियों द्वारा

1- कुन्दमाला पृ0 5
2- कुन्दमाला- 6/45

गाये जाने वाले सामगान की चर्चा की है जो इस प्रकार है -

दावाग्नि क्रतु-होम-पावक-धिया यूपास्थया पादपान्
अव्यक्तं मुनि-गीत-साम-गतया भक्त्या शकुन्त-स्वनम् ।
वन्यांस् तापस्-गौरवेण हरिणान् संभावयन् नैमिषे ।
सोऽहं यन्त्रणया कथं कथम् अपि न्यस्यामि पादौ भुवि ।।

इन श्लोकों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि वैदिक मंत्रों तथा याज्ञिक प्रक्रियाओं के पूर्ण ज्ञाता थे अतः सन्ध्या-वन्दन, सामगान होम आदि ब्राह्मणोचित क्रियाओं के उल्लेख को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह जाति के ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए होंगे ।

कृतियां - यद्यपि यह सत्य है कि दिङ्नाग नाम के कई आचार्य हुए किन्तु कुन्दमाला के प्रणेता बौद्ध दिङ्नाग से कोई अन्य है । आचार्य दिङ्नाग की केवल एक ही कृति उपलब्ध है ।

कुन्दमाला -यह छः अंकों का नाटक है । इसका कथानक वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है । रामायण पर आधारित होते हुए भी कवि ने अनेक परिवर्तन किये है । लोकापवाद के कारण लक्ष्मण सीता को राम के आदेशानुसार वन में छोड़ आते है । असहाय सीता अपनी करूण अवस्था को देखकर विलाप करती है । महर्षि वाल्मीकि जी शिष्यों से परित्यक्त स्त्री का समाचार सुनकर वहां आते हैं । रघुकुल की पुत्रवधु यह सीता है - यह जानकर उन्हें सान्त्वना देकर आश्रम ले जाते हैं । सीता वाल्मीकि के साथ जाती हुई गंगा जी से प्रार्थना करती है कि यदि मेरे सुख-पूर्वक सन्तान उत्पन्न हो जायेगी तो मैं प्रतिदिन कुन्दपुष्पों की माला बनाकर चढ़ाया करूंगी । सीता कुशल पूर्वक दो बच्चों को जन्म देती है उधर अयोध्या में श्री राम के अश्वमेध यज्ञ की तैयारियां पूर्ण हो चुकी है । इधर सीता खिन्न मन से आत्महत्या करने का विचार करती है तभी वेदवती नामक सखी आकर उनके मन के विचार जानना चाहती है और श्री राम को बहुत बुरा

भला कहती है । सीता राम की निन्दा करने को मना करती हैं । वेदवती कहती है कि राम का दर्शन अब शीघ्र ही होने वाला है क्यों कि वे अश्वमेध यज्ञ करने जा रहे है । इतने में राम तथा लक्ष्मण वाल्मीकि का आश्रम खोजते हुए आते हैं । गोमती नदी के किनारे कुन्द पुष्पों की एक माला राम के चरणों से आ टकराती है । उसको देखते ही राम कहते हैं कि इसकी गूथने की कला जानी पहचानी है अर्थात् सीता के समान है और जिधर से माला आ रही थी उसी दिशा की ओर जाने लगते है । सीता बावड़ी में बैठी रहती है क्यों कि वाल्मीकि जी के कथनानुसार वहां किसी स्त्री को कोई भी नहीं देख पायेगा । इसी बीच राम भी बावड़ी में आ जाते है और अपनी आंखों को धोने के लिए बावड़ी में जैसे ही झुकते है उन्हें सीता की जल में परछाई दिखाई देती है । परन्तु सीता खोजने पर भी कहीं नहीं दिखाई देती । इस प्रकार राम व्यथित होकर मूच्छित हो जाते हैं । सीता अपने हस्त-स्पर्श से उनकी चेतना वापस लाती है । सीता जी को सामने न पाकर राम फिर बेहोश हो जाते है । सीता अपने उत्तरीय से हवा करती है । जिससे राम की चेतना लौट आती है । राम सीता के उत्तरीय को पकड़कर खींच लेते है और अपना उत्तरीय फेंक देते है । इतने में विदूषक आकर बताता है कि यह सब तिलोत्तमा का षड्यन्त्र है परन्तु राम विश्वास नहीं करते ।

कुश और लव रामायण की कथा राम की सभा में सुनाने के लिए तैयार होते है । दोनों बालकों को प्रेम पूर्वक राम सिंहासन पर बैठा लेते है । उसी समय विदूषक कहता है कि रघुकुल की सन्तान के अतिरिक्त जो कोई भी इस सिंहासन पर बैठेगा उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे किन्तु उन दोनों बालकों पर कोई विकार न देखकर सीता के गर्भ के समान आयु देखकर सीता के पुत्र मानते हुए राम उन्हें अपनी सन्तान मानने लगते है । कुश और लव दशरथ के विवाह से लेकर रावण वध और राम के द्वारा सीता के निर्वासन की कथा सुनाते है । शेष कथा कण्व ऋषि सुनाते है । पृथ्वी आकर सीता को निष्कलंक कहकर अन्तर्धान हो जाती है । सीता को राम स्वीकार करते है ।

इसके अनन्तर वे कुश को राजा तथा लव को युवराज पद से अलंकृत करते है । उसके बाद भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है ।

दोनों के व्यक्तित्व का विवेचन करने पर हम यह देखते हैं कि भवभूति आचार्य दिङ्नाग से पूर्ववर्ती हैं यद्यपि कुछ विद्वानों ने दिङ्नाग को पूर्ववर्ती सिद्ध करने की चेष्टा की है फिर भी पर्याप्त साक्ष्य के आभाव में दिङ्नाग को पूर्ववर्ती स्वीकार करना युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता है । भवभूति का समय अष्टम् शताब्दी और दिङ्नाग का समय दशम् शताब्दी है ।

भवभूति के तीनों नाटक भगवान् कालप्रियानाथ की यात्रा के अवसर पर अभिनीत हुए । विभिन्न विद्वानों ने काल-प्रियानाथ का अर्थ भगवान् शिव से ही लिया है । अतः भवभूति शैव मतावलम्बी हुए किन्तु कहीं स्पष्ट परिलक्षित न होने के कारण इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता । जब कि कुन्दमाला में कुछ श्लोकों से दिङ्नाग की भगवान शिव के प्रति आस्था का स्पष्ट प्रमाण मिलता है और उन्हें निश्चित रूप से शैव स्वीकार किया जा सकता है ।

आलोचक दिङ्नाग को संस्कृत के प्रथम श्रेणी के नाटककारों में नहीं रखते क्यों कि न तो उनमें कालिदास का शैली-माधुर्य है और न ही भवभूति की तीव्र वेदना । फिर भी संस्कृत नाट्य साहित्य में वह एक सफल नाटककार है । गम्भीर भाव सम्पत्ति का वहन करने के कारण और कथानक के दुख और अवसाद से बोझिल होने के कारण भवभूति की भाषा स्वाभावतः कहीं कहीं क्लिष्ट और समास बहुल हो गयी है इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी भाषा अन्तर्जगत् और वाह्य जगत् की अभिव्यंजना में अपनी सहज गम्भीरता के कारण करूण रस के अनुकूल वातावरण की सृष्टि करती है । इसके विपरीत कुन्दमाला का शिल्प अपनी रेखाओं में अपेक्षाकृत समकोणीय है उनकी भाषा परिस्थितियों को उनकी पूरी सहजता और स्वाभाविकता में अभिव्यक्त करती है । वैदर्भी रीति प्रधान होने के कारण ऋजुता और अल्प समास उनकी शैली के विशेष गुण

है और कभी कभी कालिदास की शैली की झलक दिखाई पड़ती है । इन दोनों कवियों की कृतियों में पायी जाने वाली भिन्नताएं उनके व्यक्तित्व की भिन्नता का सहज परिणाम है । सबसे विशेष बात है उनके कृतित्व में पायी जाने वाली कतिपय समानताएं जिनके कारण अनेक भिन्नताओं के होते हुए भी हम उनकी तुलना के लिए प्रस्तुत हुए हैं । सबसे पहली बात यह कि दोनों ने ही राम के कथानक को अपने नाटकों का विषय बनाया है और यह उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का सबसे बड़ा मिलन बिन्दु है । दूसरी बात दोनों ने ही यह अनुभव किया है कि रामकथा समष्टि के लिए व्यष्टि के त्याग की कथा है और देवत्व के आदर्शों की स्थापना करते हुए भी यह अपने हृदय में सामान्य मानव की सहज पीड़ा और वेदना को निःशब्द पोसती है । इसी वेदना की ओर भवभूति और दिङ्नाग दोनों ने संकेत किया है । तीसरी बात दोनों ही कवियों ने संस्कृत नाटकों में परम्परा से स्वीकृत अङ्गीरस शृङ्गार, शान्त और वीर के स्थान पर करुण रस की प्रतिष्ठा की है । करुण रस को नाटक की मुख्य भाव-धारा के रूप में प्रतिष्ठित करना जहां इन दोनों को अन्य नाटककारों से अलग करता है वहीं परस्पर एक दूसरे के समीप लाता है । चौथी बात दोनों ने राम कथा के परिनिष्ठित रूप में परिवर्तन किये हैं । दोनों का ही उपजीव्य वाल्मीकि की रामकथा है किन्तु दोनों ने ही उसके निषेधात्मक अन्त को स्वीकार नहीं किया । भवभूति और दिङ्नाग दोनों ही अपने नाटकों को श्री राम और सीता के मिलन पर समाप्त करते हैं और इस तरह संस्कृत नाट्यशास्त्र में स्वीकृत सुखान्त नाटकों की धारण की पुष्टि करते हैं । दोनों ने ही रोचकता और नाटकीय कौतूहल उत्पन्न करने के लिए अनेक मौलिक प्रसंग जोड़े है तथा पांचवी और अन्तिम बात यह कि दोनों ही नारी और विशेष रूप से सीता के प्रति एक सी सहानुभूति और संवेदना का परिचय देते है । भवभूति और दिङ्नाग दोनों की कृतियों पर दृष्टि डालने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंनें इन कृतियों का प्रणयन उस समय की कुरीतियों की कटुतम आलोचना प्रस्तुत कर

एक आदर्श व्यवस्था की अवतारणा के उद्देश्य से किया था ।

इस प्रकार दोनों ही कवियों का अन्तर्जगत् एक दूसरे से बहुत मिलता-जुलता है । इस शोध-प्रबन्ध के अगले परिच्छेदों में विभिन्न दृष्टि कोणों से इन दोनों रचनाओं का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया जायेगा ।

तृतीय परिच्छेद

उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला की कथावस्तु का समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कृत के अनेक नाटककारों ने भारतीय साहित्य में अत्यधिक लोकप्रिय रामकथा को अपने नाटक का मूल आधार बनाया है, जैसा कि गत पृष्ठों में चर्चा की गयी है । भवभूति और दिङ्नाग ने भी रामकथा के उत्तरार्द्ध से प्रेरित होकर उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला की रचना की है । दोनों नाटककारों की कथा में बहुत कुछ समान है किन्तु दोनों में अपना कथानक सम्बन्धी वैशिष्ट्य भी है ।

भवभूति रचित उत्तररामचरितम् सात अंकों में तथा दिङ्नाग कृत कुन्दमाला छः अंकों में विभाजित है । पिछले परिच्छेद में विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि भवभूति पूर्ववर्ती और दिङ्नाग परवर्ती कवि है । इस वरिष्ठता क्रम को ध्यान में रखते हुए हम इस परिच्छेद में उनकी कृतियों की कथाओं की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे । उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला की कथावस्तु का नाट्य शास्त्रीय मूल्यांकन करने से पहले आवश्यक है कि हम इन नाटकों की कथा को अंकों के अनुसार जानें ।

उत्तररामचरितम् नाटक का कथानक -

नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार सूचित करता है कि राज्याभिषेक में आये हुए अतिथियों को महाराज रामभद्र ने विदा कर दिया है । महाराज दशरथ की पुत्री शान्ता के पति ऋष्यश्रृंग ने बारह वर्ष में पूरा होने वाला यज्ञ प्रारम्भ किया है, जिसमें वसिष्ठ के संरक्षण में राम की माताएं तथा अरून्धती गई हैं ।

जनक प्रवास से खिन्न चित्त वाली सीता को राम आश्वासन देते हैं । तभी कंचुकी द्वारा आष्टावक्र के आने की सूचना मिलती है तथा वह गुरुजनों का संदेश सुनाते हैं । भगवती अरून्धती, शान्ता तथा कौशल्या आदि महारानियों ने आग्रह किया है कि गर्भिणी सीता की इच्छाओं को पूर्ण करें ।

वसिष्ठ ने सीता को आशीर्वाद दिया है कि वीर सन्तान को जन्म देने वाली हो तथा राम को आदेश दिया है कि प्रजा को सर्वथा प्रसन्न रखें। इसके उत्तर में राम कहते हैं कि प्रजा अनुरंजन के लिए प्रेम, दया, सुख अथवा जानकी को भी छोड़ते हुए मुझे कष्ट नहीं होगा। राम का यह कथन सीता के भावी परित्याग को सूचित करता है।

अष्टावक्र के प्रस्थान के बाद लक्ष्मण का प्रवेश होता है। लक्ष्मण अर्जुन नामक चित्रकार द्वारा चित्रित चित्रों को श्री राम जी से देखने की प्रार्थना करते हैं। चित्रों में सर्वप्रथम जृम्भकास्त्रों के दर्शन होते हैं। जृम्भकास्त्रों को देखकर राम सीता को आश्वासन देते हैं कि ये अस्त्र तुम्हारी सन्तान को जन्म से ही प्राप्त होंगे। तत्पश्चात् मिथिला-वृत्तान्त, अयोध्यावृत्तान्त, शूर्पणखा-वृत्तान्त, जटायु दर्शन, पंचवटी आदि के दृश्यों को चित्रित किया गया है। लक्ष्मण के प्रस्थान के पश्चात् सीता जी भागीरथी दर्शन की इच्छा प्रकट करती हैं जिसको राम जी स्वीकार कर लेते हैं। तत्पश्चात् चित्र-दर्शन से परिश्रान्त सीता सो जाती हैं। इसी बीच दुर्मुख नामक गुप्तचर सीता के "रक्षोगृह स्थितिमूलक" लोकापवाद की सूचना राम को देता है। इस दुःसंवाद से राम को मर्मान्तक पीड़ा होती है। उनके मानस में कर्तव्य और प्रेम का भीषण संघर्ष होता है। अपने पूर्वजों की आज्ञा का स्मरण करते हुए सीता परित्याग के लिए लक्ष्मण को आदेश दे देते हैं। भागीरथी दर्शन की इच्छा को ही आधार बनाकर सीता को निर्वासित कर दिया जाता है।

तभी नेपथ्य से यह सूचना मिलती है कि ऋषियों का समूह लवण नामक राक्षस से त्रस्त होकर रक्षा के लिए राम जी के पास आ रहा है। राम जी उसके संहार के लिए शत्रुघ्न को आज्ञा देते हैं और भगवती देवी और पृथ्वी से परित्यक्त सीता की रक्षा की प्रार्थना करके मंच से चले जाते हैं।

द्वितीय अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ बारह वर्षों के पश्चात् शुरू होता है। तापसी आत्रेयी और वासन्ती के वार्तालाप से यह विदित होता

है कि आत्रेयी वेदान्त विद्या का अध्ययन करने के लिए वाल्मीकि के आश्रम को छोड़कर अगस्त्य आदि ब्रह्मवेत्ताओं के पास जा रही है । क्यों कि वाल्मीकि जी किसी देवता के द्वारा सौंपे गये, अदभुत गुणों वाले, जन्म से ही जृम्भकास्त्र प्राप्त दो कुशाग्र बुद्धि वाले बालकों को विधिवत उपनीत कराकर वेद-त्रयी को छोड़कर अन्य तीनों आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति आदि विद्याओं का अध्ययन करा रहे हैं । इन प्रतिभाशाली तथा अत्यन्त प्रखर बुद्धि वाले बालकों के साथ हम लोगों का पढ़ना सम्भव नहीं है । आत्रेयी के द्वारा ही यह भी सूचित होता है कि ऋष्य श्रृंग का द्वादश वर्षीय यज्ञ समाप्त हो गया है और सीता-निर्वासन से दु:खी होकर वसिष्ठ, अरून्धती, कौशल्या आदि वहाँ से लौटने पर वाल्मीकि आश्रम में ही निवास करेंगे । राम जी ने सहधर्मिणी के रूप में सीता की स्वर्ण मूर्ति स्थापित कर अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है । जिसमें अश्व के साथ चलने वाली सेना का नेतृत्व लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु कर रहा है ।

राम ब्राह्मण-बालक के पुर्नजीवन के लिए शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध करते हैं । वह दिव्य पुरूष बनकर ब्राह्मण पुत्र के जीवित होने की सूचना देता है तथा राम जी से आशीर्वाद प्राप्त करता है । इसके पश्चात् राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं और उन्हें पूर्व स्मृतियों के जागृत होने के साथ ही सीता का स्मरण हो आता है ।

द्वितीय अंक में पंचवटी में तमसा एवं मुरला नामक दो नदियों के संवाद से यह सूचित होता है कि पति द्वारा परित्यक्त सीता प्रसव वेदना के कारण और आत्महत्या की सोचकर गंगा में कूद पड़ी थी, वहीं कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए , जिनको गंगा और पृथ्वी ने पाताल में पहुँचा दिया । गंगा ने स्वयं दोनों बच्चों को परमकारूणिक महर्षि के संरक्षण में सौंप दिया है । आज उन बच्चों की बारहवीं वर्षगाँठ है इसलिए भगवती भागीरथी ने उन्हें आदेश दिया है कि वे आज अपने कुल के उपास्यदेवता

भगवान् सूर्य की उपासना करें । दोनों नदियों के वार्तालाप से यह भी सूचित होता है कि भागीरथी का वरदान है कि उन्हें पृथ्वी पर कोई नहीं देख सकता ।

इसके पश्चात् सीता फूल चुनती हुई छाया के रूप में प्रकट होती हैं । राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं किन्तु छाया सीता को नहीं देख सकते । पंचवटी में राम वासन्ती के साथ पूर्व-परिचित दृश्यों को देखकर सीता की स्मृति में व्यथित होकर बार बार मूर्च्छित होते हैं तथा अदृश्या सीता अपने कर-स्पर्श से उन्हें संजीवित करती हैं । वासन्ती वार्तालाप के प्रसंग में अपने कटु वचन से राम को बिद्ध कर देती है और राम अधीर होकर मुक्त कंठ से करूण क्रन्दन करते हैं । सीता के क्षुब्ध मानस पर राम के इस क्रन्दन का बहुत प्रभाव पड़ता है और सीता के मन से अकारण परित्याग का क्षोभ दूर हो जाता है । राम वासन्ती को यह भी बताते हैं कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें सीता की स्वर्ण प्रतिमा को ही पत्नी के स्थान पर रखा है । राम अश्वमेध यज्ञ के लिए अयोध्या लौट जाते हैं और सीता पुत्रों की वर्षगांठ मनाने के लिए गंगा जी के पास जाती हैं । अन्त में वासन्ती श्री राम को तथा तमसा सीता जी को आशीर्वाद देती हैं ।

चतुर्थ अंक में वाल्मीकि के शिष्य सौधातकि और दण्डायन के वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि उनके आश्रम में वसिष्ठ, जनक, कौशल्या अरून्धती आदि अतिथि-गण आये हुए हैं । इधर सीता के पिता राजर्षि जनक जो अब वैखानस हो गये हैं - वे भी वहां पहुंच चुके हैं और सीता के परित्याग से दु:खी होते हैं । अरून्धती के माध्यम से जनक और कौशल्या परस्पर एक दूसरे को सान्त्वना प्रदान करते हैं । आश्रम में ही सभी अतिथियों की लव से भेंट होती है तथा उसे पहचान न सकने पर भी उनके मन में उसके प्रति स्वभाविक आकर्षण होता है किन्तु उसी समय अन्य आश्रम वालों द्वारा राम के यज्ञाश्व की सूचना पाकर लव वहां से चला जाता है

और सैनिकों की घोषणा सुनकर लव क्रुद्ध होकर यज्ञाश्व को पकड़ लेता है ।

पंचम अंक में सुमन्त्र-सारथि के साथ हाथ में धनुष लिए हुए रथ पर आरूढ़ चन्द्रकेतु का प्रवेश होता है । दोनों लव के युद्ध-कौशल को देखकर आश्चर्य-चकित होते हैं तथा उससे बहुत प्रभावित होते हैं । युद्ध के वातावरण में लव और चन्द्रकेतु में दर्पयुक्त संवाद होता है । इसी मध्य लव जृम्भकास्त्र के प्रयोग से सभी सैनिकों को निश्चेष्ट कर देता है । युद्ध विराम के पश्चात् दोनों का सहज प्रेम भाव भी अज्ञात रूप में उमड़ पड़ता है । लव राम के शौर्य पर आक्षेप प्रकट करता है तथा चन्द्रकेतु को युद्ध की चुनौती देता है । क्रुद्ध चन्द्रकेतु भी लव से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है ।

षष्ठ अंक में विद्याधर दम्पती के द्वारा लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध का वर्णन संवाद के रूप में उपस्थित किया गया है । इसी समय शम्बूक वध के पश्चात् लौटे हुए सहसा राम के गम्भीर स्वर को सुनकर दोनों शान्त हो जाते हैं । चन्द्रकेतु द्वारा परिचय प्राप्त करके लव और चन्द्रकेतु राम को प्रणाम करते हैं । चन्द्रकेतु उसके युद्ध की प्रशंसा करते हुए जृम्भकास्त्र प्रयोग की बात बताता है । राम आश्चर्य-चकित होकर उससे शस्त्र को शान्त करने के लिए कहते हैं । लव शस्त्र को शान्त करता है तथा यह भी बताता है कि जृम्भकास्त्र उसे और उसके भाई को जन्म से ही प्राप्त है ।

इसी समय भरत के आश्रम से लौटे हुए क्रुद्ध कुश का प्रवेश होता है । लव कुश को शान्त करता है तथा राम जी को प्रणाम करने के लिए कहता हैं । कुश उन्हें प्रणाम करता हैं । लव और कुश को देखकर राम के हृदय में पुत्र प्रेम की प्रच्छन्न धारा उमड़ पड़ती है किन्तु उन्हें यह मालुम नहीं हो पाता कि ये उन्हीं की सन्तान हैं । बालकों के युद्ध को रोकने के लिए वाल्मीकि आदि गुरूजनों के आगमन की सूचना पाकर उनसे मिलने के लिए राम प्रस्थान करते हैं ।

सप्तम अंक में महर्षि वाल्मीकि के आलौकिक तप: तेज से राम अपने सभी स्वजन गुरूजन तथा प्रजावर्ग के साथ आश्रम में उपस्थित होते हैं । वाल्मीकि द्वारा लिखित तथा अप्सराओं द्वारा अभिनीत गर्भांक नाटक का प्रारम्भ होता है ।

इस नाटक का उद्देश्य सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके उनका तथा कुश और लव का राम के साथ समागम और नाटक को सुखान्त बनाना है ।

सूत्रधार उपस्थित होकर समाजिकों से करूणा और अद्भुत रस से युक्त नाटक को देखने के लिए कहता है और सूचना देता है कि सीता जी सशरीर गंगा में कूद गयी हैं ।तदनन्तर एक एक शिशु को गोद में लेकर गंगा और पृथ्वी सीता के साथ मंच पर प्रवेश करती हैं । दोनों देवियां सीता को आश्वासन देती हैं कि तुमने रघुवंश को धारण करने वाले दो कुमारों को जन्म दिया है । पृथ्वी राम पर क्रुद्ध होकर उनकी भर्त्सना करती हैं । गंगा उन्हें समझाती हैं ।

इसी बीच कल-कल की ध्वनि के साथ जृम्भकास्त्र प्रकट होते हैं तथा सीता जी को प्रणाम करके चित्रदर्शन काल में प्रदत्त राम की आज्ञा का स्मरण दिलाकर लव और कुश को प्राप्त होते हैं ।

दोनों देवियां सीता को आदेश देती हैं कि तुम इन बच्चों का तब तक पालन करो जब जक यह वाल्मीकि-आश्रम में रहने योग्य न हो जाये । सीता अपने तिरस्कार को न सहन कर पाने के कारण पृथ्वी में विलीन होना चाहती हैं किन्तु दोनों देवियां इसका विरोध करती हैं । राम इस दृश्य को वास्तविक समझकर शोकावेग से मूर्च्छित हो जाते है । इसी बीच अरून्धती सीता को लेकर मंच पर प्रकट होती है । सीता अपने कर स्पर्श से राम की चेतना वापस लौटाती हैं । अरून्धती सीता की पवित्रता की घोषणा करती हैं । सभी उपस्थित गुरूजन तथा प्रजावर्ग के सामने वाल्मीकि राम को लव और

कुश समर्पित करते हैं और अन्त में राम सीता को ग्रहण करते हैं । भरत वाक्य के साथ यहीं नाटक समाप्त होता है ।

कुन्दमाला नाटक का संक्षिप्त कथानक - नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार ज्यों ही अपनी नटी को आमन्त्रित करना चाहता है कि रथ पर सवार सीता सहित लक्ष्मण के आने का समाचार प्राप्त होता है । तभी रथ पर सवार सीता, लक्ष्मण और सारथि रंगमंच पर प्रवेश करते हैं । गंगा किनारे रथ के पहुंचने पर सीता गर्भभार से व्यथित होकर विश्राम करने के लिए रूक जाती हैं । कुछ क्षण विश्राम कर लेने के पश्चात् लक्ष्मण उन्हें रामाज्ञा से वन लाने का समस्त कारण बता देते हैं तथा इस विषय में अपनी विवशता प्रदर्शित करते हैं । सीता इस बज्राघात के समान कठोर शब्द सुनकर मूर्च्छित हो जाती हैं । गंगा जी की लहरों से आती हुई ठंडी हवा सीता जी की मूर्च्छितावस्था को दूर करती है ।

लक्ष्मण सीता को राम का संदेश सुनाते हैं कि- "तुम पवित्र उच्च कुल वाली हो, सभी गुणों से युक्त, सुख दुख में साथ रहने वाली सहधर्मचारिणी हो, यह सब मैं जानते हुए भी लोकापवाद के भय से तुम्हें त्याग रहा हूं, तुम्हारी स्नेह आदि भावनाओं में किसी प्रकार का दोष नहीं है । तुम मेरे हृदय में निवास करती हो । यज्ञ में तुम्हारी ही प्रतिमा मेरी धर्मपत्नी होगी लक्ष्मण के कहने पर सीता राम को एकाग्रचित होकर राज्यपालन में तत्पर होने के लिए कहती हैं और निवेदन करती हैं कि मुझे स्मरण करने की कृपा करते रहें ।ऐसा कहकर सीता लक्ष्मण को निर्दोष कहकर विदा कर देती हैं ।

लक्ष्मण सीता से आत्महत्या आदि न करने की प्रार्थना करते हैं और रघुकुल की सन्तान की रक्षा करने का वचन प्राप्त करते हैं । प्रस्थान के समय लक्ष्मण, लोकपालों, ऋषियों तथा हिंसक पशुओं आदि को सम्बोधित करते हुए सीता की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं और चले जाते हैं ।

महर्षि वाल्मीकि शिष्यों से करूण विलाप करती हुई स्त्री का समाचार सुनकर वहाँ आते हैं तथा अपनी योग दृष्टि से ध्यान करके सीता निर्दोष है ऐसा जानकर अपने आश्रम में आश्रय देते हैं और आशीर्वाद देते हैं कि वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो तथा पुनः पति के दर्शन को प्राप्त करो । वाल्मीकि जी के साथ जाती हुई सीता गंगा जी से प्रार्थना करती हैं कि यदि मेरे सुख पूर्वक सन्तान उत्पन्न हो जायेगी तो मैं प्रतिदिन कुन्दपुष्पों की माला बनाकर चढ़ाया करूँगी । इसी के आधार पर इस नाटक का नाम 'कुन्दमाला' रखा गया है ।

द्वितीय अंक में प्रथमा और वेदवती दो मुनि कन्याओं के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि सीता ने वाल्मीकि के आश्रम में दो बालकों को जन्म दिया है जो अब बड़े होकर अध्ययन करने लगे हैं । उन दोनों का नाम कुश और लव रखा गया है । वे बालक रामायण का सस्वर पाठ करते हैं । दोनों सखियों से यह भी विदित होता है कि राम जी नैमिषारण्य में आकर अश्वमेध यज्ञ करेंगे । उसकी सभी तैयारी पूर्ण हो चुकी है तथा सभी ऋषियों को आमन्त्रित किया गया है ।

सीता खिन्न दशा में बैठी हुई स्वगत ही अनुभव करती हैं कि मुझे यह कष्ट-पूर्वक जीवन नहीं व्यतीत करना चाहिए अर्थात् आत्महत्या कर लेनी चाहिए । यह सोचकर वेदवती से मिलना चाहती है तभी वेदवती वहाँ स्वयं आकर राम के विषय में कटु वचनों का प्रयोग करके सीता के मानसिक भावों को पहचानने की कोशिश करती है । राम के दर्शन के प्रति सीता की व्याकुल दशा को देखकर राम के नैमिषारण्य में आने के विषय में बताती है तथा दर्शन शीघ्र ही होगा ऐसा कहती है । तभी नेपथ्य से सूचना मिलती है कि राम के नैमिषारण्य यज्ञ के लिए सभीको प्रस्थान कर देना चाहिए क्यों कि उसमें सबको सम्मिलित होना है ।

तृतीय अंक में एक साधारण तपस्वी से यह विदित होता है कि

राम, लक्ष्मण, सीता, कुश और लव आदि सभी नैमिषारण्य में पहुंच गये हैं तथा मुझे भी शीघ्र पहुंचने का प्रयास करना चाहिए । इतने में राम लक्ष्मण के साथ वाल्मीकि के आश्रम का मार्ग खोजते हुए, सीता के विषय में वार्तालाप करते हुए आगे चले आ रहे हैं कि तभी गोमती नदी के किनारे कुन्दपुष्पों की एक माला लहरों के आघात से राम के चरणों के समीप आ जाती है । लक्ष्मण उसे उठाकर राम को देते हैं । राम उसकी गूंथने की कला को पहचान कर कहते हैं कि इसकी गूंथने की कला सीता के समान है किन्तु संसार में प्रत्येक वस्तु का रचना सादृश्य प्राय: देखा जाता है और फिर अत्यन्त दूर छोड़ी हुई सीता का यहां तक पहुंच पाना असम्भव है । इस प्रकार कहकर वाल्मीकि आश्रम समीप ही हैं ऐसा समझकर आगे प्रस्थान करते हैं । लक्ष्मण मार्ग की विषमता का अनुभव करते हुए मार्ग देखने के लिए आगे जाते हैं और कहते हैं कि इस रेत पर स्त्री के पदचिह्न दिखाई देने के कारण यहां अवश्य ही आदरणीय पूज्यजन होने चाहिए । राम पैरों के चिह्न देखकर कहते हैं कि ये चिह्न अवश्य ही सीता के हैं किन्तु आगे पक्की भूमि आ जाने से चिह्न लुप्त हो जाते है । राम दण्डकारण्य का स्मरण करके सीता सम्बन्धी बातों का स्मरण करते हैं । उसी समय स्नान आदि करके कुन्दपुष्पों की माला अर्पित करके सीता का प्रवेश होता है । लताकुंज में पुष्पचयन करती हुई सीता राम तथा लक्ष्मण को देखती हैं तथा अपने से सम्बन्धित राम-लक्ष्मण के सभी वार्तालाप सुनती हैं । इसी मध्य लोकापवाद के भय से तथा कोई ऋषि या महात्मा आदि न देख लें इस कारण से वहां से जाने का निश्चय करके चली जाती हैं । भगवान वाल्मीकि के आदेशानुसार वादरायण ऋषि राम को लेने आते हैं तथा वाल्मीकि आश्रम ले जाते हैं ।

चतुर्थ अंक में वेदवती और यज्ञवती नामक दोनों तपस्विनियों के वार्तालाप से यह विदित होता है कि तिलोत्तमा नामक अप्सरा सीता का रूप धारण कर राम के भावों की परीक्षा करना चाहती है कि राम सीता के ऊपर दयावान हैं या नहीं किन्तु राम का मित्र विदूषक इस वार्तालाप को

सुन लेता है । इधर आश्रम में रहने वाली स्त्रियाँ वाल्मीकि जी से निवेदन करती हैं कि यहाँ समीप में ही राम का अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ होने वाला है और राजपुरूष फूल तोड़ने के लिए प्रतिदिन यहाँ आया करेंगें इसलिए हम सब आश्रम की स्त्रियाँ वहाँ स्नान नहीं कर सकते तब वाल्मीकि जी ने योग के द्वारा अपनी दृष्टि को स्थिर करके और थोड़ी देर ध्यान मग्न होकर कहा कि इस बावड़ी पर स्नानादि करती हुई स्त्रियों पर दूसरे मनुष्यों की दृष्टि नहीं पड़ सकेगी अतः तुम सब निश्चिन्त होकर स्नान आदि जलविहार करो । इस कथन के पश्चात् सीता निर्भीक होकर दिनभर उसी बावड़ी के किनारे रहती हैं किन्तु सीता को कोई अन्य पुरूष देख नहीं सकता । सीता बावड़ी के किनारे खड़ी हुई हंसों के जोड़ों को देख रही थी कि सहसा शीतल हवा के स्पर्श से उन्हें ठंड लगने लगती है और वह मायावती नामक चित्रकूट के वन देवता के द्वारा उपहार दिये हुए उत्तरीय को ओढ़ लेती हैं ।

इसी बीच राम के मित्र कण्व राम को वन के दृश्य दिखाते हुए उन्हें बावड़ी के समीप ले आते हैं और स्वयं सायंकालिक सन्ध्या वन्दनादि करने के लिए चले जाते हैं । राम बावड़ी की सुन्दरता से मुग्ध होकर अपने नेत्रों को धोने के लिए बावड़ी पर आ जाते हैं । नेत्रों को धोने के लिए जैसे ही झुकते हैं उन्हें सीता की परछाई जल में दिखाई देती है परन्तु सीता खोजने पर भी प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देती । इस प्रकार राम व्यथित होकर मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता अपने स्पर्श से राम की चेतना वापस ले आती हैं । राम सचेत होकर सीता से प्रत्यक्ष दर्शन के लिए कहते हैं किन्तु पुनः सीता के न दिखाई पड़ने पर राम मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता उनकी चेतना लौटाने के लिए उत्तरीय से हवा करती हैं । चेतना आ जाने पर राम सीता का अदृश्य रूप में ही वार्तालाप होता है । राम सीता के उत्तरीय को पकड़कर खींच लेते हैं और अपना उत्तरीय सीता की ओर फेंक देते हैं । सीता उस उत्तरीय को ओढ़कर सायंकाल हो जाने के कारण वहाँ से चली जाती हैं । इसके पश्चात्

राम को खोजता हुआ विदूषक आता है तथा सीता की सखी वेदवती द्वारा सुनी हुई तिलोत्तमा की प्रवंचना को बताता है । जिससे राम अपने को ठगा हुआ समझकर चिन्ता में डूब जाते हैं किन्तु राम को विश्वास नहीं होता है ।

पंचम अंक में पहले विदूषक का तदनन्तर राम का प्रवेश होता है । राम तिलोत्तमा की घटना को अभी तक विस्मरण नहीं कर पाये है तथा कहते हैं कि तिलोत्तमा सीता जैसी कुन्द पुष्पों की माला की रचना, रेत में पदपँक्तियों के निशान, सीता की परछाईं आदि भले बना सकती है किन्तु मुझे कोई अन्य स्त्री वस्त्रांचल की हवा से स्पर्श करने का साहस नहीं कर सकती अतः निश्चित ही वह सीता थी । राम सीता का स्मरण कर अत्यन्त व्याकुल होते हैं । विदूषक उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न करता है ।

राम राजसभा में प्रवेश करने के लिए मुनियों के ऊपर से प्रतिबन्ध हटा देते हैं । विदूषक साँवली कान्ति वाले अविकसित युवावस्था से युक्त शरीर वाले, द्वार पर खड़े हुए दो बालकों के विषय में राम को बताता है राम उन दोनों बालकों कुश और लव को शीघ्र आदर के साथ अन्दर लाने की आज्ञा देते हैं विदूषक कहता है कि द्वार पर स्थित लोगों ने उन दोनों को इस प्रकार से बातचीत में लगा रखा है कि वे वहां से आ ही नहीं रहे है तथा वे दोनों भी बड़ी लगन से उत्तर प्रत्युत्तर देकर सबका मन मोह रहे हैं । विदूषक के साथ अन्दर प्रवेश करके दोनों बालक राम जी को प्रणाम करते हैं । राम उन दोनों को ब्रह्मर्षि बालक समझकर कहते हैं कि आप दोनों का प्रणाम मेरी अनुमति से आप दोनों के गुरूजनों के चरणों का उपहार हो । राम स्नेहयुक्त ह [illegible]र उन बालकों को अपने राजसिंहासन पर बिठा लेते हैं । उसी समय विदूषक कहता है, राजन् दोनों बालकों को सिंहासन से शीघ्र उतार दें, भगवान दोनों का कल्याण करें क्यों कि इस सिंहासन पर रघुकुल की सन्तान के अतिरिक्त जो कोई भी बैठेगा उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे । यह सुनकर राम आश्चर्य-युक्त होकर दोनों बालकों के सिर में कोई विकार न

देखकर उनको रघुवंशी की संतान मान लेते हैं और उनकी आकृति में सीता की समानता देखकर और सीता के गर्भ के समान आयु देखकर सीता के पुत्र मानते हुए अपनी सन्तान मान लेते हैं ।

षष्ठ अंक के आरम्भ में राम कुश और लव से रामायण की कथा सुनते हैं । वे दोनों दशरथ के विवाह से लेकर रावण वध और राम के द्वारा सीता के निर्वासन तक की कथा सुनाते हैं और फिर शांत हो जाते है । इसके पश्चात् लव कुश और राम लक्ष्मण का वार्तालाप होता है । लक्ष्मण कण्व ऋषि को बुलाते हैं तथा उसके आगे की शेष कथा कण्व ऋषि सुनाते हैं । वे सीता के पुत्र जन्म की कथा सुनाते हुए लव और कुश का सही परिचय देते हैं । सभी प्रसन्न होते हैं तथा उनका वास्तविक परिचय प्राप्त करके राम, लक्ष्मण, कुश और लव सभी मूर्च्छित हो जाते हैं । इसके पश्चात् वाल्मीकि और सीता का प्रवेश होता है । वाल्मीकि तथा सीता उन्हें धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं तथा उनकी मूर्च्छितावस्था दूर हो जाती है । वाल्मीकि क्रोध पूर्वक राम से कहते हैं कि जनक के द्वारा दी गई, दशरथ के द्वारा ग्रहण की गई अरून्धती के द्वारा जिसका मंगल किया गया, वाल्मीकि के द्वारा शुद्ध चरित्र वाली मानी गई, अग्नि के द्वारा शुद्ध की गई, लव और कुश की माता, भगवती पृथ्वी की पुत्री देवी सीता को मात्र लोकापवाद के कारण निर्वासित करके तुमने बहुत बड़ा अन्याय किया है । वाल्मीकि सीता को अपनी पवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत करने की आज्ञा देते है । सीता उनकी आज्ञा मानकर लोकपालों, सूर्य आदि देवताओं से प्रार्थना करती हैं कि मैंने मन वचन और कर्म से किसी अन्य पुरूष को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया अत: वे सब उनकी शुद्धि का प्रमाण दें । पृथ्वी से भी प्रार्थना करने पर पृथ्वी दिव्य रूप में प्रकट होती हैं और सीता को निष्कलंक कहकर अन्तर्धान हो जाती है । आकाश में नगाड़े बजने लगते हैं, आकाश से फूलों की वर्षा होती है । सीता के साथ राम लव-कुश को स्वीकार करते हैं । लक्ष्मण क्षमा याचना करते हुए सीता को प्रणाम

करते हैं । लक्ष्मण के अनुरोध पर राम कुश को राज्यभार सौंप देते हैं । इस प्रकार कुश राजा बन जाता है और लव को राम युवराज पद दे देते हैं । भरत वाक्य के साथ नाटक यहीं समाप्त हो जाता है ।

कथावस्तु की शास्त्रीय समीक्षा – प्रस्तुत परिच्छेद में हम नाट्य शास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु का अनुशीलन कर यह निर्धारित करने का प्रयास करेंगे कि नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं की कसौटी पर यह दोनों नाटक कितने खरे उतरते हैं । सर्वप्रथम हम शास्त्रीय प्रतिमानों पर तत्पश्चात् शास्त्रोक्त तत्त्वों में से कौन से तत्त्व इन नाटकों में उपलब्ध होते है, इस बात पर विचार करेंगे ।

संस्कृत नाट्यकारों ने काव्य को दो कोटियों में विभाजित किया है – दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य अर्थात् जो सुना जाये उसे श्रव्य काव्य और जो देखा जाये उसे दृश्य काव्य कहते हैं । श्रव्य काव्य में वर्णन प्रधान रहता है तथा दृश्य काव्य में अभिनय की प्रधानता रहती है । दृश्य काव्य की प्रमुख विधा रूपक है । इसकी परिभाषा देते हुए धनंजय ने लिखा है – रूपकं तत्समारोपात्[1] अर्थात् दृश्य काव्य में नट पर राम आदि पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है अत: इसे "रूपक" की संज्ञा दी गयी है । धनंजय के अनुसार रूपक के दस भेद हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंग, वीथी, प्रहसन[2] । इनमें नाटक सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है । धनंजय ने रूपक के दस भेदों की व्याख्या करते हुए उनके तीन भेदक तत्त्व बताये हैं -वस्तु नेता और रस "वस्तुनेतारसस्तेषां भेदक:"[3] । ये तीनों ही रूपक के प्राणभूत तत्त्व हैं । दृश्य काव्य में कथावस्तु का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है । कथावस्तु को ही

1- दशरूपकम्- पृ0 4

2- क- दशरूपकम् - 1/8 नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम: ।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यंकेहामृगा इति ।।

ख-साहित्यदर्पण - 6/3

3- दशरूपकम् - 1/11

कथा, कथानक, इतिवृत्त, नाटकीय आख्यान आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है । रंगमंच पर अभिनय होने के कारण इसे रंगमंचीय या अभिनेय भी कहा जाता है । कथानक के माध्यम से ही रस का स्फुरण होता है ।

नाट्य शास्त्राचार्यों ने कथानक को पुन: प्रख्यात उत्पाद्य तथा मिश्र तीन वर्गों में बाँटा है - " प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदा- त्त्रेधापि तत्त्रिधा " [1] । पुराण तथा इतिहास आदि प्रसिद्ध कथानक से लिया गया इतिवृत्त प्रख्यात कहलाता है, जो पूर्णत: कवि कल्पित हो उसे उत्पाद्य कहते हैं और जो कथानक प्रख्यात हो लेकिन उसमें कवि की कल्पना का भी समावेश हो उसे मिश्र कथानक कहते हैं ।

प्रख्यात इतिवृत्त के कथानकों में कवि अपनी कल्पना के अनुसार परिवर्तन नहीं कर सकता किन्तु इतिवृत्त की गति यदि नायक के गुणों और उसके धीरोदात्तत्व में बाधक हो तो ऐसी दशा में रस के अनौचित्य दोष को हटाने के लिए कथा के उस अंश में कवि आसानी से परिवर्तन कर सकता है [2] । प्रख्यात उत्पाद्य तथा मिश्र कथानकों को ही क्रमश: दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य भी कहा गया है - दिव्यमर्त्यादिभेदत: [3] ।

इसीलिए महाभारत तथा पद्मपुराण के दुष्यन्त को धीरोदात्त नायक के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए तथा शकुन्तला के तिरस्कार के सम्बन्ध में दुष्यन्त को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कालिदास ने दुर्वासा के शाप की परिकल्पना की है । अत्याधिक लोक-रंजक होने के कारण आगे चलकर यह कल्पना इस तरह दुष्यन्त के आख्यान का अंग बन गयी कि लोग पद्मपुराण और महाभारत के दुश्चरित्र दुष्यन्त को भूल गये । भवभूति ने

1- दशरूपकम् - 1/15

2- दशरूपकम् - 1/68

3- दशरूपकम् - 1/15

भी बालि वध के प्रसंग में स्वयं बालि ने ही राम से युद्ध करने की इच्छा प्रकट की ऐसी कल्पना कर श्री राम को बालि वध के दोष से मुक्त किया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रख्यात इतिवृत्त में कवि उस सीमा तक परिवर्तन कर सकता है जहाँ तक वह परिवर्तन रसनिष्पत्ति तथा नाट्य शास्त्रीय नियमों के पालन में सहायक हो ।

भारतीय नाट्यकारों ने कथावस्तु के मुख्य तथा गौण दो भेद स्वीकार किये हैं । इन्हें ही क्रमशः आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथावस्तु कहा जाता है । जिसप्रकार प्रख्यात आदि भेद कथा की प्रकृति के आधार पर होते हैं उसी प्रकार आधिकारिक और प्रासंगिक भेद कथा के विस्तार और फलवत्ता के आधार पर होते हैं । नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि ने इतिवृत्त को दो भागों में विभक्त किया है -

इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिकल्पयेत् ।
आधिकारिकमेकं तु प्रासंगिकमथापरम् ।।[1]

इनके पश्चात्वर्ती धनंजय,[2] रामचन्द्र-गुणचन्द्र,[3] विश्वनाथ[4] आदि आचार्यों ने भी इन्हीं का अनुगमन किया है । इतिवृत्त की मुख्य कथा आधिकारिक तथा अंग रूप वस्तु प्रासंगिक कथावस्तु कहलाती है । आधिकारिक वस्तु रूपक के नायक की फलप्राप्ति तथा उसके सभी प्रयत्नों से सम्बद्ध रहती है । मुख्य कथा के सहायतार्थ आने वाली कथा प्रासंगिक कथा कहलाती है । यह कथा मुख्य कथा को गति प्रदान करने में सहायक होती है । उदाहरणार्थ- रामायण में अहल्या, शबरी, सुग्रीव, विभीषण आदि की कथायें प्रासंगिक कथायें हैं जो कि श्री राम की आधिकारिक कथा को विकसित करने में तथा राम के नायकत्व की प्रतिष्ठा में सहायता पहुँचाती हैं ।

1- नाट्यशास्त्र - 19/2
2- दशरूपकम् - 1/11
3- नाट्यदर्पण - 1/10
4- साहित्य दर्पण- 6/42

प्रासंगिक इतिवृत्त को पुनः दो भागों में विभक्त किया जाता है - पताका तथा प्रकरी - "सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्" ।[1] जो प्रासंगिक कथा रूपक में दूर तक प्रधान इतिवृत्त के साथ चलती रहती है उसे पताका कहते हैं । जैसे पताका अर्थात् ध्वजा नायक का चिह्न युद्ध-स्थल में उसका उपकार करती है क्यों कि युद्ध में पताका को दूर से ही देखकर सैनिक नायक के पास पहुँचते हैं उसी तरह दूर तक चलने वाला प्रासंगिक इतिवृत्त भी प्रधान इतिवृत्त अथवा नाटक का उपकारक होता है । पताका कथावस्तु का नायक भिन्न होता है जो आधिकारिक वस्तु के नायक का सहयोगी तथा गुणों में उससे कुछ कम गुणवान होता है जैसे - सुग्रीव । जो कथा अपेक्षाकृत संक्षिप्त होती है तथा मुख्यकथावस्तु के एक देश विशेष में ही सीमित होती है वह प्रकरी कहलाती है ।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर हम यह निर्धारित करने का प्रयास करेंगे कि उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला नाटक की कथावस्तु प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र में से किस कोटि की है उपर्युक्त तीनो भेदों मे से उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला नाटकों की कथा प्रख्यात कोटि की है । यद्यपि सम्पूर्ण कथा का आधार वाल्मीकि-रामायण ही है तथापि इसमें किये गये परिवर्तनों के आधार पर विशेषकर राम और सीता का मिलन हो जाने के कारण इसे मिश्र कोटि का भी माना जा सकता है लेकिन अधिकांश विद्वानों ने इसे "प्रख्यात" कोटि में ही रक्खा है ।

1- दशरूपकम्- 1/13

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला की कथा में राम तथा सीता का इतिवृत्त ही आधिकारिक या प्रधान कथा-वस्तु है क्यों कि प्रारम्भ से राम के द्वारा सीता का परित्याग और अन्त में पुनर्मिलन ही नाटक का संपूर्ण फल है । अतः आरम्भ से ही कथा आधिकारिक कही जायेगी ।

दोनों नाटकों में ही प्रासंगिक कथाओं का अभाव है । उत्तररामचरितम् में शम्बूक के वध की घटना का आश्रय लेकर कवि ने राम को पंचवटी में पहुंचाकर अत्यन्त कौशल से प्रासंगिक कथा को आधिकारिक कथावस्तु का सहायक बना दिया है ।

अभिनेयता की तथा घटनाओं के संयोजन की दृष्टि से नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने कथावस्तु के पुनः दो भेद किये हैं - दृश्य तथा सूच्य । कथानक में कई ऐसे प्रसंग होते हैं, जिन्हें मंच पर नहीं दिखाया जा सकता है । कुछ ऐसी घटनाएं होती हैं जिनका अभिनय संभव नहीं होता और कुछ नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं के अन्तर्गत दिखाना उचित नहीं है । इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कथासूत्र होते है जो कथानक के निर्वाह के लिए आवश्यक तो होते हैं पर इतने आवश्यक नहीं कि उन्हें मंच पर अभिनीत किया जाये । ऐसे सारे कथांश "सूच्य" कहलाते हैं । जिन कथांशो का मंच पर अभिनय किया जाता है उन्हें "दृश्य" वस्तु कहते हैं ।

घटनाओं के जिन अंशों को मंच पर दिखाना नाट्यशास्त्र एवं लक्षण ग्रन्थों में वर्जित है , उन कथांशो की संवाद के माध्यम से मात्र सूचना दे दी जाती है । उदाहरण के लिए लम्बी यात्रा, वध, युद्ध, राज्य व देश की क्रान्ति, भोजन, स्नान, सुरत, उबटन, वस्त्र पहनना आदि क्रियाओं को

1- दशरूपकम्- 1/56

द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः ।
सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापम् ॥

प्रत्यक्ष रूप से मंच पर दिखाने का निषेध[1] है अतः उनकी सूचना मात्र दी जाती है ।

सूच्य कथांशो की सूचना पांच विधियों के द्वारा दी जाती है । इन विधियों को ही अर्थोपक्षेपक कहते हैं । अर्थोपक्षेपक शब्द का अर्थ है - जो अर्थ अर्थात् कथावस्तु का दर्शकों के समक्ष उपक्षेपण करें अर्थात् प्रस्तुत करें । अर्थोपक्षेपक पांच प्रकार के होते हैं - विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य एवं अंकावतार[2] । इनमें से विष्कम्भक एवं प्रवेशक विशेष लोकप्रिय हैं ।

विष्कम्भक- जो घटनाएं अतीत में घट चुकी हैं अथवा जो भविष्य में घटने वाली घटनाएं हैं उन दोनों की सूचना देने वाला विष्कम्भक कहलाता है । एक अथवा दो मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा इनकी सूचना दी जाती है[3] । विष्कम्भक में दो से अधिक पात्र नहीं होते तथा कोई भी पात्र उत्तम कोटि का नहीं होता । इसका प्रयोग नाटक के आरम्भ में उस स्तर पर किया जाता है जहां रसानुभूति कराना अभीष्ट नहीं होता है - "एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः[4] । एक या अनेक मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक

1- दशरूपकम् - 3/34, 35

दूराध्वानं वधं, युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्

संरोधं भोजनं स्नानं सुरत चानुलेपम् ।

अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ।।

2- दशरूपकम्- 1/58

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।

विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ।।

3- दशरूपकम् - 1/59

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ।।

4- दशरूपकम् - 1/60

शुद्ध कहलाता है और मध्यम तथा अधम पात्रों द्वारा मिलकर प्रयोजित विष्कम्भक संकीर्ण कहलाता है । विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का होना अनिवार्य है । शुद्ध विष्कम्भक में सभी पात्र संस्कृत का ही प्रयोग करते हैं तथा मिश्र में प्राकृत भाषा का भी प्रयोग किया जाता है । उत्तररामचरितम् में दो बार मिश्र विष्कम्भक का तथा दो बार शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है जब कि कुन्दमाला में विष्कम्भक का सर्वथा आभाव है ।

उत्तररामचरितम् में द्वितीय तथा तृतीय अंक में शुद्ध विष्कम्भक और चतुर्थ तथा षष्ठ अंक में मिश्र विष्कम्भकं का प्रयोग हुआ है । प्रथम अंक में विष्कम्भक का प्रयोग नहीं किया गया है । कवि ने प्रस्तावना में ही सूत्रधार के वार्तालाप द्वारा विष्कम्भक का कार्य सम्पादन कर दिया है ।

द्वितीय अंक में शुद्ध विष्कम्भक में आत्रेयी और वनदेवता के वार्तालाप से अत्यन्त मेधावी, तेजस्वी जृम्भकास्त्र प्राप्त कुश लव का जन्म, ऋष्यश्रृंग का यज्ञ समाप्त होने पर अरून्धती तथा सभी राजमाताएँ वसिष्ठ के साथ वाल्मीकि के आश्रम में निवास के लिए आयेंगे, इस की सूचना मिलती है । राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ चन्द्रकेतु के संरक्षण में किया गया है, यज्ञ में सहधर्मचारिणी के स्थान पर सीता की स्वर्णमयी मूर्ति की स्थापना की गयी है तथा ब्राह्मण के मृत पुत्र की रक्षा के लिए राम शम्बूक को ढूंढने के लिए निकल पड़े है आदि सूचनाएं भी विष्कम्भक के द्वारा ही प्राप्त होती हैं ।

तृतीय अंक का आरम्भ शुद्ध विष्कम्भक से होता है जिसमें तमसा तथा मुरला द्वारा कवि ने कुश और लव के जन्म का रहस्योद्घाटन किया है । भगवती भागीरथी यह कह कर सीता को पंचवटी में ले आई हैं कि आज कुश और लव की बारहवीं वर्ष-गाँठ पर तुम स्वयं अपने हाथ से फूल चुनकर भगवान सूर्य की पूजा करो । जबतक पंचवटी में राम रहें उन्होंने

सीता को अदृश्य बना दिया है ।

चतुर्थ अंक में मिश्र विष्कम्भक में दण्डायन और सौधातिक के संवाद से यह विदित होता है कि महर्षि वसिष्ठ अरून्धती तथा सभी राजमाताओं के साथ वाल्मीकि आश्रम में आ गये हैं । जनक भी सीता के समाचार से दुखी होकर आश्रम में आ गये हैं ।

षष्ठ अंक में मिश्र विष्कम्भक के रूप में विद्याधर दम्पती द्वारा कवि ने लव और चन्द्रकेतु के भयंकर युद्ध का वर्णन किया है ।

उत्तररामचरितम् में चार बार विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है जब कि कुन्दमाला में सर्वथा विष्कम्भक का अभाव है ।

प्रवेशक- यह भी विष्कम्भक के समान ही अतीत और भावी कथांशों की सूचना देता है परन्तु इसके सभी पात्र निम्न श्रेणी के होते हैं और उसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं होती है । इसकी भाषा शिष्ट प्राकृत न होकर मागधी, शकारी आदि अशिष्ट प्राकृत होती है । प्रवेशक की योजना हमेशा दो अंको के बीच में ही की जाती है[1] । प्रथम अंक में या नाटक के प्रारम्भ में इसका प्रयोग कभी नहीं हो सकता है, जबकि विष्कम्भक का प्रयोग सर्वत्र हो सकता है ।

उत्तररामचरितम् में प्रवेशकं का सर्वथा अभाव है । कुन्दमाला नाटक के प्रथम अंक में सीता वाल्मीकि आश्रम में पहुंच जाती हैं । इस अंक की कथा कवि ने आगे प्रवेशक के माध्यम से ही जोड़ी है । द्वितीय अंक के प्रारम्भ में दो मुनि कन्यायों के वार्तालाप से विदित होता है कि सीता ने लव और कुश नामक दो बालकों को जन्म दिया है जो बड़े होकर अपनी चंचल आकृति

1- दशरूपकम्- 1/60

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ॥

से सभी तपस्विनियों का मन मोह लेते हैं तथा अब उन्होंने अध्ययन करना शुरू कर दिया है । श्री राम के नैमिषारण्य यज्ञ की सभी तैयारी पूर्ण हो चुकी हैं । उन्होनें सभी प्रजा-जनों को आमन्त्रित किया है ।

तृतीय अंक में एक तापस के माध्यम से यह सूचना मिलती है कि सीता, लव और कुश तथा राम और लक्ष्मण नैमिषारण्य में पहुंच गये हैं ।

चतुर्थ अंक में वेदवती और यज्ञवती नामक दोनों तपस्विनियों से यह सूचना मिलती है कि तिलोत्तमा नामक अप्सरा सीता का रूप धारण कर राम के पास पंहुंचकर यह जानने का प्रयास करेंगी कि राम सीता के प्रति कितने दयालु हैं किन्तु इस बात को राम के मित्र विदूषक ने सुन लिया है ।

इस प्रकार इस नाटक में द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अंक में प्रवेशक का प्रयोग हुआ है और उत्तररामचरितम् में प्रवेशक का आभाव है ।

चूलिका - जहां अर्थ की सूचना नेपथ्य के अन्दर बैठे लोगों द्वारा दी जाती है वहां चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक होता है[1] । कीथ का कथन है"यदि किसी अंक के आरम्भ में एक पात्र रंगमंच पर हो और दूसरा नेपथ्य में हो तो उन दोनों के कथोपकथन को खंडचूलिका कहते हैं जैसा कि बाल रामायण में[2]"।

उत्तररामचरितम् में तृतीय अंक में चूलिका का प्रयोग तीन बार हुआ है । करिकलभ पर उद्दण्ड गजेन्द्र द्वारा किये गये आक्रमण की सूचना चूलिका द्वारा दी गयी है[3] । राम विमानराज को उतरने का आदेश भी चूलिका द्वारा देते हैं[4] । पंचवटी दर्शन के कारण वहां के चिर-परिचित स्थलों को देखकर

1- दशरूपकम् - 1/61

2- संस्कृत नाटक कीथ पृ0 323

3- उत्तररामचरितम् पृ0 139

4- उत्तररामचरितम् - पृ0 140

सीता की स्मृति में राम के विह्वल होने की सूचना भी चूलिका द्वारा दी गई है[1] ।

द्वितीय अंक का आरम्भ चूलिका से होता है । तापसी आत्रेयी का स्वागत चूलिका द्वारा ही किया जाता है[2] ।

चतुर्थ अंक में चूलिका द्वारा भगवती तथा कौशल्या को मार्ग का संकेत दिया गया है[3] । पंचम अंक के आरम्भ में चूलिका द्वारा सुमन्त्र के साथ रथ पर आरूढ़ चन्द्रकेतु के प्रवेश की सूचना दी जाती है ।

षष्ठ अंक के अन्त में चूलिका द्वारा अरून्धती, वसिष्ठ तथा राजमाताओं के आगमन की सूचना दी जाती है और बताया गया है कि राम की ऐसी दशा को देखकर जनक मूर्च्छित हो जाते हैं और चेतना प्राप्त होने पर वे राजमाताओं को, जो राम की अवस्था देखकर मूर्च्छित हो गई हैं, आश्वस्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं[4] । इस अर्थोपक्षेपक का कुन्दमाला में भी प्रयोग किया गया है ।

कुन्दमाला में प्रथम अंक के आरम्भ में "इत इतो ऽवतरत्वार्या" अर्थात् आर्या इधर से उतरें, चूलिका द्वारा इसकी सूचना दी गई है[5] । तदनन्तर सूत्रधार द्वारा सूचित किया जाता है कि लोकापवाद से निर्वासित सीता को लक्ष्मण वन छोड़ने के लिए ले जा रहे हैं ।

दोनों ही नाटकों में चूलिका का प्रयोग हुआ है । उत्तररामचरितम् में चूलिका का प्रयोग द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ अंक में हुआ है ।

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 144
2- उत्तररामचरितम् - ‌॥नेपथ्ये॥ स्वागतं तपोधनायाः- पृ0 84
3- उत्तररामचरितम्- ॥नेपथ्ये॥ इत इतो भगवतीमहादेव्यौ । - पृ0 218
4- उत्तररामचरितम् - पृ0 330, 331
5- कुन्दमाला - पृ0 5

कुन्दमाला में केवल प्रथम अंक के आरम्भ में ही चूलिका का प्रयोग हुआ है । यह चूलिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नहीं है जब कि उत्तररामचरितम् के चूलिका के स्थल बड़े ही सटीक मर्मस्पर्शी व मानव मनोविज्ञान को परिलक्षित करते हैं । उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में चूलिका का प्रयोग इस लिए माना गया है कि उन स्थलों पर एक पात्र मंच पर और एक पात्र नेपथ्य में है ।

अंकास्य- जहां किसी अंक के अन्त में प्रविष्ट पात्रों द्वारा किसी ऐसी बात की सूचना दी जाए जिसमें अगले अंक का आरम्भ हो उसे अंकास्य या अंकमुख कहते हैं[1] । भरत ने नाट्य-शास्त्र में अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक को अंकमुख कहा है । यद्यपि दोनों का अर्थ एक ही है, केवल परिभाषा में भिन्नता है । भरतमुनि के अनुसार जहां किसी स्त्री या पुरूष के द्वारा अंक की कथा का संक्षिप्त आरम्भ में ही कर दिया जाये उसे अंकमुख कहते हैं[2] । विश्वनाथ के मतानुसार जहां एक ही अंक में दूसरे अंकों की सम्पूर्ण कथा की सूचना हो वह अंकमुख कहलाता है[3] ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला नाटक में अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक का कहीं प्रयोग नहीं हुआ है ।

अंकावतार- जहां प्रथम अंक की वस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अंक की कथावस्तु आरम्भ हो वहां अंकावतार होता है[4] । अर्थात् जब प्रथम अंक में कोई

1- दशरूपकम्- 1/62 अंकान्तपात्रैरंकास्यं छिन्नांकस्यार्थसूचनात्

2- ना० शा० - 21/116

विशिष्टमुखमंकस्य स्त्रिया वा पुरूषेण वा ।
यत्र संक्षिप्तये पूर्वं तदङ्कमुखमिष्यते ॥

3- साहित्यदर्पण - 6/59

यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाऽखिला
तदङ्कमुख-मित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत्

4- दशरूपकम् 1/62

अंकावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः

पात्र किसी बात की सूचना दे तथा वे ही पात्र उसी कथावस्तु को लेकर अगले अंक में प्रवेश करे । तब उसे अंकावतार कहते हैं ।

उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक के अन्त में तथा तृतीय अंक के प्रारम्भ में अंकावतार नामक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग चमत्कार-पूर्ण है । "उत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः" द्वारा द्वितीय अंक को समाप्त कर तृतीय अंक का आरम्भ "ततः प्रविशति नदीद्वयम" से किया है ।

कुन्दमाला में अंकावतार नामक अर्थोपक्षेपक का आभाव है ।

अभिनेय तथा सूच्य की दृष्टि से कथावस्तु का विवेचन करने पर यह ज्ञात होता है कि उत्तररामचरितम् में सूच्य कथांशों के लिए विष्कम्भक, चूलिका तथा एक जगह अंकावतार नामक तीन ही अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त कुन्दमाला में केवल प्रवेशक और चूलिका का ही प्रयोग किया गया है ।

शेष कथांश को कवियों ने दृश्य कथावस्तु की कोटि में रखा है ।

कथोपकथन की दृष्टि से आचार्यों ने नाटकीय कथावस्तु के पुनः तीन भेद किये हैं- सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य । सर्वश्राव्य सभी के द्वारा सुनने योग्य होता है । सामान्यतः अभिनेता सर्वश्राव्य को "प्रकाश" रूप में ही बोलते हैं ताकि रंगमंच पर उपस्थित पात्र तथा दर्शक सभी उस कथन को सुन सकें । कुछ विशिष्ट पात्रों के सुनने के योग्य नियतश्राव्य और किसी भी पात्रों के द्वारा न सुनने योग्य अश्राव्य कथोपकथन कहलाता है ।

सबके सुनने योग्य वस्तु "प्रकाश" तथा किसी के न सुनने योग्य वस्तु "स्वगत" या "आत्मगत" कहलाती है । कुछ विशिष्ट लोगों के ही द्वारा सुनने योग्य कथोपकथन "नियतश्राव्य" कहलाता है । नियतश्राव्य कथोपकथन

1- दशरूपकम्- 1/64

दो प्रकार के होते हैं- द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्[1] ।
रंगमंच पर अन्य पात्रों के विद्यमान होते हुए भी दो पात्र परस्पर इस तरह
की मन्त्रणा करें कि वह मन्त्रणा दूसरों को सुनना अभीष्ट न हो तथा वहां
उपस्थित अन्य पात्रों की ओर त्रिपताकाकर नामक हस्त मुद्रा से बचा दिया
जाय तो वह "जनान्तिक" कहलाता है । जहां मुँह को दूसरी ओर करके कोई
पात्र दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात को कहता है, उसे "अपवारित" कहते हैं ।

उत्तररामचरितम् में अधिकांश कथोपकथन सर्वश्राव्य हैं । नियतश्राव्य
कथनों का इसमें लगभग आभाव है । केवल प्रथम अंक में ही एक स्थल पर लक्ष्मण
की उक्ति में "अपवारित" नामक नियतश्राव्य कथोपकथन का प्रयोग हुआ है ।
प्रथम अंक में चित्रदर्शन के प्रसंग में सीता द्वारा कुछ पूछे जाने पर लक्ष्मण लज्जा
पूर्ण स्मित के साथ अपवारित भाषण में कहते हैं कि भाभी जी तो उर्मिला
के विषय में पूँछ रही है तो मैं इनका ध्यान किसी दूसरे विषय पर करता हूँ[2] ।

उत्तररामचरितम् में लगभग सत्रह बार स्वगत का प्रयोग हुआ है ।
बहुत छोटे छोटे एक वाक्य या दो वाक्यों तक के ये कथोपकथन अत्यन्त
मर्मस्पर्शी तथा पात्रों के मनोभावों का सही सही मूल्यांकन कराने में सहायक
सिद्ध हुए हैं । इन स्वगत कथनों के माध्यम से पात्रों का चरित्र उनकी
व्यक्तिगत भावनाएं, इच्छाएं एवं उनका अन्तर्द्वन्द स्पष्ट हुआ है ।

प्रथम अंक में राम का स्वगत कथन शंका से सम्बन्धित है । राम
को दुर्मुख नामक गुप्तचर का नाम सुनकर के ही आगामी आशङ्का का आभास
होने लगता है । द्वितीय अंक में आत्रेयी द्वारा सीता के विषय में कहने पर
वासन्ती सीता की प्रिय सखी होने के कारण भय के साथ स्वयं से ही कहती
हैं - "कथं नामशेषेत्याह"[3] । तृतीय अंक में वासन्ती और राम के स्वगत

1- दशरूपकम् - 1/65
2- उत्तररामचरितम् - पृ0 36
3- उत्तररामचरितम् - पृ0 95

कथनों के स्थल बड़े ही सटीक व मर्मस्पर्शी हैं तथा मानव मनोविज्ञान को परिलक्षित करते हैं । राम द्वारा करूण क्रन्दन करने पर वासन्ती स्वयं ही सोचती है - "अतिगभीरमापूर्णं मन्युभारस्य"[1] अर्थात बहुत ही गम्भीर ढंग से रोष के बोझ को उतारकर रखा गया है । सीता का राम की व्यथित अवस्था को देखकर स्वगत कथन उनके स्त्री सुलभ लज्जा शीलता को दर्शाता है । वे कहती है- "अवशैनैतेनात्मा लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया । किमिति किलैषां मंस्यत एष परित्याग एषोऽभिषङ्ग इति "[2]। अर्थात् बेकाबू हो उठी हुई इस आत्मा के कारण भगवती तमसा ने शरमवा दिया है । आखिर वे क्या सोच रही होंगी कि -"यह परित्याग और यह आसक्ति" ।

चतुर्थ अंक में अरून्धती के स्वगत कथन से यह विदित हो जाता है कि अरून्धती को लव और कुश का जन्म विदित है - अरून्धती (स्वगतं सहर्षोत्कण्ठम्) " इदं नाम भागीरथीनिवेदितं रहस्यकर्णामृतम । न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति "[3] अर्थात् यह तो गङ्गा जी के द्वारा बताई गई हुई गुप्त श्रुतिसुधा है । लेकिन यह नहीं जानती कि यह चिरंजीवी कुश और लव में से कौन है ।

षष्ठ अंक में लव अपने प्रति राम का अकारण प्रेम देखकर सोचता है - "लवः-(स्वगतम्)- ईदृशो मां प्रत्यमीषा-मकारणस्नेहः । मया पुनरेभ्य एवाभिद्रोग्धुमज्ञेनाऽयुधपरिग्रहः कृतः "[4]। अर्थात् मेरे प्रति इनका ऐसा अकारण प्रेम है । इनसे ही द्रोह करने के लिए मुझ अन्जान ने अस्त्र ग्रहण किया था ।

सप्तम अंक में सीता का स्वगत कथन राम के प्रति प्रेम प्रकट करता

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 180
2- उत्तररामचरितम् - पृ0 194
3- उत्तररामचरितम् - पृ0 235
4- उत्तररामचरितम् - पृ0 305

हुआ सीता के मनोगत विचारों से परिचित कराता है - "सीता ¤स्वगतम¤ अपि जानात्यार्यपुत्रः सीतायाः दुःखं परिमार्ष्टुम्[1] अर्थात् क्या आर्य पुत्र सीता के दुःख को दूर करना भी जानते हैं ।

कुन्दमाला में भी अधिकांश कथोपकथन सर्वश्राव्य ही है । नियतश्राव्य कथनों में केवल एक स्थल पर जनान्तिक का प्रयोग किया है । राम लव और कुश की माता का नाम जानने की इच्छा करते हैं किन्तु किसी स्त्री के सम्बन्ध में पूछना उचित न समझकर विदूषक जनान्तिक द्वारा पूछता है कि - ब्राह्मणों की बात को कोई अनुचित नहीं मानता तो मैं पूछता हूँ कि तुम दोनों की माता का क्या नाम[2] है ।

कुन्दमाला में लगभग बारह बार स्वगत का प्रयोग हुआ है । प्रथम अंक में कवि ने लक्ष्मण के चरित्र को उत्कृष्ट बनाने के लिए स्वगत का प्रयोग किया है । लक्ष्मण को राम की आज्ञा सर्वोपरि है इसलिए लक्ष्मण सीता को वन छोड़ने के लिए ले जा रहे[3] हैं ।

द्वितीय अंक में वेदवती मन ही मन विचार करती है कि सीता के मन में अब भी राम के प्रति अत्यधिक प्रेम है - " वेदवती ¤आत्मगतम्¤ अहो अस्या दृढ़ाऽनुरागता[4]" ।

चतुर्थ अंक में विदूषक द्वारा किसी स्त्री का कथन करने पर राम स्वगत ही विचार करते हैं कि - दैवगणिका - संबद्धैषा कथा न कश्चिद् दोषस्त तद् आकर्णि[5] " । अर्थात् यह कथा तो गणिका से सम्बन्धित है । इसके

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 358
2- कुन्दमाला - 221
3- कुन्दमाला पृ0 10
4- कुन्दमाला - पृ0 72
5- कुन्दमाला - पृ0 164

सुनने में कोई दोष नहीं है ।

पंचम अंक में राम का बाल मित्र होने के कारण विदूषक का स्वगत कथन बहुत ही मनोवैज्ञानिक प्रतीत होता है । वह सीता की स्मृतियों के बोझ से व्यथित राम के मनोभावों को समझता है तथा उन्हें सान्त्वना देता है ।[1]

संस्कृत नाटकों में स्वगत कथनों के प्रयोग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है किन्तु स्वगत कथनों का जैसा वैविध्य और प्रभाव वैचित्र्य पाश्चात्य नाटकों में मिलता है वैसा भारतीय नाट्य परम्परा में नहीं दिखता । मानव मन की गहराई को छूने, मानसिक अन्तर्द्वन्द को प्रकट करने एवं जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने में स्वगत कथन बड़े सहायक हैं ।

उत्तररामचरितम् में लगभग सत्रह बार तथा कुन्दमाला में लगभग बारह बार स्वगत कथनों का प्रयोग हुआ है । दोनों ही नाटकों के स्वगत कथन अत्यन्त भावपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक है । उत्तररामचरितम् में अपवारित तथा कुन्दमाला में जनान्तिक का प्रयोग हुआ है ।

यदि किसी पात्र को रंगमंच पर उपस्थित करना अनिवार्य न हो तो "आकाशभाषित" से काम चलाया जा सकता है जिसमें मंच पर उपस्थित कोई पात्र किसी अन्य पात्र की उक्ति को सुनता हुआ सा प्रतीत होता है, उसकी उक्ति को दोहराता है, और फिर उसका उत्तर देता है । दशरूपककार के अनुसार जहाँ कोई पात्र "क्या कहते हो" इस तरह कहता हुआ दूसरे पात्र के बिना बातचीत करें तथा उसके कथन के बिना सुने ही उत्तर दे वह "आकाशभाषित" कहलाता है ।[2]

1- कुन्दमाला - पृ० 179

2- दशरूपकम् - 1/67

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ।।

उत्तररामचरितम् नाटक में आकाशभाषित का प्रयोग नहीं हुआ है । कुन्दमाला नाटक में भी इसका आभाव है परन्तु एक स्थल पर इसकी झलक मिलती है । जिसको हम आकाशभाषित कह सकते हैं । षष्ठ अंक में आकाश से पुष्पवर्षा और गाने बजाने का चित्रण किया गया है ।

सम्पूर्ण इतिवृत्त को नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने पाँच अर्थप्रकृतियों,[1] पाँच अवस्थाओं[2] तथा पाँच सन्धियों[3] में बाँटा है । नाटकीय कथानक के विकास की ~~विकास की~~ विभिन्न स्थितियां ही अर्थप्रकृतियां और पंच अवस्थायें हैं । इनमें से पाँच अर्थप्रकृतियां कथावस्तु के विकास की विभिन्न दशाओं को प्रदर्शित करती हैं । जो कि विभिन्न घटनाओं और कथासूत्रों के माध्यम से प्रकट होती हैं । पंच अवस्थायें प्रयोजन प्राप्ति की चेष्टा या प्रक्रिया की विभिन्न स्थितियां होती हैं । इन दोनों के सम्मिश्रण से पंच सन्धियों का निर्माण होता है । यह सन्धियां जहां एक ओर आधिकारिक कथा के प्रमुख विकास को प्रदर्शित करती हैं, वहीं दूसरी ओर आधिकारिक या मुख्य कथा के नायक द्वारा अपने लक्ष्य या फल की प्राप्ति के लिए किये जाते हुए प्रयत्नों अथवा संघर्ष की क्रमिक स्थितियों का बोध कराती हैं ।

<u>अर्थप्रकृतियां</u> - दशरूपककार के अनुसार बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पाँच अर्थप्रकृतियां हैं । इनके पश्चात्वर्ती रामचन्द्र - गुणचन्द्र तथा विश्वनाथ आदि ने भी ये ही पाँच अर्थप्रकृतियां बताई हैं । बीज, बिन्दु तथा कार्य यह तीन आवश्यक अर्थप्रकृतियां मानी गयी है । किसी भी रूपक में इनका होना आवश्यक है । पताका एवं प्रकरी का सभी रूपकों में होना आवश्यक नहीं है ।

1- (क) दशरूपकम् - 1/18 बीजबिन्दु पताकाख्यप्रकरीकार्य लक्षणाः ।
अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः ॥

(ख) साहित्यदर्पण -6/65

2- (क) दशरूपकम् - 1/19 अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशा नियताप्ति फलागमः ।।

(ख) साहित्यदर्पण - 6/70

3- (क) दशरूपकम् - 1/22 अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः ।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंच सन्ध्यः ।।

(ख) साहित्यदर्पण - 6/74

बीज – रूपक के आरम्भ में अल्परूप में संकेतित वह तत्त्व जो रूपक के फल का कारण है तथा इतिवृत्त में अनेक रूपों में पल्लवित होता है बीज कहलाता[1] है ।

बिन्दु – एक कथांश के समाप्त होने पर इतिवृत्त को जोड़ने और आगे बढ़ाने के लिए जो कारण होता है, वही बिन्दु कहलाता[2] है । जिसप्रकार जल में तैल की बूंद फैल जाती है उसी तैल बिन्दु के समान बीज के इतिवृत्त में फैल जाने के कारण ही इसे बिन्दु कहते हैं ।

पताका – जो कथा प्रधान इतिवृत्त के साथ रूपक में दूर तक चलती है वह पताका कहलाती[3] है ।

प्रकरी – जो कथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है वह प्रकरी कहलाती[4] है ।

कार्य – धर्म अर्थ और काम इतिवृत्त का फल होता है । फल कभी धर्म रूप, कभी धर्म अर्थ रूप और कभी धर्म अर्थ और काम रूप होता[5] है । भरतमुनि के अनुसार आधिकारिक वस्तु के हेतु जो प्रारम्भ किया जाए उसी को कार्य कहते[6] हैं ।

उत्तररामचरितम् में पाँचों अर्थप्रकृतियों का तथा कुन्दमाला में बीज, बिन्दु और कार्य यह तीन ही अर्थप्रकृतियों का वर्णन है ।

1- दशरूपकम् - 1/17

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा ।

2- [क] दशरूपकम् - 1/17 - अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्

[ख] ना० शा० 19/24

3, 4- दशरूपकम् - 1/13 सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ।

5- दशरूपकम् - 1/16 कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ।

6- ना० शा० 19/27 यदाधिकारिकं वृत्तं सम्यकप्राज्ञैः प्रयुज्यते ।

तदर्थो यः समारम्भस्तत्कार्यं परिकीर्तितम् ।।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में पंच अर्थप्रकृतियाँ -

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक के आरम्भ में सीता विषयक लोकापवाद को सुनकर नट कहता है कि - "सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति "[1] अर्थात् ऋषिगण तथा देवतागण सब प्रकार से कल्याण करेंगें । प्रथम अंक में राम और सीता के परस्पर अनुराग और दुर्मुख के प्रवेश होने से ही उनका विच्छेद होना प्रकट होता है । किन्तु नट के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्त में सब सुखद होगा । सीता को दिया गया वसिष्ठ का आशीर्वाद -"वीर प्रसवा भूया:" भी भविष्य के अन्धकार में आशा की किरण बन जाता है । वे सीता को सदा सुखी रहने का आशीर्वाद भी दे सकते थे किन्तु नाटककार को यह अभीष्ट नहीं था । अत: नाटककार ने नट के कथन में तथा वसिष्ठ के संदेश में "बीज" नामक अर्थप्रकृति का वपन कर दिया है ।

जिसप्रकार छोटा सा बीज बढ़ कर अङ्कुरित ,पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है, उसी प्रकार यह नाटक का बीज भी कथा विस्तार के साथ पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है ।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में सीता परित्याग का आदेश दे देने के पश्चात् राम भगवती तथा वसुन्धरा से सीता की सब प्रकार से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं । भगवती तथा वसुन्धरा ने इसी प्रार्थना का ध्यान रखते हुए सप्तम अंक तक सीता की देखभाल की है । द्वितीय अंक में शम्बूक वृत्तान्त से मूलकथा में विच्छेद हो जाता है किन्तु इसी घटना का आश्रय लेकर नाटककार ने तृतीय अंक में राम को पंचवटी में पहुंचाकर कथा को श्रृंखलाबद्ध कर दिया है । चूंकि नाटककार का उद्देश्य राम का सीता से मिलन कराना है अत: राम को पंचवटी में लाकर सीता की पूर्व स्मृतियों का स्मरण करा दिया है । धनंजय ने

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 - 17

अपनी टीका में लिखा है कि जिसप्रकार से तैल बिन्दु जल पर फैल जाता है उसी प्रकार बीज नामक अर्थप्रकृति इतिवृत्त में फैल जाने पर बिन्दु कहलाती है । प्रथम अंक में जहाँ सीता का परित्याग हुआ है वहाँ यद्यपि वसिष्ठ के आशीष और नट की उक्ति के माध्यम से भविष्य में होने वाले सीता और श्री राम के मिलन का संकेत तो मिलता है तथापि इसकी कोई स्पष्ट सम्भावना नहीं दिखलाई देती । तृतीय अंक में मिलन का वही संकेत स्पष्ट सम्भावना का रूप ले कथानक में प्रकट हो जाता है । राम का उस स्थान पर पहुँच जाना जहाँ सीता निवास कर रही है मिलन की परिस्थितियों का कारक बन जाता है । इसलिए इस स्थान पर "बिन्दु" नामक अर्थप्रकृति है ।

उत्तररामचरितम् में लव के प्रसंग को "पताका" कह सकते हैं क्योंकि पंचम अंक से प्रारम्भ होकर अन्त तक चलने वाला लव का प्रसंग राम का सीता के साथ मिलन कराने में सहायक सिद्ध होता है ।

शम्बूक वृत्तान्त को "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृति माना जा सकता है क्यों कि यह द्वितीय अंक के मध्य से लेकर द्वितीय अंक के अन्त में समाप्त हो जाती है । कथावस्तु के एक देश मात्र में सीमित होने के कारण प्रकरी माना जा सकता है । साथ ही आधिकारिक कथावस्तु को आगे भी बढ़ाती है और उसका एक अभिन्न अंग है । शम्बूक श्री राम के हाथों मृत्यु प्राप्त करने के पश्चात् दिव्य देह धारण कर ऋषि अगस्त्य के आदेश से श्री राम को पंचवटी पहुँचाता है और इस प्रकार मुख्य कथा नायक की प्राप्ति में सहायक होता है । अतः आधिकारिक कथा के एक देश में वर्तमान होने से, उसे गति देने से कथा प्रकारान्तर श्री राम की लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होने से शम्बूक वृत्तान्त "प्रकरी" कोटि में रक्खा जाने योग्य है । अतः द्वितीय अंक के मध्य से लेकर अन्त तक "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृति है ।

उत्तररामचरितम् के सप्तम अंक में महर्षि वाल्मीकि ने गर्भांक नाटक

के अभिनय द्वारा तथा अरून्धती ने सीता के चरित्र की पवित्रता के विभिन्न प्रमाणों के द्वारा इस मिलन रूप "कार्य" का सम्पादन किया है । इस नाटक में धर्म रूप कार्य है । अर्थ या काम का अथवा दोनों के अनुबन्ध का सर्वथा अभाव है । कुश और लव सहित सीता से राम का पुनर्मिलन ही "कार्य" है । इसी स्थान पर कार्य नामक पांचवी अर्थप्रकृति है ।

उत्तररामचरितम् के पश्चात् कुन्दमाला में पंच अर्थप्रकृतियों का वर्णन करेंगें ।

कुन्दमाला के आरम्भ में राम सीता को वन छोड़ने के लिए लक्ष्मण को आदेश देते हैं । लक्ष्मण के चले जाने के पश्चात् वाल्मीकि परित्यक्त सीता को आश्रय देते हैं तथा आशीर्वाद देते हैं - "वीर-प्रसवा भव भर्तुश्च पुनर् दर्शनम् आप्नुहि " अर्थात् वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो तथा पुनः पति के दर्शन को प्राप्त करो । वाल्मीकि के इस कथन से भविष्य में राम और सीता के मिलन की सम्भावना दिखाई देती है किन्तु राम और सीता इस सम्भावना से अनभिज्ञ हैं क्यों कि सीता परित्याग के पश्चात् राम ग्लानि का अनुभव कर रहे हैं और सीता असह्य वेदना तथा आक्रोश से सन्तप्त हैं । इसलिए वाल्मीकि का यह कथन ही बीज नामक अर्थप्रकृति है । इस स्थिति में मिलन की कोई सम्भावना दृष्टिगोचर न होते हुए भी वाल्मीकि के आशीर्वाद से उपलक्षित मिलन की बात ही "बीज" नामक अर्थप्रकृति है ।

कुन्दमाला के तृतीय अंक में सीता परित्याग से सन्तप्त राम तथा लक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम को खोजते हुए जा रहें हैं । वहीं गोमती नदी के किनारे कुन्द पुष्पों की माला देखकर राम यह निश्चय नहीं कर पाते हैं कि यह माला सीता द्वारा ही निर्मित हैं तथा आगे किसी स्त्री के पदचिह्नों को देखकर उन चिह्नों को सीता के पदचिह्न ही मानकर उनका अनुसरण करते हुए वे दोनों वाल्मीकि के आश्रम तक तथा सीता तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं । यहीं बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है । प्रथम अंक में परित्यक्त सीता को आश्रय देने

के पश्चात् वाल्मीकि सीता को आशीर्वाद देते हैं । यद्यपि वाल्मीकि के आशीष से श्री राम और सीता के मिलन की सम्भावना दिखाई देती है किन्तु कोई स्पष्ट संकेत न दिखाई देने के कारण आशङ्का ही बनी रहती है । जब वाल्मीकि का आश्रम खोजते हुए राम तथा लक्ष्मण कुन्दमाला को तथा स्त्री के पैरों के चिह्न को देखकर सीता तक पहुंचने का प्रयत्न करते हैं, तब दोनों के मिलन की कुछ सम्भावनाएं जागृत होती हैं । इसीलिए इस स्थान पर "बिन्दु" नामक अर्थप्रकृति है ।

कुन्दमाला में "पताका" तथा "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृतियों का सर्वथा अभाव है ।

कुन्दमाला नाटक में भी धर्म रूप कार्य है । नाटक के षष्ठ अंक में पृथ्वी दिव्य रूप में आकर सीता को निर्दोष सिद्ध करती है तथा प्रजागण भी उनका समर्थन करते हैं । अन्त में कुश और लव के साथ राम का सीता से पुनर्मिलन होता है । यही "कार्य" नामक अर्थप्रकृति है ।

दोनों ही नाटकों में अर्थप्रकृतियों का सार्थक प्रयोग हुआ है । उत्तररामचरितम् में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य इन पाँचों अर्थप्रकृतियों का वर्णन हुआ है, जबकि कुन्दमाला में केवल बीज, बिन्दु, तथा कार्य नामक अर्थप्रकृतियों का ही वर्णन हुआ है ।

<u>अवस्थायें</u> - पंच अवस्थायें नायक की मनोदशा का चित्रण करती हैं । भारतीय नाटकों का अवसान सुखात्मक ही होता है इसलिए उसका नायक भी संघर्षों का सामना करता हुआ अन्त में एक निश्चित फल को प्राप्त करता है । इसी के आधार पर आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम नामक पाँच अवस्थाओं की योजना प्रायः सभी नाटकों में प्राप्त होती है । पंच अवस्थायें लक्ष्य प्राप्ति की दृष्टि से कथा का विभाजन हैं ।

<u>आरम्भ</u> - किसी भी फल प्राप्ति के लिए उत्सुकता का होना आरम्भ कहलाता

है । यह आरम्भ किसी के द्वारा किया जा सकता है[1] । फलप्राप्ति मुख्य नायक की ही होती है ।

यत्न - अप्राप्त फल को प्राप्त करने के लिए तीव्रता के साथ जो उपाय या चेष्टा होती है वह "यत्न" कहलाती है[2] । यह नायक सहनायक किसी के द्वारा कई बार प्रयुक्त किया जा सकता है ।

प्राप्त्याशा - जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशंका के कारण फलप्राप्ति के विषय में कोई एकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता तथा फलप्राप्ति की सम्भावना उपाय और विघ्न दोनों के मध्य दोलायमान रहती है वहाँ "प्राप्त्याशा" नामक अवस्था होती है[3] ।

नियताप्ति- विघ्न के समाप्त हो जाने पर जहाँ फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है वहाँ नियताप्ति नामक अवस्था होती है[4] ।

फलागम - समस्त फल की प्राप्ति होना ही फलयोग या फलागम कहलाता है[5] ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में पंच अवस्थायें -

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में अष्टावक्र राम को वसिष्ठ का संदेश सुनाते हैं कि - तुम अभी बच्चे हो, राज्य नया है, अतः सदा प्रजा के अनुरंजन में लगे रहना इसी से यश मिलता है, जो तुम्हारा परम धन है । इसके उत्तर में राम दृढ़ता पूर्वक कहते हैं कि - " स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि । आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा " । अर्थात्

1- दशरूपकम् - 1/20 - औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे ।
2- दशरूपकम् - 1/20 प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।।
3- दशरूपकम् - 1/21 उपायपाय-शङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः ।
4- क- दशरूपकम् - 1/21 - अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ।
   ख- साहित्यदर्पण - 6/73
5- क- दशरूपकम् - 1/22 - समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः ।।
   ख- साहित्यदर्पण - 6/73

स्नेह, दया, सुख और यदि जानकी को भी प्रजानुरंजन के लिए छोड़ना पड़े तो मुझे कोई कष्ट नहीं होगा । यहीं से भावी आशंका का संकेत मिलता है । अन्त में दुर्मुख द्वारा राम आदेश देते हैं कि - "ब्रूहि लक्ष्मणम् । एष नूतनो राजा राम समाज्ञापयति" यहीं पर "आरम्भ" नामक अवस्था है । यद्यपि वसिष्ठ का सन्देश सर्वथा स्वाभाविक था और न ही वसिष्ठ यह जानते थे कि प्रजानुरंजन के लिए राम को कितना त्याग करना पड़ेगा । इसके उत्तर में राम की उक्ति भी उतनी ही स्वाभाविक है किन्तु यहीं से राजधर्म और पतिधर्म के द्वन्द का आरम्भ होता है । दुर्मुख द्वारा सीता का लोकापवाद सुनकर राम राजधर्म को ही सर्वोपरि मानकर सीता परित्याग का आदेश देते हैं । यहीं से "आरम्भ" नामक अवस्था का प्रारम्भ होता है ।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में राम और सीता का विच्छेद हो जाने के पश्चात् राम द्वितीय अंक में शम्बूक का वध करते हैं । शम्बूक वध
का दर्शन करते हैं । पूर्व दृश्यों
के अनन्तर राम पंचवटी पहुँचकर पूर्व दृश्यों/को देखकर राम के मूर्च्छित हो जाने पर लोपामुद्रा और भागीरथी परोक्ष रूप में तथा वासन्ती और तमसा प्रत्यक्ष रूप में श्री राम की सहायता करती हैं । अदृश्य सीता कर स्पर्श से उनकी तीन बार चेतना वापस लाती हैं । यहाँ पर लोपामुद्रा, भागीरथी, वासन्ती और तमसा अप्रत्यक्ष रूप से राम और सीता का पुनर्मिलन कराने की चेष्टा करती हैं । अतः तृतीय अंक में ही "यत्न" नामक अवस्था है ।

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक में राम पंचवटी आदि दृश्यों को देखकर बार बार मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता छाया रूप में अपने हस्त स्पर्श से उनकी चेतना वापस लाती है । राम सीता को बार बार खोजते हैं और कहते हैं कि मेरे जड़ हो गये हुए, काँपते हुए और स्वेदयुक्त हाथ से उसका वह जड़ हो गया हुआ, काँपता हुआ और स्वेदयुक्त करकिसलय अचानक ही छूट गया । इस स्थिति में वासन्ती उन्हें आश्वासन देती है । तदनन्तर राम

कहते हैं कि सीता का पहला वियोग तो शत्रुओं को समाप्त कर देने तक के लिए ही था, परन्तु यह तीक्ष्ण और चुपचाप सह लेने योग्य प्रलय तो अनन्त मालुम पड़ रहा है । सीता भी कहती हैं कि - पहले वाले विरह के सम्बन्ध में तो मुझे पर्याप्त सम्मान दिया गया परन्तु "निरवधि" यह शब्द तो मुझे एकदम मारे डाल रहा है । यहाँ राम फलप्राप्ति के विषय में कोई एकान्तिक निश्चय नहीं कर पा रहे हैं । सीता के पुनर्मिलन के लक्ष्य के विषय में द्विविधापूर्ण स्थिति होने के कारण ही यहाँ प्राप्त्याशा नामक अवस्था है । पंचम अंक में लव के अभिज्ञान के विषय में गुरूजनों के मत में द्विविधापूर्ण स्थिति रहती है जिसमें उपाय तथा अपाय दोनों का सम्मिश्रण है । अतः यहाँ भी "प्राप्त्याशा" नामक अवस्था है ।

उत्तररामचरितम् के सप्तम अंक में गर्भांक नाटक प्रस्तुत किया गया है । गंगा और पृथ्वी लव और कुश के जन्म की कथा सुनाती हैं तथा सीता को निर्दोष सिद्ध करती हैं ।सीता को निर्दोष सिद्ध करके दोनों देवियाँ राम और सीता के मिलन की सम्भावनाओं को प्रबल बनाती हैं । दोनों देवियाँ सीता से कहती हैं कि तुम अपने विश्व मंगल स्वरूप को गर्हित क्यों समझती हो, जिसके संग के कारण हम दोनों की भी पवित्रता उत्कर्ष प्राप्त कर चुकी है । यहाँ पर यह निश्चित हो जाता है कि नायक को सीता प्राप्ति रूप फल अवश्य मिलेगा । अतः इस स्थल पर "नियताप्ति" नामक अवस्था है ।

उत्तररामचरितम् के सप्तम अंक में अरून्धती सीता की निर्दोषता सिद्ध करती हैं । सभी प्रजागण उसका अनुमोदन करते हैं । अन्त में कुश और लव सहित राम का सीता से पुनर्मिलन होता है । यहीं फलागम है ।

अब कुन्दमाला में पंच अवस्थाओं का वर्णन करेंगें ।

कुन्दमाला के प्रथम अंक में वाल्मीकि परित्यक्त सीता को आश्रय देते हैं और आशीर्वाद देते हैं कि -"वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो

तथा पुनः पति के दर्शन को प्राप्त करो "। इस कथन के पश्चात् सीता उत्सुकता पूर्वक भगवती गंगा से प्रार्थना करती हैं कि " सुख पूर्वक सन्तान उत्पन्न हो जाने के पश्चात् मैं प्रतिदिन कुन्द पुष्पों की माला बनाकर अर्पण किया करूँगी । यहाँ सीता का यह कथन भविष्य में होने वाले सुख की ओर संकेत करता है । चूँकि सीता अभी अभी परित्यक्त हुई हैं इसलिए उनके मन में राम से मिलने की सम्भावना जागृत नहीं होती है । सीता का उत्सुकता पूर्वक गंगा जी से प्रार्थना करना ही फल प्राप्ति का प्रथम चरण है । इसी स्थल पर "आरम्भ" नामक अवस्था है ।

कुन्दमाला के तृतीय अंक में राम तथा लक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम को खोजते हुए जा रहे हैं । वहीं गोमती नदी के किनारे एक कुन्द पुष्पों की माला श्री राम के चरणों में आ टकराती है । राम उसकी गूंथने की कला को देखकर कहते हैं कि यह सीता द्वारा निर्मित है किन्तु संसार में प्रायः रचना सादृश्य देखा जाता है । थोड़ा आगे चलने पर किसी स्त्री के चरण-चिह्न दिखाई देते हैं । सीता के समान पद-चिह्नों देखकर राम कहते हैं कि अत्यन्त दूर छोड़ी गई सीता का यहाँ पहुँचना असम्भव है किन्तु उन्हीं पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए राम तथा लक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम और सीता तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं । इसी स्थल पर यत्न नामक दूसरी अवस्था है ।

कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में सीता अपना अधिक समय बावड़ी के निकट अदृश्य रूप में व्यतीत करती हैं । राम बावड़ी के जल से अपनी आँखों को धोने के लिए आते हैं वहीं वह सीता का प्रतिबिम्ब देखते हैं किन्तु बहुत खोजने पर भी सीता को नहीं देख पाते । अतः निराश होकर मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता अपने कर स्पर्श तथा आँचल से हवा करके उनकी चेतना वापस लाती हैं । राम सीता को प्रत्यक्ष रूप में देखना चाहते हैं । अदृश्य सीता से

ही उनका वार्तालाप होता है किन्तु सीता को वह प्रत्यक्ष रूप में नहीं देख पाते हैं । तभी विदूषक आकर तिलोत्तमा की योजना के बारे में बताता है । राम तिलोत्तमा द्वारा अपने को ठगा हुआ समझते हैं किन्तु उन्हें विश्वास नहीं होता कि तिलोत्तमा ऐसा कर सकती है । पंचम अंक में राम को पुनः विश्वास होने लगता है कि वह सीता ही थी । यहाँ राम के मन में सीता के प्रति द्विविधापूर्ण स्थिति होने के कारण प्राप्त्याशा नामक अवस्था है । अतः चतुर्थ अंक के मध्य से लेकर पंचम अंक के प्रारम्भ तक "प्राप्त्याशा" नामक अवस्था है ।

कुन्दमाला के षष्ठ अंक में पृथ्वी दिव्य रूप में प्रकट होकर सीता को पवित्र घोषित करती है । नगाड़े, पुष्प-वर्षा आदि के द्वारा देवतागण भी सीता की शुद्धि का अनुमोदन करते हैं । अन्त में समस्त प्रजा-गण के कथन से फलप्राप्ति की निश्चितता सूचित हो जाती है ।

> या स्वयं प्रकृति - निर्मला सती
> छाद्यतेऽन्य - जनवाद - वारिदैः
> जानकी भगवति त्वयाऽद्य सा
> चन्द्रिकेव शरदा विशोधिता ।। 6/37

अर्थात् जिस प्रकार बादलों से आच्छादित चाँदनी शरद ऋतु के द्वारा साफ कर दी जाती है, उसी प्रकार स्वयं स्वभाव से पवित्र सीता को जो लोकनिन्दा रूपी मेघों से ढ़क गईं थीं उसे आपने शुद्ध कर दिया है । यहाँ पर प्रजा के इसप्रकार कहने पर फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है तथा सन्देह का कोई अवकाश नहीं रह जाता है । अतः यहाँ "नियताप्ति" नामक अवस्था है ।

कुन्दमाला के षष्ठ अंक में पृथ्वी, देवतागण, तथा प्रजागण सीता की शुद्धता प्रमाणित करके राम और सीता के मिलन मार्ग को प्रबल बनाते हैं । अन्त में वाल्मीकि जी के कहने पर राम कुश और लव के साथ सीता को

ग्रहण करते हैं । विशुद्धता सीता से राम का पुनर्मिलन ही "फलागम" नामक अन्तिम अवस्था है ।

इस प्रकार दोनों ही नाटकों में पाँचों अवस्थाओं का चित्रण सम्यक् रूपेण हुआ है ।

सन्धियाँ = बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पाँच अर्थ-प्रकृतियाँ जब क्रम से अवस्था, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम इन पाँच अवस्थाओं से मिलती हैं तो क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा उपसंहृति इन पाँच सन्धियों की रचना होती है । ये सन्धियाँ अवस्थाओं एवं अर्थप्रकृतियों के ही सन्धि स्थलों पर उपलब्ध होती हैं । उपसंहृति को निर्वहण सन्धि भी कहते हैं ।

मुखसन्धि = मुख सन्धि में बीज की सूचना दी जाती है यह बीज विभिन्न रसों को उत्पन्न करता है[1] । इस सन्धि में बीज नामक अर्थप्रकृति और आरम्भ नामक अवस्था के सम्मिलन से बारह भेद होते हैं[2] ।

प्रतिमुख सन्धि = मुख सन्धि का बीज प्रतिमुख सन्धि में आकर फूटने लगता है ।

1- दशरूपकम् - 1/24

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।
अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।।

2- क- दशरूपकम् - 1/25, 26

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ।।
युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना ।
उद्भेदभेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम् ।।

ख- ना०शा०19/55,56 (ग) साहित्यदर्पण - 6/81, 82

इस बीज का कुछ दिखाई देना और कुछ अदृश्य रहना ही प्रतिमुख सन्धि का स्थल होता है[1]। इस सन्धि में बिन्दु नामक अर्थप्रकृति तथा प्रयत्न नामक अवस्था का मिश्रण होता है। इसके तेरह अंग होते हैं[2]।

गर्भसन्धि = जब बीज के दिखने के बाद फिर से नष्ट हो जाने पर उसका अन्वेषण बार बार किया जाता है तो गर्भ सन्धि होती है। इसमें वैसे तो पताका नामक अर्थप्रकृति तथा प्राप्त्याशा अवस्था का संयोग पाया जाता है किन्तु पताका का होना अनिवार्य नहीं है वह हो भी सकती है और नहीं भी किन्तु प्राप्त्याशा नामक अवस्था का होना आवश्यक है[3]। यह बारह अंगों वाली होती है[4]।

विमर्श सन्धि = जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा लोभपूर्वक फलप्राप्ति के विषय में विचार किया जाय और गर्भ सन्धि की अवस्था में संदिग्ध हुए बीज को पुनः

1- दशरूपकम् - 1/30

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ॥

2- दशरूपकम् - 1/31

विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी
नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पर्युपासनम् ॥
वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि।

3- दशरूपकम् - 1/36

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः ॥

4- दशरूपकम् - 1/37 अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः।
संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा ॥
उद्वेगसंभ्रमाक्षेपा लक्षणं च प्रणीयते।

प्रकट कर दिया जाए वहाँ अवमर्श सन्धि होती है । इसके तेरह अंग होते हैं[2] ।

निर्वहण सन्धि - रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जो अब तक इधर उधर बिखरे पड़े हैं, जब एक प्रयोजन के लिए एक साथ समेट दिये जाते हैं तब निर्वहण सन्धि होती[3] है । इसमें फलागम नामक अवस्था का कार्य नामक अर्थप्रकृति के साथ समन्वय होता है । इसके चौदह अंग होते[4] हैं ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में पंच सन्धियाँ -

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक से ही मुख सन्धि आरम्भ होती है । चित्रदर्शन के पश्चात् राम कहते हैं - " यदि परम सह्यस्तु विरह: " अर्थात् एक ही अत्यन्त असह्य वस्तु है - विरह । तदनन्तर दुर्मुख का प्रवेश होता है, जिसके कारण विरह का बीज वपन हुआ है । दुर्मुख के वाग्वज्र को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं । मूर्च्छित होना स्वाभाविक है किन्तु चेतना वापस आने पर तुरन्त अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेते हैं । राम के इस निर्णय में पिता का आदर्श तथा गुरू का आदेश अनजाने ही प्रेरक तत्त्व बन जाते हैं और दुर्मुख से कहते हैं - लक्ष्मण से कहो, " यह नया राजा राम

1- दशरूपकम् - 1/43 क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थ: सोऽवमर्श इति स्मृत: ।।

2- दशरूपकम् - 1/44 तत्रापवादसंफेटौ विद्रवद्रवशक्तय:
द्युति: प्रसंगश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् ।।
प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश ।

3- दशरूपकम् 1/48
बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।

4- दशरूपकम् - 1/49,50
सन्धिर्विबोधो ग्रथनं निर्णय: परिभाषणम् ।।
प्रसादानन्दसमया: कृतिभाषोपगूहना: ।
पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश ।।

आज्ञा देता है " । राम के आदेश से दुर्मुख चला जाता है । सीता के भविष्य की कल्पना कर राम रो पड़ते हैं और कहते हैं -" कि इस प्रियतमा को छल के द्वारा मृत्यु के हाथों में दिये दे रहा हूं " । तदनन्तर सीता रथ पर आरूढ़ होकर चली जाती है । सीता प्रसन्नतापूर्वक रघुकुल के देवताओं को प्रणाम कर प्रस्थान करती हैं, परन्तु दर्शकों का समुदाय जो यह जानता है कि वे कहां जा रही हैं और किस स्थिति में जा रही हैं, उनकी इस प्रसन्नता को देखकर मन ही मन रो पड़ता है । यहीं प्रथम अंक समाप्त होता है । सम्पूर्ण प्रथम अंक में ही "मुख सन्धि" है ।

उत्तररामचरितम् के द्वितीय तथा तृतीय अंकों में प्रतिमुख सन्धि व्याप्त है । द्वितीय अंक में शम्बूक के वृत्तान्त से मूलकथा में विच्छेद हो जाता है किन्तु प्रस्रवण गिरि, गोदावरी नदी, जनस्थान, पंचवटी आदि को देखकर राम के हृदय में सीता के विरह की वेदना तीव्र हो जाती है । दण्डकारण्य जनस्थान और पंचवटी के उन्हीं स्थलों के वर्णन पर कवि ने बल दिया है जो सीता के सहवास के कारण राम को अधिक प्रिय रहे हैं । उन परिचित स्थानों को देखकर राम के हृदय में सीता के विरह की वेदना तीव्र हो उठना स्वाभाविक है । तृतीय अंक में सीता अप्रत्यक्ष रूप में पंचवटी में आकर शोकाकुल अवस्था में राम के मूच्छित हो जाने पर अपने कर स्पर्श से उनकी चेतना वापस लाती हैं । लोपामुद्रा तथा भागीरथी परोक्ष रूप में तथा वासन्ती और तमसा प्रत्यक्ष रूप में राम तथा सीता की सहायता करती हैं । इस प्रकार द्वितीय अंक के आरम्भ से लेकर तृतीय अंक के अंत तक "प्रतिमुख" सन्धि है ।

उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक में विष्कम्भक द्वारा यह विदित होता है कि जनक, अरून्धती, तथा राजमाताएं वाल्मीकि आश्रम में पहुंच गये हैं । आश्रम के बालक खेलते हुए उधर ही जाते हैं जिधर गुरूजन बैठे हैं । बालकों के मध्य लव को देखकर गुरूजनों के मन में वात्सल्य के भाव जागृत होते

हैं । वे उसकी वाणी में राम का सादृश्य तथा सीता की समानता पाकर गदगद् हो जाते हैं । उसे अपने पास बुलाते हैं तथा उससे परिचय पूछे जाने पर इतना ही विदित होता है कि वह अपने माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता । अपने बड़े भाई कुश के साथ वह महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहता है । गुरूजन कोई संतोषजनक उत्तर न पाकर दु:खित होते हैं । पंचम अंक में भी युद्ध विराम के पश्चात् लव और चन्द्रकेतु के मध्य सहज आकर्षण प्रस्फुटित होता है जिसका कारण वे दोनों ही नहीं समझ पाते । दोनों के मन में एक दूसरे को आलिंगन करने की भी इच्छा होती है किन्तु वीरों का कर्तव्य स्नेह को दबा देता है । यहाँ पर गुरूजनों के मन में लव को देखकर यह विचार आता है कि लव राम और सीता का पुत्र होगा किन्तु लव से कोई संतोषजनक उत्तर न पाकर निराश होते हैं । इसीलिए यहाँ गर्भ सन्धि है । चतुर्थ अंक के आरम्भ से लेकर पंचम अंक के मध्य तक "गर्भ सन्धि" है ।

उत्तररामचरितम् के पंचम अंक में लव के प्रति चन्द्रकेतु का प्रश्न "क्या तुम्हें हमारे तात के प्रताप का उत्कर्ष अच्छा नहीं लगता " ।से ही अवमर्श सन्धि का प्रारम्भ होता है । लव के मन में राम के प्रति आदर तो है किन्तु वह यह मानने को तैयार नहीं है कि वीरता केवल उन्हीं तक सीमित है । दोनों का ही क्रोध प्रकट होता है और द्वन्द युद्ध होता है । युद्ध समाप्त हो जाने पर चन्द्रकेतु राम को अपने मित्र लव का तदनन्तर लव कुश का परिचय देता है । इन दोनों को देखकर राम के मन में बहुत से विचार उत्पन्न होते हैं जो इन्हें सीता का पुत्र मानने पर विवश करते हैं । गर्भ सन्धि में जो सम्भावना गुरूजनों के मन में थी वही सम्भावना राम के मन में भी जागृत होती है किन्तु कोई भी निश्चित स्थिति पर नहीं पहुँच पाता है । पंचम अंक में चन्द्रकेतु की पूर्वोक्त उक्ति से षष्ठ अंक के अंत तक "अवमर्श" सन्धि है ।

उत्तररामचरितम् के सप्तम अंक के आरम्भ में गर्भांक नाटक के रूप में वाल्मीकि की कृति का अभिनय किया जाता है । अरून्धती सभी प्रजा जनों के सामने सीता की चारित्रिक पवित्रता को प्रमाणित करती हैं । अन्त में सभी नागरिकों के अनुमोदन पर राम का सीता, कुश तथा लव से मिलन होता है । इस प्रकार सप्तम अंक के आरम्भ से अन्त तक निर्वहण सन्धि का विस्तार होता है । सप्तम अंक में "निर्वहण "सन्धि है ।

कुन्दमाला के प्रथम अंक में परित्यक्त सीता को वाल्मीकि आशीर्वाद देते हैं कि " वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो तथा पुन: पति के दर्शन प्राप्त करो " । वाल्मीकि के इस आशीर्वाद से भविष्य में राम और सीता के मिलन की सम्भावनाएं जागृत होती हैं किन्तु नायक और नायिका भविष्य में होने वाली इस सम्भावना से अनभिज्ञ हैं । यहीं से मुख सन्धि का आरम्भ होता है । सम्पूर्ण प्रथम अंक में मुख सन्धि है ।

कुन्दमाला के तृतीय अंक में राम और लक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम को खोजते हुए जा रहे हैं वहीं गोमती नदी के किनारे एक कुन्दपुष्पों की माला श्री राम के चरणों से टकरा जाती है । कुछ आगे चलने पर सीता के समान किसी स्त्री के चरण-चिह्न दिखाई देते हैं । राम तथा लक्ष्मण उन्हीं पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए आगे जाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु आगे कठोर भूमि के आ जाने से पैरों के निशान लुप्त हो जाते हैं और वे दोनों अत्यन्त निराश होते हैं । पदचिह्न देखने तथा लुप्त हो जाने से पुनर्मिलन के हेतु बीज का कुछ कुछ लक्ष्य और अलक्ष्य रूप में उद्भेद होता है अत: यहां बिन्दु और यत्न नामक अवस्था के संयोग से प्रतिमुख सन्धि है ।

कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में सीता अदृश्य होकर बावड़ी के निकट ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करती हैं । उसी समय श्री राम भी धूंए से

परिप्लुत आँखे धोने बावड़ी के समीप आते हैं। नेत्रों को धोने के लिए जैसे ही झुकते हैं, उन्हें सीता का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है किन्तु अत्यन्त प्रयास करने पर भी सीता नहीं दिखाई देती हैं। राम सीता के दर्शन से विह्वल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता अपने कर-स्पर्श से तथा आँचल से हवा करके उनकी चेतना वापस लाती हैं। राम का वार्तालाप भी अदृश्य सीता से ही होता है किन्तु राम सीता को प्रत्यक्ष रूप में नहीं देख पाते हैं। तभी विदूषक वेदवती के मुख से तिलोत्तमा वृत्तान्त को सुनकर राम को तुरन्त खोजता हुआ आता है कि कहीं तिलोत्तमा राम को सीता का रूप धारण कर ठगने में सफल न हो जाये। राम इस वृत्तान्त को सुनकर अपने को तिलोत्तमा द्वारा ठगा हुआ समझते हैं, किन्तु पंचम अंक में यह घटना उनके मन: मस्तिष्क में पुन: घूमने लगती है। बहुत विचार करने पर उन्हें यह फिर विश्वास होने लगता है कि वह सीता ही थी। सीता का प्रतिबिम्ब दिखाई देने पर राम को यह विश्वास होने लगता है कि वह सीता ही है किन्तु तिलोत्तमा योजना के बारे में पता चलने पर वह विश्वास समाप्त हो जाता है। पंचम अंक में राम पुन: अन्वेषण करते हैं कि वह सीता ही थी। अत: चतुर्थ अंक से लेकर पंचम अंक के प्रारम्भ तक गर्भसन्धि है।

कुन्दमाला के षष्ठ अंक में राम के दु:ख तथा वाल्मीकि के क्रोध से विमर्श सन्धि का स्वरूप स्पष्ट होता है। वाल्मीकि राम पर क्रोध करके सीता को अपनी शुद्धता का प्रमाण देने के लिए कहते हैं। सीता अपनी शुद्धता का प्रमाण देने के लिए पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं। पृथ्वी दिव्य रूप में आकर सीता को निष्कलंक कहकर अन्तर्धान हो जाती हैं। तदनन्तर वाल्मीकि राम से सीता को आदर पूर्वक ग्रहण करने के लिए कहते हैं। इस स्थल पर सीता से समागम का रूप जो गर्भ सन्धि की अवस्था में अस्पष्ट और असन्दिग्ध हो गया था पुन: प्रकट हो जाता है। इसी कारण यह

विमर्श सन्धि का स्थल है । अतः षष्ठ अंक के आरम्भ में विमर्श सन्धि है ।

कुन्दमाला के षष्ठ अंक में सीता पृथ्वी से शुद्धता का प्रमाण देने की प्रार्थना करती हैं । पृथ्वी दिव्य रूप में प्रकट होकर सीता को निष्कलंक कहकर अन्तर्धान हो जाती हैं । अन्त में प्रजा-गण की स्वीकृति से राम का सीता, लव तथा कुश से मिलन होता है । इस प्रकार षष्ठ अंक के अन्त में निर्वहण सन्धि है ।

इस प्रकार उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला दोनों नाटकों में शास्त्रीय परम्परा के अनुसार ही पंच अर्थप्रकृतियां, पंच अवस्थाएं तथा पंच सन्धियां प्रयुक्त हुई हैं ।

नाटकीय कथावस्तु में अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं एवं सन्धियों वाले ये स्थल बड़े सटीक एवं सप्रसंग होते हैं । इस पंचकत्रय के प्रयोग को कुछ विद्वान अनिवार्य मानते हैं और कुछ अनावश्यक मानते हैं । कथावस्तु के इस विभाजन के विषय में डा० ए०बी०कीथ का मत है कि " जहां तक सन्धियों का प्रश्न है, उनका विभाजन इसलिए ठीक है कि इनमें नाटकीय संघर्ष पर जोर दिया गया है, किस प्रकार नायक विघ्नों पर विजय प्राप्त करके फलप्राप्ति की ओर बढ़ता है यह स्पष्ट करना इस विभाजन का लक्ष्य है किन्तु अर्थप्रकृति की कल्पना व्यर्थ की जान पड़ती है । सन्धियों की कल्पना कर लेने के बाद अर्थप्रकृतियों व पांचों अवस्थाओं से क्रम से मेल मिलाने की योजना दोष-पूर्ण है"।[1]

पांचों सन्धियां कथावस्तु में आवश्यक है, विशेषकर नाटक की कथावस्तु में क्यों कि उसे " पंच-सन्धिसमन्वित" होना चाहिए । यह बात दूसरी है कि कई रूपक ऐसे हैं जिनमें पांचों सन्धियां न होकर चार या तीन ही सन्धियां पायी जाती हैं ।

1- संस्कृत ड्रामा - ए०बी०कीथ पृ० 299

इन दोनों नाटकों में अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं और सन्धियों का विनियोग भली भाँति हुआ है ।

प्राय: सभी भारतीय नाटकों का इतिवृत्त सुखान्त प्रकृति का होता है । भारतीय नाटकों की सुखान्त प्रकृति के मूल में भारतीय संस्कृति एवं दर्शन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । जिनमें आनन्द को ही जीवन का लक्ष्य स्वीकार किया गया है । भारतीय संस्कृति की विशेषता है - विषमता में समानता, अनेकता में एकता के दर्शन कराना । इसी तथ्य पर अवलम्बित हमारा दर्शन जीवन के समस्त उतार-चढ़ाव की अन्तिम परिणति सुखात्मक ही स्वीकार करता है । यही कारण है कि संस्कृत के नाटकों में मात्र सुखात्मक और एकांकी भावों का ही चित्रण नहीं होता अपितु सुख-दुःख, हर्ष- विषाद, जय - पराजय, यश -अपयश आदि विरोधी और द्वन्द्वात्मक स्थितियों का भी वास्तविक चित्रण उपलब्ध होता है । भरतमुनि ने नाटक को तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन कहा है -

त्रैलोक्य स्वास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्[1] ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला का भी इतिवृत्त सुख-दुःख आदि अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव से युक्त होते हुए अन्त में सुखात्मक स्थिति में ही समाप्त होता है ।

नाटक में समय और परिस्थितियों के क्रम को स्पष्ट एवं सुनिश्चित करने के लिए अंकों की योजना होती है । जिनके अन्तर्गत रसानुकूल शैली में इतिवृत्त को विकसित करने वाली घटनाओं का रोचक और नाटकीय शैली में संगुम्फन किया जाता है । नाट्याचार्यों ने नाटक में अंकों की संख्या पाँच से दस तक निर्धारित की है । दशरूपककार के अनुसार - " पंचाङ्कमेतदवरं दशांक

1- नाट्यशास्त्रम् - 1/107

नाटकं परम्"[1] । पांच अंकों का नाटक निम्न कोटि का और दस अंकों का नाटक श्रेष्ठ कोटि का होता है । अधिकांश संस्कृत नाटक सप्तांक होते हैं । उत्तररामचरितम् नाटक भी सप्तांक है तथा कुन्दमाला नाटक छः अंकों का है ।

नाटक के मध्य उपस्थित होने वाले विघ्नों की शान्ति के लिए स्तुति के रूप में "नान्दी" का प्रयोग कथावस्तु के आरम्भ में किया जाता है । साहित्यदर्पणकार के अनुसार देवता, ब्राह्मण तथा राजाओं की आशीर्वादयुक्त स्तुति को ही नान्दी कहते हैं[2] । उत्तररामचरितम् का आरम्भ द्वादशपदा - नान्दी से होता है । केवल एक अनुष्टुप छन्द में भवभूति ने वाल्मीकि आदि पूर्व कवियों तथा अमर-वाणी (सरस्वती) को प्रणाम किया है -

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यः, नमोवाकम् प्रशास्महे ।
वन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम् ।।[3]

नाटक के अन्त में प्रशस्ति या कल्याण की आशंसा को "भरतवाक्य" कहते हैं - " प्रशस्तिः शुभशंसनम्[4] " इसका प्रयोग कोई सम्मानित विशेष व्यक्ति ही करता है ।

उत्तररामचरितम् के नायक राम ही भरत वाक्य का पाठ करते हैं-

1- दशरूपकम् - 3/38

2- साहित्यदर्पण - 6/24

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीतिसंज्ञिता ।।

3- उत्तररामचरितम् - 1/1

4- दशरूपकम् - पृ0 93

माता के समान तथा गंगा के समान संसार की मंगलकारिणी तथा रमणीया यह मनोहर प्रसिद्ध रामायण रूप कथा पापों से शुद्ध करती है और कल्याणों को बढ़ाती है। अभिनयों के द्वारा इस स्वरूप को प्राप्त करने वाली और विद्वान कवि की इस परिणत सरस्वती को शब्दब्रह्म के जानने वाले विद्वज्जन भावना का विषय बनाएं।[1]

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मांगल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च ।
तामेनां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधा:
शब्दब्रह्मविद: कवे: परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ।।

दिङ्नाग ने कुन्दमाला में नमस्कारात्मक नान्दी का प्रयोग किया है। वे अपने नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए गणेश की वन्दना करते हैं -

जम्भारि-मौलि-मन्दार-मालिका-मधु-चुम्बिन: ।
पिबेयुर् अन्तरायाब्धिं हेरम्ब-पद पांसव: ।। [2]

नाटक के अन्त में प्रशस्ति या कल्याण को " भरतवाक्य " कहते हैं। कुन्दमाला नाटक के अन्त में वाल्मीकि भरतवाक्य का पाठ करते है -

स्थाणुर् वेधास् त्रिधामा मकर-वसतय: पावको मातरिश्वा,
पातालं भूर्-भुव: स्वश् चतुर्-उदधि-समा:साममन्त्राश् च वेदा: ।
सम्यक् संसिद्धि-विद्या-परिणत-तपस: पीठिनस् तापसाश् च
श्रेयांस्यस्मिन् नरेन्द्रे विदधतु सकलं वर्धतां गोकुलं च ।। [3]

1- उत्तररामचरितम् - 7/21

2- कुन्दमाला - 1/1

3- कुन्दमाला - 6/45

अर्थात् इस राजा के शासनकाल में शंकर, ब्रह्मा, विष्णु, बड़ी बड़ी नदियाँ, अग्नि, वायु, पाताललोक, भूः, भुवः और स्वर्गलोक, चार समुद्र सम्वत्सर, सामवेद के मन्त्र, चारों वेद, अच्छी तरह से सिद्धि और ज्ञान प्राप्त करने वाले तथा पूर्ण तपस्या वाले, कुलपति तपस्वीगण कल्याण करें और गायों का वंश बढ़े ।

दोनों नाटकों में नान्दी तथा भरतवाक्य का प्रयोग किया गया है । उत्तररामचरितम् में नान्दी में पूर्व कवियों तथा सरस्वती की वन्दना की गयी है तथा कुन्दमाला में गणेश की स्तुति की गयी है ।

भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए पताकास्थानकों की भी योजना होती है । दशरूपककार धनंजय ने पताकास्थानक की परिभाषा देते हुए लिखा है कि कवि कभी कभी रूपक में एक स्थान पर भविष्य में घटित होने वाली घटना का अन्योक्तिमय तथा समानविशेषण युक्त वाक्यों से संकेत कर देता है । यह सूचना पताका या ध्वजा की भाँति भावी वृत्त की सूचना देती है । इसीलिए पताकास्थानक कहलाती है । यह संकेत जब घटनाओं की समानता के आधार पर होता है तो उसमें अन्योक्ति या अप्रस्तुत प्रशंसा का आश्रय लिया जाता है और जब विशेषणों के आधार पर होता है तो समासोक्ति का आश्रय लिया जाता है ।

1- क-दशरूपकम्- 1/14

प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम् ।
पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम् ।।

ख- नाट्यशास्त्रम् - 19/31

यत्रान्यस्मिन्युज्यमाने तल्लिङ्गेभ्यः प्रयुज्यते ।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत ।।

ग- साहित्यदर्पण - 6/45

यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ।।

धनंजय तथा धानिक केवल "तुल्येतिवृत्तरूप" तथा "तुल्यविशेषणरूप" दो प्रकार का पताकास्थानक मानते हैं[1]। परन्तु भरत[2] एवं विश्वनाथ[3] दोनों ने चार प्रकार के पताकास्थानकों को स्वीकार किया है ।

उत्तररामचरितम् में प्रथम अंक में पताकास्थानक का प्रयोग हुआ है -

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो -
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयम्बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥[4]

इन श्लोक में सभी विशेषण सीता जी के प्रति राम के परम अनुराग को व्यंजित करते हैं । सीता जी की प्रत्येक वस्तु उन्हें प्रिय है केवल विरह अप्रिय है । नाटककार ने श्लोक के समाप्त होते ही दुर्मुख का प्रवेश कराया है । जिसके आने से भावी घटनाओं का संकेत मिलता है ।

कुन्दमाला में पताकास्थानक का प्रयोग नहीं हुआ है ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला के कथानकों का तुलनात्मक विश्लेषण

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला का संक्षिप्त कथानक यथा-प्रसंग विवेचित किया जा चुका है । कथानक से स्पष्ट है कि वाल्मीकि-रामायण

1- दशरूपकम् - 1/14

2- नाट्यशास्त्रम् - 19/32, 35

3- साहित्यदर्पण - 6/46

सहसैवार्थसंपत्तिर्गुणवत्युपचारतः ।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम्

4- उत्तररामचरितम् - 1/38

को राम-कथा पर आधारित इन नाटकों में स्वरूप तथा विषय आदि की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है । मुख्य घटनाएं भी प्राय: एक सी है । कथावस्तु सम्बन्धित शास्त्रीय विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शास्त्रोक्त लक्षणों की कसौटी पर दोनों नाटक खरे उतरते हैं । भवभूति तथा दिङ्नाग ने यथा-सम्भव शास्त्रीय परम्पराओं तथा मर्यादाओं का पालन किया है ।

दोनों नाटकों की शास्त्रीय समीक्षा करने पर यह निश्चित हो जाता है कि दिङ्नाग ने कुन्दमाला नाटक की कथावस्तु का आधार उत्तररामचरितम् को ही बनाया है । अत: दोनों का उपजीव्य-उपजीवक सम्बन्ध है । यद्यपि दिङ्नाग की नाट्य-कला पर कालिदास का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है किन्तु भवभूति की अपेक्षा यह प्रभाव कम है । इसलिए कुन्दमाला की समीक्षा करते समय न केवल वाल्मीकि-रामायण से अपितु उत्तररामचरितम् के साथ ही उसका सारस्व-वैरस्व दिखाना स्वाभाविक हो जाता है । उत्तररामचरितम् नाटक सात अंकों में तथा कुन्दमाला नाटक छ: अंकों में समाप्त होता है । अपने कथानक की प्रेरणा वाल्मीकि-रामायण से ग्रहण करते हुए भी अपने नाटक की परिकल्पना में भवभूति तथा दिङ्नाग दोनों ने ही स्थान स्थान पर अपनी मौलिक कल्पना शक्ति और नाटकीय अन्तर-दृष्टि का परिचय दिया है । दोनों ने ही ऐसे अनेक प्रसंगों और परिस्थितियों की परिभावना की है जो न केवल नाटकीय कौतूहल की सृष्टि करती है अपितु रस की निष्पत्ति में भी सहायक होती है ।

नाटकों में परिवर्तन प्रभावोत्पादकता, रसमयता तथा युगानुकूल संदर्भों के आग्रह से किये जाते हैं । भवभूति तथा दिङ्नाग ने भी इन्हीं सब कारणों से कथावस्तु में परिवर्तन किये हैं । उत्तररामचरितम् में प्रथम अंक में चित्रदर्शन का दृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है । चित्रदर्शन का वर्णन

वाल्मीकि-रामायण में नहीं है । भवभूति ने चित्रदर्शन के माध्यम से राम के पूर्व-चरित को उत्तर-चरित से जोड़कर सीता-निर्वासन की भूमिका बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की है । चित्रदर्शन में ही कवि ने बड़ी कुशलता से उन सभी कथांकुरों की ओर संकेत कर दिया है, जिनका विकास आगामी अंकों में किया जाने वाला है । कुन्दमाला में प्रथम अंक में दिङ्नाग ने लोकापवाद सुनने पर सीता के सहसा निर्वासन का चित्रण किया है ।

वाल्मीकि-रामायण में सीता परित्याग काल में गर्भ के कोई चिह्न स्पष्ट नहीं प्रदर्शित किये हैं । वन में छोड़ कर लक्ष्मण के चले जाने के उपरान्त सीता का करूण-क्रन्दन सुनकर वाल्मीकि उन्हें आश्रम में आश्रय देते है वहीं कुछ समय के पश्चात् सीता लव और कुश को जन्म देती हैं किन्तु भवभूति तथा दिङ्नाग ने क्रमशः उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में परित्याग के समय सीता को पूर्णगर्भा चित्रित किया है । उत्तररामचरितम् में सीता प्रसव-पीड़ा से पीड़ित होकर गंगा जी में कूद पड़ती हैं । कुन्दमाला में वाल्मीकि अपने तेज से सीता जी को निर्दोष समझकर अपने आश्रम में आश्रय देते हैं ।

उत्तररामचरितम् में राम ने सीता की रक्षा के लिए चित्रदर्शन के प्रसंग में गंगा तथा पृथ्वी से प्रार्थना की है किन्तु कुन्दमाला में सीता को वन में छोड़ देने के पश्चात् लक्ष्मण लोकपाल, गंगा, मुनि, हिंसक पशु आदि से सीता की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं ।

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम ने सीता के त्याग के बहुत दिनों के बाद शत्रुघ्न को लवणासुर वध के लिए भेजा है । मथुरा जाते हुए शत्रुघ्न एक रात वाल्मीकि के आश्रम में विश्राम करते हैं तभी लव और कुश का जन्म होता है परन्तु उत्तररामचरितम् में भवभूति ने सीता परित्याग और शत्रुघ्न का लवणासुर के लिए मथुरा-गमन साथ-साथ दिखलाया है । कुन्दमाला में लवणासुर के वध का वर्णन नहीं है ।

शम्बूक वध की कथा यद्यपि वाल्मीकि-रामायण में भी है किन्तु अन्य प्रसंग में । भवभूति ने शम्बूक वध के सहारे राम को दण्डकारण्य में पहुँचाया है । उत्तररामचरितम् में भवभूति ने राम के हाथ शम्बूक का वध नहीं बल्कि उद्धार दिखाया है जब कि वाल्मीकि-रामायण का शम्बूक मृत्यु के पश्चात् न तो दिव्य रूप धारण करता है और न ही राम के प्रति कोई कृतज्ञता व्यक्त करता है । कुन्दमाला में शम्बूक कथा का वर्णन नहीं है ।

वाल्मीकि के समान ही भवभूति तथा दिङ्नाग के राम भी वंश मर्यादा और लोकसंग्रह की रक्षा के लिए सीता का परित्याग करते हैं ।

भवभूति ने शम्बूक कथा का सहारा लेकर राम को पंचवटी में प्रवेश कराया है । पूर्व दृश्यों को देखकर श्री राम के मूर्च्छित हो जाने पर अदृश्य सीता अपने कर स्पर्श से उनकी चेतना वापस लाती हैं, जबकि कुन्दमाला में वाल्मीकि का आश्रम खोजते हुए सीता के द्वारा गूँथी गई कुन्दमाला तथा पदचिह्नों को देखकर राम तथा लक्ष्मण को यह विश्वास हो जाता है कि सीता जीवित हैं और यहीं कहीं है । दीर्घिका पर छाया रूपी सीता को देखकर राम के मूर्च्छित हो जाने पर आँचल द्वारा सीता उन्हें चेतना प्रदान करती है । उत्तररामचरितम् की अपेक्षा कुन्दमाला का यह मधुर मिलन अधिक नवीन तथा मनोरम प्रतीत होता है ।

दोनों नाटकों में छाया सीता का वर्णन किया गया है जो भवभूति तथा दिङ्नाग की मौलिक प्रतिभा की दिव्य देन है । उत्तररामचरितम् में सीता गंगा के प्रभाव से अदृश्य होकर तमसा तथा मुरला के साथ दण्डकारण्य में आती हैं तथा उन्हें राम तथा वनदेवी वासन्ती नहीं देख पाते हैं । इस चित्र को दिङ्नाग ने और अधिक स्वाभाविक बना दिया है । कुन्दमाला में वाल्मीकि के प्रभाव से सीता अदृश्य होती है तथा अपना अधिक समय दीर्घिका

के समीप ही व्यतीत करती हैं । इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता है ।

कुन्दमाला में सीता प्रथम अंक में वाल्मीकि जी के साथ जाती हुई गंगा जी से प्रार्थना करती हैं कि "सुख-पूर्वक सन्तान उत्पन्न हो जाने पर मैं प्रतिदिन कुन्द-पुष्पों की माला अर्पित किया करूँगी"। इसका उल्लेख न तो वाल्मीकि-रामायण में है और न ही भवभूति-कृत उत्तररामचरितम् में इसका वर्णन है । दिङ्नाग की ये मौलिक कल्पना है ।

रामायण में यज्ञाश्व के प्रसंग में राम के साथ लव और कुश का युद्ध वर्णित है और उसमें राम की पराजय भी दिखाई गई है किन्तु भवभूति ने उत्तररामचरितम् में बड़ी निपुणता से यज्ञाश्व के प्रसंग में इस युद्ध को लव और चन्द्रकेतु के मध्य दिखाया है । कुन्दमाला में यज्ञाश्व का प्रसंग नहीं है ।

दिङ्नाग ने प्राचीन परम्पराओं तथा मान्यताओं का आदर पूर्वक पालन किया है । राम जब लव से उसके बड़े भाई का नाम पूछते हैं तो लव संकोचवश कुश का नाम नहीं लेता है, परन्तु इसके विपरीत उत्तररामचरितम् में जब कौशल्या लव से बड़े भाई का नाम पूछती हैं तो निःसंकोच भाव से लव कुश का नाम उल्लेख करता है ।

उत्तररामचरितम् में चतुर्थ अंक में कौशल्या, अरून्धती, वसिष्ठ तथा जनक आदि गुरूजनों को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्रित करना भी कवि का अपना कौशल है । प्रथम अंक में इन गुरूजनों की अनुपस्थिति सीता निर्वासन का एक महत्त्वपूर्ण कारण थी । इसका भी उल्लेख वाल्मीकि -रामायण तथा कुन्दमाला में नहीं है ।

कुन्दमाला में दिङ्नाग ने वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ही कुश और लव से रामकथा का गान कराया है । उत्तररामचरितम् में इसका वर्णन

नहीं है ।

कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में कुश और लव रामायण का गान करने के लिए राम के पास आते हैं । राम उनके सौन्दर्य से आकृष्ट होकर दोनों बालकों को सिंहासन पर बैठा लेते हैं तभी विदूषक कहता है कि रघुवंशियों के अतिरिक्त जो कोई भी इस सिंहासन पर बैठेगा उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे । कुश और लव का परिचय कराने के उद्देश्य से दिङ्नाग ने कौशिक के मुख से ऐसा कहलवाया है जब कि भवभूति ने राम की सन्तान को जृम्भकास्त्र का चित्रण करके परिचित कराया है । भवभूति की कल्पना उतनी आकर्षक नहीं प्रतीत होती जितनी दिङ्नाग की है ।

उत्तररामचरितम् में समस्त प्रजागण सीता को प्रणाम करते है और लोकपाल और सप्तर्षिगण पुष्पवर्षा के द्वारा अभिनन्दन करते हैं किन्तु दिङ्नाग ने कुन्दमाला में इस दृश्य को और अधिक प्रभावशाली और नवीन बनाने की इच्छा से आकाश में नगाड़े की आवाज़ और आकाश से पुष्प वर्षा, सीता के ऊपर एक वितान सा तन जाना, रघुकुल के पूर्वजों की जय-जयकार करना तथा सीता को प्रणाम करना आदि घटनाओं का वर्णन किया है ।

गर्भांक नाटक भवभूति का अत्यन्त मौलिक प्रयोग है, उनके पूर्व ऐसा वर्णन किसी ने नहीं किया है । सप्तम अंक में गर्भांक नाटक उत्तररामचरितम् की समस्त नाटकीय कथावस्तु का संक्षिप में परिचय प्रस्तुत करता है तथा गर्भांक नाटक द्वारा ही कवि ने सीता की शुद्धता प्रमाणित की है । कुन्दमाला नाटक में वाल्मीकि के कहने पर सीता स्वयं अपनी शुद्धता का प्रमाण देती है । दिव्य रूप में पृथ्वी आकर उनका समर्थन करती है ।

सीता की शुद्धता प्रमाणित हो जाने के पश्चात् उत्तररामचरितम् में लक्ष्मण सीता को केवल प्रणाम ही करते हैं जब कि कुन्दमाला में लक्ष्मण सीता के निर्वासन में अपनी भूमिका के प्रति खिन्न होकर "वध्य" शब्द का

प्रयोग करते हैं जिससे इस प्रसंग में अधिक नाटकीयता और भावुकता आ गई है ।

उत्तररामचरितम् की समाप्ति राम और सीता के मिलन के साथ ही समाप्त हो जाती है । वाल्मीकीय रामायण में राम कुश को कुशावती तथा लव को श्रावस्ती का राज्य देते हैं । कुन्दमाला में भी सीता और राम के मिलन के पश्चात् राम कुश को राजा तथा लव को युवराज पद से सुशोभित करते हैं ।

वाल्मीकि के उत्तरकाण्ड की कथा दुःखान्त है जबकि भवभूति तथा दिङ्नाग ने नाट्यशास्त्र के नियमों का ध्यान रखते हुए उसे सुखान्त चित्रित किया है ।

भवभूति तथा दिङ्नाग ने अपने नाटकों में नवीनता लाने के लिए कुछ कल्पनाएँ की है, जिनका वर्णन इस प्रकार है -

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक में चित्रदर्शन के दृश्य की कल्पना भवभूति को सम्भवतः रघुवंश से प्राप्त हुई होगी । कालिदास ने एक श्लोक में चित्रदर्शन का केवल संकेत किया है[1] । ~~कुछ लोग~~ उत्तररामचरितम् के षष्ठ अंक में कुश और लव का अभिज्ञान दृश्य भी "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" के सप्तम अंक में सर्वदमन के अभिज्ञान दृश्य के समान है । कुछ लोग "छाया सीता" की कल्पना की प्रेरणा अभिज्ञानशाकुन्तलम् के षष्ठ अंक से ग्रहण की हुई मानते हैं, जहाँ सानुमती अप्सरा अदृश्य रूप से दुष्यन्त की विरह दशा देखती हैं ।

भवभूति की अपेक्षा दिङ्नाग में उनके पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है । दिङ्नाग के कतिपय अन्य पूर्ववर्ती नाटककारों का भी प्रभाव कुन्दमाला पर यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है । उदाहरणार्थ - भास रचित स्वप्नवासवदत्तम् के चतुर्थ अंक में उदयन विदूषक द्वारा लाये हुए जल से

1- रघुवंशम् - 14/25

अपनी अश्रुपरिप्लुत आँखे धोते हैं, उसीप्रकार कुन्दमाला में राम दीर्घिका के जल से आँसुओं से भरे अपने नेत्रों को धोते हैं । पंचम अंक में उदयन का वासवदत्तम् से दैवात् तथा अज्ञात समागम की बात को विदूषक स्वप्न बताता है उसी प्रकार राम तथा अदृश्य सीता के क्षणिक मिलन को कुन्दमाला में विदूषक तिलोत्तमा की प्रवंचना बताता है । कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में नैमिषारण्य में दीर्घिका के पास सीता का मुनि प्रभाव से अदृश्य होना विक्रमोवर्शीयम् में उवर्शी की तिरस्करिणीप्रच्छन्नता से मिलता है । कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में वन देवता द्वारा सीता को दिये गये उत्तरीय की बात "शाकुन्तलम्" में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वृक्षों द्वारा दिए गये क्षौमवस्त्र के वर्णन से मिलती-जुलती है । कुन्दमाला के चतुर्थ अंक में जिस समय रघुवंशियों के अतिरिक्त जो कोई भी इस सिंहासन पर बैठेगा उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेगें यह प्रसंग भी अभिज्ञान शाकुन्तलम् के उस प्रसंग से प्रभावित प्रतीत होता है जहाँ पर इन्द्र की सहायता से लौटते हुए दुष्यन्त मारीचि ऋषि के आश्रम में खेलते हुए अपने पुत्र को देखते हैं और उसे गोद में उठाना चाहते हैं । उस समय उसके शरीर से गिरी हुई अपराजेयता जड़ी को जब वे उठाते हैं तो तपस्विनियाँ उन्हें रोकते हुए कहती हैं कि इस बालक के पिता के अतिरिक्त यदि कोई और इस जड़ी को छूएगा तो वह जड़ी सर्प बनकर उसे डस लेगी । दुष्यन्त को जड़ी उठाने पर कोई हानि नहीं पहुँचती है । यह देखकर तपस्विनियाँ उन्हें शकुन्तला के पति और भरत के पिता के रूप में जानती हैं । इसीप्रकार कुन्दमाला में भी जब सिंहासन पर लव और कुश का मस्तक शतधा विभक्त नहीं होता तो उनका रघुवंशी होना निश्चित हो जाता है ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला के कथानकों की संकल्पना तथा संरचना की तुलनात्मक समीक्षा करने पर यह निश्चित हो जाता है कि भवभूति और दिङ्नाग दोनों की शैली की अपनी निजी विशेषताएं हैं यद्यपि दोनों

ही नाटक हैं किन्तु जहाँ भवभूति अपने नाटक में गम्भीर और संयमित भावक प्रवणता की सृष्टि करते हैं, वहीं दिङ्नाग छोटी छोटी अनेक बातों के द्वारा भावनाओं के उच्छलन पर अधिक बल देते हैं । यह अन्तर बहुत बड़ा न होते हुए भी दोनों नाटकों के भाव जगत और वातावरण को परस्पर भिन्न कर देता है ।

निष्कर्षतःयह कहा जा सकता है कि दोनों ही नाटकों में अपना कथानक सम्बन्धी वैशिष्ट्य है ।दोनों ही नाटक सरस, सरल और अभिनेय हैं । घटनाएं सहज यथार्थ तथा स्वभाविक है । छोटे छोटे संवादों से कथानक में सर्वत्र रोचकता तथा कौतूहल की सर्जना होती है और पात्रों के सहज स्वभाविक मनोभावों के दर्शन होते हैं ।

चतुर्थ परिच्छेद

उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला - पात्र विन्यास

पिछले परिच्छेद में नाटकों की कथावस्तु की समीक्षा करने के पश्चात् इस परिच्छेद में उत्तररामचरितम् एवं कुन्दमाला के चरित्र विन्यास की शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक समीक्षा प्रस्तुत की जायेगी ।

मानव का जीवन अनेक प्रकार की सुख दुःखात्मक परिस्थितियों से परिपूर्ण रहता है । जीवन की यही परिस्थितियाँ नायक या पात्रों के माध्यम से हमारे सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं और हम उन्हें देखकर उनसे तादात्म्य स्थापित करके उसी प्रकार की अनुभूति करने लगते हैं । यह अनुभूति ही रस निष्पत्ति का आधार है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चरित्र-चित्रण का नाटकों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है क्यों कि चरित्र रस निष्पत्ति का सशक्त माध्यम होते हैं । यदि वर्णन पात्रों की आन्तरिक तथा वाह्य परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होगा तो कथानक में स्वभाविकता तथा जीवन्तता नहीं आ पायेगी और न ही वह कृति रसानुभूति कराने में समर्थ होगी ।

वाचस्पति गैरोला ने इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला है, पात्रों की जीवन्तता से ही कोई नाटककार धन्य होता है । जो नाटककार पात्रों की जीवन्तता की रचना में निपुण नहीं होता उसको कीर्ति प्राप्त नहीं होती ।[1]

वस्तु एवं रस की भाँति नायक भी प्रत्येक नाटक का आवश्यक तत्त्व है । नायक नाटक का ही नहीं, अपितु महाकाव्य उपन्यास कथा आदि का अपरिहार्य तत्त्व होता है, यही कारण है कि संस्कृत नाट्य शास्त्र एवं लक्षण ग्रन्थों में नायक की चर्चा बड़े विस्तार से की गयी है तथा कथावस्तु, रस और मनोविज्ञान की दृष्टि से उसके अनेक भेद-प्रभेदों की कल्पना की गयी है । जो इस प्रकार है -

नायक- भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार नायक को विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर

1- संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला

प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, वाक्पटु, कुलीन वंश में उत्पन्न , मन आदि से स्थिर, युवा, तथा बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला से युक्त शूर, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता तथा धार्मिक होना चाहिए-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।।[1]

नायक के मनोविज्ञान और स्वभाव के आधार पर नाट्य शास्त्र और लक्षण ग्रन्थों में धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त एवं धीरोद्धत ये चार प्रकार के नायक बताये है ।

भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।[2]

इसकी परिभाषा शास्त्रों में इस प्रकार दी गई है ।

धीरललित- नायक निश्चिन्त रहने वाला, कोमल स्वभाव वाला, सुखी तथा गीत आदि कलाओं में आसक्त तथा भोग में संलग्न रहता है ।[3]

धीरप्रशान्त- नायक ब्राह्मण, वैश्य या मंत्रिपुत्र या जिनमें मानवोचित विनम्रता मधुरता आदि गुणों का समावेश हो, वे नायक धीर-प्रशान्त की कोटि में रखे जाते हैं ।[4] प्रकरण का नेता या नायक इसी प्रकार का होता है - जैसे मृच्छकटिकम् का नायक चारुदत्त तथा मालतीमाधवम् का माधव ।

1- दशरूपकम्- 2/1, 2 2- दशरूपकम् - 2/3
3-क- दशरूपकम् - 2/3 निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।।
ख- साहित्यदर्पण - 3/34
4- क- दशरूपकम् - 2/3 सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।
ख- साहित्यदर्पण - 3/34

धीरोदात्त - नायक क्रोध, शोक आदि विकारों से अभिभूत न होने वाला, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला, स्थिर बुद्धि वाला, अहंकार रहित, दृढ़व्रती नायक धीरोदात्त कहलाता है[1] ।

धीरोद्धत- नायक घमण्ड और ईर्ष्या से युक्त, माया और कपट से युक्त, चंचल क्रोधी तथा आत्मश्लाघी होता है[2] ।

संस्कृत नाटकों का विषय सामान्यतः प्रेम है । अतएव श्रृंगार की दृष्टि से उपर्युक्त धीरललितादि चारों प्रकार के नायकों में से प्रत्येक नायक दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ भेद से पुनः चार प्रकार का होता है -

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वां प्रत्यन्यया हृतः[3] ।

इस प्रकार नायकों के सोलह भेद हुए ।

अनेक पत्नियों में समान अनुराग रखने वाले को "दक्षिण" नायक कहते हैं । जो नायक अपराध करके भी निःशंक रहे, तिरस्कृत होने पर भी लज्जित न हो और दोषों के प्रत्यक्ष हो जाने पर भी झूठ बोलता जाय वह धृष्ट नायक कहलाता है । जो नायक ज्येष्ठा नायिका का अप्रिय छिप छिप कर करता है वह "शठ" कोटि का नायक कहलाता है । नायिका से प्रेम हो जाने पर शठ कोटि का नायक पूर्व परिणिता से डर डर कर छिपकर श्रृंगार

1- क- दशरूपकम्- 2/4 महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।

ख- साहित्यदर्पण - 3/32

2- क- दशरूपकम् - 2/5 दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः ।
धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।।

ख- साहित्यदर्पण - 3/32

3- दशरूपकम् - 2/6

चेष्टाएँ करता है । एक ही नायिका में अनुरक्त रहने वाला नायक "अनुकूल" नायक कहलाता है[1] ।

इन सोलह भेदों के पुनः उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन भेद बतलाये गये हैं । इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नायकों के कुल अड़तालिस भेद हैं ।

नायक में शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, ललित्य एवं औदार्य नामक आठ सात्त्विक गुणों का होना आवश्यक है[2] ।

जहाँ नायक में शौर्य तथा दक्षता पायी जाये तथा नीच व्यक्ति के प्रति घृणा एवं स्वयं से उत्कृष्ट व्यक्ति के प्रति स्पर्धा पायी जाती है वहाँ "शोभा" नामक सात्त्विक गुण होता है[3] । विलास नामक सात्त्विक गुण वहाँ होता है जहाँ नायक में धैर्ययुक्त गति एवं धैर्ययुक्त दृष्टि पायी जाये एवं उसकी वाणी स्मिति से युक्त हो[4] । बहुत बड़े संक्षोभ के होने पर भी जब अत्यन्त सामान्य सा ही विकार नायक में पाया जाता है तो वह " माधुर्य" कहलाता है[5] । जब विकार के महान हेतु के उपस्थित होने पर भी नायक पर उसका कोई प्रभाव न पड़े एवं किंचित भी विकार न दिखाई दे तो वह "गाम्भीर्य" नामक सात्त्विक गुण कहलाता है[6] । जब नायक अनेक विघ्नों के होने पर भी

1-(क) दक्षिणोऽस्यां सहृदयः, गूढविप्रियकृच्छठः ।
व्यक्ताङ्गवैकृतो धृष्टो, ऽनुकूलस्त्वेकनायिकः ।। 2/7 दशरूपकम
(ख) साहित्यदर्पण - 3/35, 36

2- शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी ।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्त्विकः पौरुषा गुणाः ।। दशरूपकम् 2/10

3,4- नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते ।
गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः । द०रू० 2/11

5,6- श्लक्ष्णो विकारो माधुर्यं संक्षोभेसुमहत्यपि ।
गाम्भीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ।। द०रू० 2/12

अपने धर्म से विचलित नहीं होता तो वहाँ "स्थैर्य" नामक "सात्त्विक" गुण होता है[1]। तिरस्कार आदि को मृत्युपर्यन्त न सहना "तेज" नामक सात्त्विक गुण है[2]। स्वाभाविक कोमलता से युक्त श्रृंगार परक चेष्टाओं का नायक में पाया जाना "लालित्य" नामक सात्त्विक गुण कहलाता है[3]। जहाँ नायक प्रिय वचनों पर मुग्ध होकर प्राण तक देने को तैयार हो तथा सज्जन व्यक्तियों को अपने आचरण से अनुकूल बना लें वहाँ उसमें औदार्य नामक सात्त्विक गुण माना जाता है[4]।

उपर्युक्त नाट्य-शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर अब हम प्रथम उत्तररामचरितम् के नायक राम का तत्पश्चात् कुन्दमाला के नायक राम का अनुशीलन करेंगें।

उत्तररामचरितम् के नायक राम- उत्तररामचरितम् नाटक के नायक राम में शास्त्रों में उल्लिखित नायक के सभी गुण विद्यमान है। सम्पूर्ण कथा के केन्द्र तथा फलभोक्ता राम ही है। शूद्र तपस्वी शम्बूक के शब्दों में वे समस्त प्राणियों के एकमात्र आधार और शरणागत वत्सल हैं-

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने भूतनाथः शरण्यो[5]।

दशरूपककार के अनुसार नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, पवित्र मन वाला, वाक्पटु, कुलीन वंश

1, 2- व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि।
अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि ।। द०रू० 2/13

3, 4- श्रृङ्गाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु।
प्रियोक्त्याऽऽजीविताद्दानमौदार्यं सदुपग्रहः ।। द०रू० 2/14

5- उत्तररामचरितम् - 2/13

में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर, युवा, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला तथा मान से युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होता है । श्री राम इन सभी गुणों से सम्पन्न हैं । सर्वप्रथम नायक को विनम्र होना चाहिए । राम विनम्र प्रकृति के हैं । नाटक में अनेक स्थलों पर उनकी विनम्रता देखी जाती है- उदाहरणार्थ-तृतीय अंक में बार बार वासन्ती द्वारा कटु वचन बोले जाने पर राम को किंचितमात्र भी क्रोध नहीं आता है बल्कि कहते हैं कि शायद साथियों को दुःख देने के लिए ही राम से भेंट हुई[1] । वे यह भी कहते हैं कि चिरसंगी के वे मनोभाव मुझे इस तरह से गलाए डाल रहे हैं कि आज असहाय हो कर मैं रो रहा हूँ, अब तो आप प्रसन्न हैं[2] । यहीं पर उनकी विनम्रता दिखाई देती है ।

दूसरा गुण है माधुर्य अर्थात् जो देखने में प्रिय हो । श्री राम सुन्दर तथा प्रियदर्शी है । उनके कान्तियुक्त यशस्वी शरीर को देखकर लव अपने भाई कुश से राम के आकर्षक व्यक्तित्त्व का इस प्रकार वर्णन करता है - " महापुरूषमाकारानुभावगाम्भीर्य-सम्भाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरिता-तिशयम्"[3] । अर्थात् आकार भाव तथा गाम्भीर्य से जिसका अलौकिक श्रेष्ठ चरित्र सम्भावित किया जाता है उस महापुरूष को देखें । तीसरा गुण है त्यागी अर्थात् अपना सब कुछ दान कर देने वाला । श्रीराम ने प्रजा के अनुरंजन के लिए अपनी प्राणों से भी प्रिय सीता को निर्वासित कर दिया । यहाँ उनका त्याग प्रकट हो रहा है । चौथा गुण है दक्ष अर्थात् किसी कार्य

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 201

राम-सखि वासन्ति, दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामदर्शनम् ।

2- उत्तररामचरितम् - 3/32

3- उत्तररामचरितम् पृ0 313

को शीघ्रता से करने वाला । राम निपुण एवं क्षिप्रकारी है । प्रारम्भ किये हुए कार्य को अनेक विघ्नों के पड़ने पर भी पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते हैं । पाँचवा गुण है प्रियंवद अर्थात् प्रिय बोलने वाला । श्री राम की वाणी मधुर है । वे अपने प्रिय तथा मधुर वचनों से दूसरों को सन्तुष्ट करने में समर्थ हैं । नाटक में सर्वत्र उनकी मितभाषिता का परिचय मिलता है ।

छठा गुण है रक्तलोक: अर्थात् नायक को लोक प्रिय होना चाहिए । राम जनप्रिय राजा हैं । उनसे समस्त प्रजा प्रसन्न रहती है । प्रथम अंक में दुर्मुख का यह वचन कि नगरवासी तथा ग्रामवासी जन आपकी प्रशंसा करते हैं तथा कहते हैं कि राजा राम ने हम लोगों से महाराज दशरथ का विस्मरण करा दिया है,[1] उनके लोक प्रिय होने को सूचित करता है । अपनी प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए ही राम ने लोकापवाद सुनकर सीता को तुरन्त निर्वासित कर दिया । मन की निर्मलता आदि के द्वारा काम आदि दोषों से अभिभूत न होना शौच कहलाता है । नाटक में सर्वत्र राम के मन की पवित्रता का ही उल्लेख मिलता है । राम वृद्धजनों का आदर करते हैं - जब कंचुकी अभ्यासवश उन्हें "रामभद्र" सम्बोधित करता है और तुरन्त सम्भल कर "महाराज" कहता है तो वह कहते हैं कि तात के परिजनों के मुख से मुझे रामभद्र ही अच्छा लगता है । आपको जिसप्रकार से अभ्यास है उसी प्रकार कहें ।[2] यहाँ श्री राम की वाग्मिता प्रकट होती है ।

श्री राम इक्ष्वाकुवंशी राजा है । भागीरथी भी इन्हें रघुवंशी स्वीकार करती हैं ।[3] दसवाँ गुण है स्थिर अर्थात् वाणी, मन तथा कार्य से चंचल

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 68
2- उत्तररामचरितम् - पृ0 20
3- उत्तररामचरितम् - 7/14

न होना । श्री राम प्रारम्भ किये हुए कार्य को वाणी, मन व कर्म से स्थिरचित्त होकर अनेक विघ्नों के उपस्थित होने पर भी पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते हैं । अपने प्राणों से भी प्रिय सीता को निर्वासित कर देने के पश्चात् भयानक भीतरी घुटन को सहन करते हुए भी धैर्य पूर्वक राज्य का संचालन करते रहे । ये उनके स्वभाव की स्थिरता का परिचायक है । श्री राम युवा तथा सुन्दर हैं । इसके अतिरिक्त बुद्धि, उत्साह, स्मृति, ज्ञान, कला, मान आदि गुण भी उनमें विद्यमान हैं । वे वीर, तेजस्वी तथा धार्मिक हैं । शास्त्रोक्त लक्षणों की कसौटी पर नायक के रूप में श्री राम नायकोचित् सभी गुणों से समन्वित हैं ।

पूर्वोक्त बताये गये चारों प्रकार के नायकों में से उत्तररामचरितम् के नायक राम धीरोदात्त कोटि के नायक है । दशरूपककार के अनुसार धीरोदात्त का स्वरूप इस प्रकार है -

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥[1]

धीरोदात्त नायक के अधिकांश लक्षण श्री राम में पाये जाते हैं । धीरोदात्त नायक का प्रथम गुण है "महासत्त्व" अर्थात् जिसका अन्तः करण क्रोध शोक आदि विकारों से अभिभूत नहीं होता । " लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति"[2] । अर्थात् भाग्यवश झुलसाए जलते हुए हृदय से मेरी बेटी को त्याग कर वह एक अलौकिक शक्ति के कारण और प्रजा के पुण्यों से बस जी भर रहे हैं । भगवती पृथ्वी का यह वचन उनकी महासत्त्वता को सिद्ध

1- दशरूपकम् - 2/4

2- उत्तररामचरितम् - 7/7

करता है । श्री राम अपने महान् दु:ख को सदा हृदय में छिपाये रहते है, उसकी छाया भी दूसरों पर नहीं पड़ने देना चाहते । उनकी गम्भीरता को कवि ने "पुटपाकप्रतीकाशो" के समान बताया है -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथ: [1] ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करूणो रस: ।।

अर्थात् गहरे लेप के होने के कारण पात्र से फूट कर न निकले हुए और बीच में छिपी हुई अत्यधिक गर्मी वाले तथा सम्पुट में पकाई जाने वाली औषध की तरह गम्भीर स्वभाव के होने के कारण अप्रकट और अन्त:करण में छिपी हुई तेज वेदना वाला राम का करूण रस है ।

शम्बूक को तैजस् वैराज लोक प्रदान करना तथा सीता-विषयक अपवाद को जन्म देने वाले पौरजानपद के प्रति कोई कटु शब्द न कहना उनकी क्षमावत्ता को सूचित करता है । अत्यन्त पराक्रमी सम्राट होते हुए भी कभी उन्होंने आत्म-प्रशंसा सूचक कोई शब्द स्वयं नहीं कहे । अनेक स्थलों पर उनके आत्मश्लाघाप्रिय न होने के वर्णन प्राप्त होते है । उदाहरणार्थ - गुप्तचर द्वारा प्रशंसा करने पर राम कहते हैं कि यह तो प्रशंसा-मात्र है कोई दोष हो तो बताओ, जिसका प्रतिकार किया जा सके [2] । चित्रदर्शन के प्रसंग में भी लक्ष्मण द्वारा राम की प्रशंसा करने पर राम उन्हें रोक देते हैं । अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय सीता को दूर कर देने पर भी लोक आज्ञा के बिना पुनर्ग्रहण न करने में स्थिरता और दृढ़व्रतता दिखाई देती है । नाटक में आरम्भ से अन्त तक उनके चरित्र में कहीं भी अहंकार तथा गर्व का भाव दृष्टिगोचर नहीं होता है ।

1- उत्तररामचरितम् - 3/1
2- उत्तररामचरितम् - पृ0 68

दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ इन चारों प्रकार के नायकों में से श्री राम अनुकूल नायक हैं क्यों कि उनका एक ही स्त्री अर्थात् अपनी पत्नी सीता के प्रति ही अनुराग देखा जाता है, यहां तक कि सीता निर्वासन के पश्चात् सीता की ही स्वर्ण-प्रतिमा को अर्धांगिनी मानकर अश्वमेध यज्ञ कियां ।

सर्वत्र नाटक में राम का सीता के प्रति नैसर्गिक प्रेम देखा जाता है । राम का हृदय जानकी के प्रति बड़ा उदार एवं आदर की भावनाओं से तरंगित है । वे सीता को सम्बोधित करके अपने आन्तरिक दु:ख इस प्रकार व्यक्त करते हैं:-

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्ध:
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोह: स्थगयति कथं मन्दभाग्य: करोमि ।।

अर्थात् मेरा हृदय फट रहा है, देह का बन्धन विशीर्ण हो रहा है, जगत् शून्य प्रतीत हो रहा है । विरही अन्तरात्मा गहरे अँधेरे में ठोकर खाती हुई डूब सी जाती है । चारों ओर से मूर्छा घेर रही है, मैं मन्दभागा कहां जाऊँ । श्री राम का दाम्पत्य प्रेम अत्यन्त पावन एवं आदर्शमय है । वे सीता के विरह से उत्पन्न दु:ख से अत्यन्त कृशकाय एवं मलिन छवि वाले हो जाते हैं कि राम को पहचानना कठिन हो जाता है । अत: हम देखते हैं कि सीता को निर्वासित करने के पश्चात् भी राम सीता के प्रति ही समर्पित दिखाई देते हैं । अत: राम अनुकूल नायक हैं ।

दशरूपककार के अनुसार नायक में आठ सात्त्विक गुण होने चाहिए ।

1- उत्तररामचरितम् - 3/38

वे आठ सात्त्विक गुण इस प्रकार है- शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, लालित्य और औदार्य ।

अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में राम की वीरता के दर्शन होते हैं यहाँ शौर्य शोभा नामक गुण है । सीता के वनवास चले जाने पर भी श्री राम ने अपना धैर्य नहीं खोया बल्कि उसी प्रकार प्रजानुरंजन में लगे रहे यहाँ पर विलास नामक गुण की झलक मिलती है । वासन्ती द्वारा अनेक कटु वचन बोलने पर भी राम को रंचमात्र भी क्रोध नहीं आता है बल्कि राम पर बड़ी संतुलित और संयमित प्रक्रिया ही होती है । जो उनके माधुर्य गुण का परिचायक है । अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय सीता को दूर कर देने पर भी श्री राम ने लोक आज्ञा के बिना उनका पुनर्ग्रहण नहीं किया । यद्यपि इसमें राम के जीवन का पर्याप्त अंश निकल जाता है परन्तु राम इसके लिए तैयार हैं । कोई भी व्यक्ति इतने दिनों की इस भयानक भीतरी घुटन को सहन नहीं कर सकता । यह निश्चय ही उनके गाम्भीर्य और स्थिरता को सूचित करता है । नाटक के कुछ स्थलों पर प्राप्त श्री राम की श्रृंगार-परक चेष्टाएं उनके लालित्य गुण पर प्रकाश डालती हैं । श्री राम में तेज तथा औदार्य गुण भी प्राप्त होते हैं । इस प्रकार राम के चरित्र में सभी शास्त्रोक्त गुण विद्यमान हैं और उनका नायकत्व सभी शास्त्रीय कसौटियों पर खरा उतरता है ।

उत्तररामचरितम् में राम को दो विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है - राजा और पति । दोनों ही रूपों के प्रति वह सजग हैं । पहले राजा है अतः उनका प्रजा के प्रति पहला कर्तव्य है तदनन्तर पति हैं । प्रथम अंक के प्रारम्भ में वह धर्मासन से उठकर उन्मत्त सीता को सान्त्वना देने के लिए सीधे वासगृह पहुँचते हैं । अतः सान्त्वना देना उनका दूसरा कर्तव्य है ।

राम की भावुकता, कोमलहृदयता एवं वाग्मिता तीनों के दर्शन मिलते

हैं । वसिष्ठ राम के लिए केवल प्रजानुरंजन के लिए संदेश भेजते हैं किन्तु राम इतने भावुक हो जाते हैं कि वे लोकाराधना के लिए स्नेह, दया, सुख और सीता को भी त्यागने के लिए कहते हैं-

> स्नेहं दयाञ्च/सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि ।
> आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा [1] ।।

पंचवटी के दृश्यों को भी देखकर राम अत्यन्त भावुक हो जाते हैं तथा मूर्च्छित हो जाते हैं ।

भवभूति के राम स्वभाव से अत्यन्त शालीन है । वे चित्रवीथिका पर ही हनुमान को देखकर कह उठते हैं- अंजना के आनन्द को बढ़ाने वाला यह वह महापुरूष है जिसकी वीरता से हम सब लोग कृतार्थ हो गये हैं[2] । मन्थरा का प्रसंग आते ही सीता का ध्यान तुरन्त दूसरी ओर कर देते हैं । इससे राम की संवेदन शीलता स्पष्ट लक्षित होती है । दण्डकारण्य तथा पंचवटी के दर्शन करने से उनका प्राणिमात्र के प्रति पूर्व प्रेम पुनः जागृत हो जाता है । पंचवटी में सभी द्रुम तथा मृग उनके बन्धु हैं । करिकलभ और गिरिमयूर को वे पुत्र समान मानते हैं । " विजयतामायुष्मान्" कहकर करिकलभ को तथा " मोदस्व वत्स मोदस्व " कहकर गिरिमयूर को आशीर्वाद देते हैं ।

लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु के प्रति भी राम का वात्सल्य देखा जाता है । वाल्मीकि के आश्रम पर लव के साथ वार्तालाप करते हुए चन्द्रकेतु से कहते हैं -

---

1- उ0च0- 1/12

2- उ0च0- 1/32

दिनकरकुलचन्द्र चन्द्रकेतो
सरभसमेहि दृढं परिष्वजस्व ।
तुहिनशकलशीतलैस्तवाङ्गैः
शममुपयातु ममापि चित्तदाहः [1] ।।

अर्थात् हे सूर्यवंश के चन्द्र चन्द्रकेतु वेग से आओ और गाढ़ आलिंगन करो । तुम्हारे हिमखंड के समान शीतल अंगों से मेरे चित्त का सन्ताप शान्त हो जाये । चन्द्रकेतु के मित्र रूप में लव और कुश के प्रति भी उनसे चन्द्रकेतु जैसी पुत्रवत् भावनाएं रखते हैं । कुश को गले लगाते ही राम का वात्सल्य कुछ विशेष रूप धारण कर लेता है । उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो यह अंग से अंगक्षारित हुआ है, स्नेह से उत्पन्न उनके शरीर का अंश है, मानो चैतन्य रूप देह धारक पदार्थ ही प्रकट होकर स्थित हुआ है, आनन्द से आलोडित हुए हृदय के द्रव से सींचा गया है, क्यों कि आलिंगन करने पर शरीर को अमृतरस के प्रवाह से सींच रहा है[2] ।

प्रजानुरंजन के लिए ही उन्होंने सीता का परित्याग किया । परन्तु इसके लिए उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा । अयोध्या से दण्डकारण्य तक उन्हें सीता के समक्ष ही सीता के लिए रोदन करना पड़ा हालांकि सीता अदृश्य रूप में ही वहां उपस्थित थीं, फिर भी सीता निर्वासन के द्वारा लोकधर्म का जो आदर्श उन्होंनें इतिहास में प्रतिष्ठित किया है वह अनन्त काल तक भारतीय जीवन और साहित्य को अनुप्राणित करता रहेगा ।

वस्तुतः राम का आदर्श चरित्र सर्वथा पूज्यनीय है । भवभूति के ही

1- उ0च0 - 6/8

2- उ0 च0 6/22

शब्दों में उनका शील एवं चरित्र बज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल है उसे सही सही कौन जान सकता है ।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणाञ्चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति[1] ।।

कुन्दमाला के नायक राम - शास्त्रों में उल्लिखित नायक के सभी गुण इनमें विद्यमान हैं । उत्तररामचरितम् के समान ही कुन्दमाला में भी सम्पूर्ण कथा के केन्द्र तथा फल-भोक्ता राम ही हैं । महर्षि वाल्मीकि इन्हें पुराण पुरूष के रूप में स्वीकार करते हैं[2] । यद्यपि दिङ्नाग राम के पूर्ण विकसित चरित्र को चित्रित नहीं कर सके हैं, फिर भी जो भी रामचरित्र प्रकाश में आया है वह आदर्श और धीरोदात्त नायक के अनुरूप ही है ।

दशरूपककार के अनुसार नायक "नेता विनीतो मधुरस्त्यागी" इत्यादि गुणों से युक्त होता है । राम विनम्र तथा उदार प्रकृति के हैं । अनेक स्थलों पर उनमें विनम्रता आदि के भाव दिखाई देते हैं । षष्ठ अंक में जब कुश और लव रामायण की कथा सुना रहे थे तब श्री राम कहते हैं कि कैकयी माता के वृतान्त को छोड़कर आगे की कथा सुनाओ[3] । इससे राम का कैकयी के प्रति विशेष आदर भाव, उदारता तथा विनम्रता देखी जाती है । दूसरा गुण माधुर्य है । श्री राम सुन्दर तथा प्रियदर्शी है । ऋषि मुनि के द्वारा उनके सौन्दर्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है -

---

1- उ0च0 - 2/7

2- कुन्दमाला - 5/16
याऽसौ पुराण-पुरूषस्य कथा निबद्धा ।

3- कुन्दमाला - पृ0 239

व्यायाम-कठिन: प्रांशु: कर्णाऽन्तायतलोचन: ।
व्यूढोरस्को महा-बाहुर् व्यक्तं दशरथात्मज: ।।[1]

अर्थात् व्यायाम करने से कठिन शरीर वाले, ऊँचे कद वाले, कानों तक फैले हुए विशाल नेत्रों वाले दृढ़ वक्षस्थल वाले विशाल हाथों वाले हैं । तीसरा गुण त्यागी है । श्री राम ने प्रजा के अनुरंजन के लिए ही अपनी प्राणों से भी अधिक प्रिय सीता को निर्वासित कर दिया । वे निपुण तथा क्षिप्रकारी है । किसी भी आरम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते हैं । श्री राम की वाणी मधुर तथा प्रिय है । वे अपने मधुर वचनों से दूसरों को सन्तुष्ट करने में समर्थ है । जब तपोवन में ऋषि कण्व श्री राम को ढूढ़ते हुए "महाराज" शब्द का प्रयोग करते हैं तब वह कहते हैं कि अरे मित्र यह शब्द ऋषियों के लिए उचित नहीं है अथवा वृद्धावस्था ने ऐसा कहलवाया है आपने स्वयं नहीं कहा[2] । यहां उनकी मितभाषिता का परिचय मिलता है । वाल्मीकि के कथन से उनका लोकप्रिय होना सूचित होता है । किसी स्त्री को राज्य से निर्वासित जानकर वाल्मीकि जी कहते हैं कि - धर्म से युद्ध को जीतने वाले रामचन्द्र के द्वारा पृथ्वी का शासन करने पर हे पुत्रि, कहो ! आपके ऊपर यह आपत्ति कहां से आ गई[3] ! शौच तथा वाग्मिता गुण स्पष्ट नहीं दिखाई देते है । श्री राम रघुवंशी राजा है । अनेक स्थलों पर श्री राम के रघुवंशी होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है । प्रथम अंक में राम के द्वारा निर्वासित सीता वाल्मीकि द्वारा आश्रय न दिये जाने पर कहती हैं कि मेरे गर्भ में स्थित इक्ष्वाकुवंशी पूर्वजों की सन्तान है[4] । अत: आप मेरी रक्षा करें ।

1- कुन्दमाला - 3/15
2- कुन्दमाला- 128
3- कुन्दमाला- 1/28
4- कुन्दमाला - पृ0 52

लक्ष्मण राम को मन्दराचल पर्वत के समान धैर्यशाली बताते हैं[1]। सीता निर्वासन के पश्चात् श्री राम धैर्य पूर्वक राज्य का संचालन करते रहे यह उनकी स्थिरता का परिचायक है ।

श्री राम युवा तथा सुन्दर हैं । इसके अतिरिक्त बुद्धि, उत्साह, स्मृति, ज्ञान, कला, मान आदि गुण भी इनमें विद्यमान है । वे वीर तेजस्वी भी हैं । श्री राम धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति है । वाल्मीकि आश्रम के समीप गोमती नदी में बहती हुई कुन्दमाला की रचना को देखकर उसके गूँथने की कला को पहचान कर, श्री राम कहते हैं कि ये सीता द्वारा निर्मित है । इसके अतिरिक्त उस कुन्दमाला को चाहते हुए भी नहीं सूँघते कि यह देवता को उपहार रूप में अर्पित की गई है अतः यह मेरे द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है[2]। यहाँ राम की धार्मिक भावना दिखाई देती है । इस प्रकार नायक राम शास्त्रोक्त दृष्टि से सभी नायकोचित् गुणों से युक्त हैं ।

धीरललित, धीरप्रशान्त धीरोद्धत और धीरोदात्त कोटि के नायकों में से राम धीरोदात्त कोटि के नायक हैं । धीरोदात्त नायक के अधिकांश लक्षण उनमें पाये जाते हैं । प्रथम गुण है "महासत्त्व" ।यह गुण कुन्दमाला में स्पष्ट नहीं दिखाई देता । दूसरा गुण है "अतिगम्भीर होना । प्रजा के अनुरंजन के लिए अपनी प्राणों से भी प्रिय सीता को निर्वासित करके भी वाह्य रूप से उद्विग्न प्रतीत नहीं होते यहाँ उनकी गम्भीरता व्यक्त होती है । तीसरा गुण क्षमावान् है । सीता को लोकापवाद के कारण निर्वासित कर देने पर भी पौरजानपद के प्रति कोई कटु शब्द न कहना उनकी क्षमावत्ता को सूचित करता है । चौथा गुण आत्म प्रशंसा से दूर रहने वाला ।

1- कुन्दमाला - मन्दर-महीधर-समान धैर्यो - पृ0 8।

2- कुन्दमाला - तृतीय अंक पृ0 90,91

श्री राम ने अत्यन्त पराक्रमी सम्राट होते हुए भी आत्मप्रशंसा-सूचक कोई शब्द स्वयं नहीं कहे । श्री राम स्थिर बुद्धि वाले हैं ।स्वाभिमानी होते हुए भी अहंकार रहित और दृढ़ प्रतिज्ञा करने वाले हैं । उनमें अहंकार की भावना कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती । पंचम अंक में तो राम विदूषक से कहते हैं कि मंत्रियों के लिए यह उचित होता है कि वे अत्यन्त क्रोधी एवं उग्र शासन करने वाले राजा को रोकें[1] । नाटक में आरम्भ से अंत तक उनके चरित्र में कहीं भी गर्व का भाव दृष्टिगोचर नहीं होता है ।

पूर्वोक्त बताये गये चारों प्रकार के नायकों में से कुन्दमाला के नायक राम भी"अनुकूल" नायक हैं । आरम्भ से अन्त तक उनको एक पत्नीव्रत ही देखा जाता है । प्रथम अंक में लक्ष्मण राम का संदेश सुनाते हैं कि -

> त्वं देवि चित्त-निहिता गृह-देवता मे
> स्वप्नागता शयन-मध्य-सखी त्वम् एव ।
> दाराऽन्तरा हरण-निःस्पृह-मानसस्य
> यागे तव प्रतिकृतिर् मम धर्मपत्नी ।।[2]

अर्थात् तुम मेरे हृदय में निवास करने वाली गृह देवी हो, तुम ही मेरे स्वप्न में आने वाली शयन काल की सखी हो, अब मेरा मन अन्य दूसरी पत्नी को लानें की इच्छा नहीं रखता है अतः मेरे यज्ञ में तुम्हारी ही प्रतिमा मेरी धर्मपत्नी होगी । इस श्लोक से राम के एकपत्नी व्रत का और सीता के प्रति उत्कट प्रेम की अतिशयिता अभिव्यंजित हो रही है । अतः श्री राम अनुकूल कोटि के नायक हैं ।

1- कुन्दमाला - 5/7

2- कुन्दमाला- 1/14

दशरूपककार के अनुसार नायक में आठ सात्त्विक गुण शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, लालित्य तथा औदार्य का होना आवश्यक है । लगभग सभी गुण कुन्दमाला के नायक राम में सम्यक् रूप से विद्यमान हैं और उनका नायकत्व सभी शास्त्रीय कसौटियों पर खरा उतरता है ।

राम अपने पूज्यों के प्रति विशेष आदर भाव रखते हैं । कैकयी के प्रति राम के हृदय में कौशल्या से भी अधिक आदरभाव देखा जाता है, जब कुश और लव रामायण की कथा सुनाते हैं तब राम कहते हैं कि कैकयी माता के वृत्तान्त को छोड़कर आगे की कथा सुनाओ[1] । वाल्मीकि द्वारा राम की श्रेष्ठता के दर्शन होते हैं । राम के श्रेष्ठ गुणों से प्रभावित होकर ही वाल्मीकि पहले किसी स्त्री को राम द्वारा निर्वासित हुई जानकर लौट पड़ते हैं किन्तु रघुकुल की सन्तान गर्भ में स्थित है, यह जानकर तथा सीता को पहचान कर आश्रय प्रदान करते हैं[2] । वाल्मीकि जी पहले राम द्वारा किसी स्त्री को निष्कासित समझकर ही आश्रय नहीं देते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि मुनि एवं ऋषिगण सभी राम के गुणों से प्रभावित थे । इससे राम की सच्चरित्रता और श्रेष्ठता आदि गुण स्पष्ट व्यक्त होते हैं । वे प्रजा वत्सल हैं । प्रजा को अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं । प्रजा की सन्तुष्टि के लिए ही सगर्भा पूर्ण गुणवती और चरित्रवती आदर्श पत्नी का निर्वासन क्षण भर में कर दिया । राम मर्यादापालक राजा है ।

जब कण्व राम से पूछते हैं कि क्या यह तपोवन आपके हृदय को आनन्दित कर रहा है तब राम कहते हैं कि -

---

1- कुन्दमाला- पृ० 239

2- कुन्दमाला- पृ० 52,53

दावाग्निं क्रतु-होम-पावक-धिया यूपास्थया पादपान्
अव्यक्तं मुनि-गीत-साम-गतया भक्त्या शकुन्त-स्वनम् ।
वन्यान् तापस्-गौरवेण हरिणान् संभावयन् नैमिषे ।
सोऽहं यन्त्रणया कथं कथम् अपि न्यस्यामि पादौ भुवि [1] ।।

अर्थात् मैं नैमिषारण्य में वनों की आग को यज्ञ की आग समझकर वृक्षों को यज्ञ के यूथ समझकर, पक्षियों की अस्पष्ट ध्वनि को ऋषियों के द्वारा गाये हुए सामवेद के मन्त्रों की ध्वनि समझकर, वन में उत्पन्न एवं रहने वाले जंगली मृगादि पशुओं को तपस्वी समझकर आदर कर रहा हूं । इस प्रकार ऐसे तपोवन में बड़े कष्ट के साथ भूमि पर चरणों को रखता हुआ चला आ रहा हूं । इससे राम की आस्तिक बुद्धि तथा तपोवन के प्रति आदर-भाव व्यक्त हो रहा है ।

पंचवटी में राम की करूण अवस्था देखी जाती है । कण्व अपने ही मन में विचार करते हैं कि श्री राम को विरह में महान दु:ख है जो यह राम पशु पक्षियों में विरही लोगों के ही शून्य हृदय को देख रहे [2] हैं ।

श्री राम कहते हैं कि सीता के विरह में उत्पन्न हुए बहते हुए आंसुओं से सदा दु:खी रहने वाली मेरी आंखे इस यज्ञाग्नि के धूंए से पुन: अत्यन्त दु:ख को प्राप्त कर रही [3] हैं । उत्तररामचरितम् के समान ही कुन्दमाला में भी राम की सीता के प्रति विरह-वेदना देखी जाती है । राम ब्राह्मण जाति के प्रति अपार आदर भाव रखते हैं । जब लव और कुश श्री राम को प्रणाम करते हैं तो श्री राम कहते हैं कि आप दोनों ही बालकों ने सहसा अत्यन्त शीघ्रता के कारण सिर झुकाकर मुझे प्रणाम किया है, यह आप दोनों का प्रणाम मेरी अर्थात् राम की अनुमति से ही

1- कुन्दमाला- 4/4
2- कुन्दमाला पृ0 140
3- कुन्दमाला - 4/12

आप दोनों के गुरूजनों के चरणों का उपहार हो[1]। इससे श्री राम की ब्राह्मण जाति के प्रति अपार आदर एवं पूज्य बुद्धि अभिव्यंजित होती है। राम का लव और कुश के प्रति भी वात्सल्य भाव देखा जाता है। इस प्रकार देखते हैं कि राम धीरोदात्त तथा अनुकूल नायक हैं।

उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला में राम-तुलनात्मक समीक्षा- दोनों नाटकों में ही राम धीरोदात्त तथा अनुकूल नायक हैं। दिङ्नाग ने कुन्दमाला में कुछ स्थलों पर राम को विष्णुरूप अर्थात् पुराण-पुरूष के रूप में इंगित किया है[2]। जब कि भवभूति ने उत्तररामचरितम् में राम को इक्ष्वाकुवंशी कहा है[3]। इस प्रकार उत्तररामचरितम् में कहीं भी राम को पुराण पुरूष या आदि पुरूष के रूप में नहीं स्वीकार किया गया है। इतना अवश्य है कि एक स्थल पर राम के लोकोत्तर चरित्र का वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से भले ही उन्हें कोई आदि पुरूष के रूप में स्वीकार करें किन्तु स्पष्ट उल्लेख कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। उत्तररामचरितम् में राम जब शम्बूक का अन्वेषण करते हुए दण्डकारण्य में पहुँचते हैं तब शम्बूक का वध करने के पश्चात् राम शम्बूक को लक्ष्य करके कहते हैं कि - तुम अपनी तपस्या का फल भोगो और सुख प्रदान करने वाली सम्पूर्ण सम्पत्तियां तुझे प्राप्त हो तथा वैराज नाम का लोक तुम्हें मंगलमय हो[4]। इसके उत्तर में शम्बूक कहता है कि यह आप के प्रसाद की महिमा है। जो कि संसार में बड़ी बड़ी तपस्याएं कर

1- कुन्दमाला- 5/11

2- कुन्दमाला- क- याऽसौ पुराण-पुरषस्य कथा निबद्धा - 5/16

ख- व्यक्तं सोऽयम् उपागतो वनम् इदं रामाऽभिधानो हरिः। 3/14

3- उत्तररामचरितम् - क- इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां। 1/44

ख- 7/14

4- उत्तररामचरितम् - 2/12

मुनियों के द्वारा अन्वेषणीय, लोकों के स्वामी तथा शरणागत-वत्सल है, वही आप मुझ शूद्र को खोजते हुए सैकड़ों योजन लांघकर यहां आये हैं- यह तप का ही अनुग्रह है । नहीं तो अयोध्या से दण्डकवन में फिर आप का आगमन कैसे होता ! उक्त वाक्यों से भवभूति राम के ईश्वरत्व की ओर संकेत अवश्य करते हैं किन्तु नाटक में मानवीय रूप की ही प्रतिष्ठा की गयी है । इसके विपरीत कुन्दमाला में उनके मानवीय रूप के साथ साथ उनके ईश्वरत्व का स्पष्ट चित्रण किया गया है । दोनों नाटकों में ही उत्कृष्ट गुणों से युक्त राम का स्वरूप वर्णित है ।

दोनों नाटकों में श्री राम का ब्राह्मणों के प्रति विशेष आदर देखा जाता है । कुन्दमाला में जब लव और कुश रामायण का गान करने के लिए जाते हैं तब श्री राम को सिर झुका कर प्रणाम करते हैं । राम उन बालकों को ब्राह्मण समझकर कहते हैं कि आप दोनों ने अत्यन्त शीघ्रता के कारण मुझे सिर झुका कर प्रणाम कर दिया है किन्तु यह आप दोनों का प्रणाम मेरी अनुमति से आप दोनों के गुरू जनों के चरणों का उपहार बने । ब्राह्मणों के प्रति यह आदरभाव उत्तररामचरितम् में भी देखा जाता है और यही आदर-भाव उनसे तपस्वी शम्बूक का वध भी करवा देता है । जो हिंसा होने के कारण अरूचिकर सा प्रतीत होता है, चाहे शूद्र तपस्वी ने बाद में एक दिव्य रूप धारण कर लिया हो । फिर भी ब्राह्मण बालक की रक्षा के लिए तपस्या कर रहे शूद्र को मृत्यु दण्ड देना आज की दृष्टि से कहां तक समीचीन है । शूद्र तपस्वी का वध करते समय वाल्मीकि के राम से भवभूति के राम अधिक संवेदन शील दिखाई देते हैं क्यों कि भवभूति के राम शम्बूक का वध करते समय अपने दाहिने हाथ को सम्बोधित करते हुए कहते हैं - कि ब्राह्मण के मृत बालक के जीवन हेतु तु शूद्र तपस्वी का वध कर क्यों कि तू तो उसी राम की भुजा है जिसने पूर्ण गर्भ से अलसायी हुई सीता का निर्वासन किया था ।

इससे यह स्पष्ट है कि भवभूति के राम का संवेदनशील हृदय शम्बूक की निष्ठुर हत्या करने से पहले बुरी तरह कांप जाता है, अनायास ही करूणा एवं दया के भावों से भर उठता है । इससे राम की विवशता के प्रति सहानुभूति होती है । वे अपने मन के विपरीत कार्य करके प्रजा की सेवा में संलग्न रहते हैं । यहां केवल एक श्लोक की रचना कर भवभूति ने राम के भावुक मानवीयता को उजागर कर दिया है ।

दोनों ही नाटकों में राम के सुन्दर व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है । अब प्रश्न यह उठता है कि राम ने सीता का निर्वासन किया तो लेकिन क्या वे उसे अपने मन से स्वीकार कर पाये । वास्तविकता यह है कि प्रजानुरंजन के आग्रह से राम ने सीता का निर्वासन किया अवश्य, किन्तु सीता की निर्दोषिता का ज्ञान होने के कारण वे स्वयं कभी अपने इस कार्य का समर्थन नहीं कर सके और वे सीता के प्रति अपने को अपराधी अनुभव करते रहे । रामकथा का यह प्रसंग अपनी सम्भावनाओं में अत्यन्त भावुक और नाटकीय है जब कि राम जैसा पराक्रमी व्यक्ति भी परिस्थितियों के झंझावत में उलझकरकुछ ऐसा कर बैठता है कि जिसका समर्थन स्वयं उसकी ही अन्तरात्मा नहीं करत ी । भवभूति और दिङ्नाग दोनों ने ही इस प्रसंग के द्वारा राम के चरित्र के उस पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो उनका अपना नितान्त व्यक्तिगत है और जनसामान्य की दृष्टि में प्रकट नहीं होता । दोनों नाटकों में श्री राम को कर्तव्यपरायण राजा, संवेदशील पति तथा आदर्श पिता के रूप मे चित्रित किया गया है ।

किन्तु भवभूति राम की व्यथा के अद्वितीय पारखी प्रतीत होते हैं और मेरे इस निवेदन का आधार उनकी केवल एक पंक्ति है जो वे तृतीय अंक के प्रारम्भ में मुरला के मुख से कहलवाते हैं –

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करूणो रसः ।।

अर्थात् गहरे लेप के होने के कारण पात्र से फूट कर न निकले हुए और बीच में छिपी हुई अत्याधिक गर्मी वाले तथा पारे वाले सम्पुट में पकाई जाने वाली औषध की तरह गम्भीर स्वभाव के होने के कारण अप्रकट और अन्तःकरण में छिपी हुई तेज वेदना वाला राम का करूण रस है । भवभूति की यह उक्ति श्री राम की उस संयमी और शीलवती पीड़ा का परिचय देती है । जो अपने ही आदर्शों के भार से आक्रान्त है और अपने लिए अपने ही द्वारा स्थिर किये गये मानदण्डों पर किया गया आत्मबलिदान है ।

नायिका - शास्त्रीय निरूपण के अनुसार नायिका भी यथासम्भव नायक के ही सामान्य गुणों से युक्त होनी चाहिए[1] । भारतीय नाट्य परम्परा में नायिका का भी महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है । नायिका ही नायक के साथ मिलकर रूपक की कथावस्तु को विकसित करती है । अभिज्ञान-शाकुन्तलम् की नायिका शकुन्तला, रत्नावली की नायिकायें वासवदत्ता और सागरिका तथा प्रस्तुत नाटकों की नायिका सीता सभी नायक के साथ साथ कथावस्तु के विकास में सहायक हुई हैं । इससे ज्ञात होता है कि भारतीय नाट्य परम्परा में नायिका का कथावस्तु के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है । पाश्चात्य नाट्य परम्परा में नायिका कथावस्तु के विकास के प्रति उदासीन है, पाश्चात्य नाटकों में स्त्री पात्र का चित्रण होता है परन्तु उन्हें प्रधानता नहीं दी जाती है तथा उनमें स्त्रीत्व की भावना के दर्शन नहीं होते हैं जब कि हमारे यहां नाटक में स्त्रीत्व की भावना के दर्शन होते हैं[2] ।

सर्वप्रथम हम नायिका के शास्त्रीय स्वरूप पर विचार करेंगे । तत्पश्चात् हम शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला की सीता का स्वरूप निर्धारण करेंगे । नायिका तीन प्रकार की होती है - स्वकीया, परकीया तथा साधारण स्त्री । स्वकीया नायिका शील, लज्जा, नम्रता आदि गुणों से युक्त होती है । वह सच्चरित्र पतिव्रता

1- साहित्यदर्पण- 3/56 नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ।।
2- प्राच्य एवं पाश्चात्य नाट्यकला - डा0 सुदर्शन - पृ0 244

सरल तथा पति को प्रसन्न करने में निपुण होती है । इसके मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन भेद होते हैं[1] । मुग्धा नायिका के केवल एक ही रूप की ~~रूप की~~ काव्यों में प्रसिद्धि होने के कारण अवान्तर भेद नहीं होते हैं[2] । शेष मध्या और प्रगल्भा के "धीरा","अधीरा", और"धीरा धीरा" छ: भेद होते हैं[3] ।इनमें भी प्रत्येक ज्येष्ठात्व औरकनिष्ठात्व के आधार पर दो तरह की होती है[4] । इस प्रकार मुग्धा से भिन्न नायिकायें मध्या तथा प्रगल्भा के बारह भेद हो जाते हैं । इसप्रकार स्वकीया नायिका के कुल तेरह भेद हुए ।

परकीया नायिका दो प्रकार की होती है - कन्या तथा अन्योढा किसी की अविवाहित पुत्री "कन्या" तथा किसी दूसरे व्यक्ति की परिणीता स्त्री अन्योढा कहलाती है । नाटक आदि में अंगीरस के आलम्बन के रूप में अन्योढा परकीया का वर्णन कभी नहीं करना चाहिए । कन्या के प्रति अनुराग अंगी रस का भी अंग हो सकता है और अंग रस का भी[5] । अविवाहित लज्जायुक्त, नवयौवना कन्या होती है, यह पिता आदि के वशीभूत होने के

1- क- दशरूपकम् - 2/15 मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् ।।
ख- साहित्य दर्पण - 3/57

2- काव्यालंकार रूद्रट - 12/28
मुग्धात्वनन्यभेदा काव्येषु तथा प्रसिद्धत्वात् ।

3- साहित्यदर्पण - 3/61 ते धीरा चाप्यधीरा च धीराधीरेति षड्विधे ।

4- क- दशरूपकम् - 2/20
द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिता: ।

ख- काव्यालंकार रूद्रट - 12/28

5- दशरूपकम् - 2/20, 21
अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित् ।
कन्यानुरागमिच्छात: कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम् ।

कारण "परकीया" कहलाती है[1] । अन्योढा यात्रा मेले तमाशे की शौकीन एवं निर्लज्ज होती है[2] । नायिका का तीसरा भेद "साधारण" स्त्री है । जो कलाचतुर प्रगल्भा तथा धूर्त होती है[3] । अवस्था भेद से सभी नायिका आठ प्रकार की होती है[4] । स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया तथा अभिसारिका । इस प्रकार नायिकायें एक सौ अठ्ठाईस प्रकार की हुईं । ये भेद नायक के सम्बन्धों के आधार पर किये गये हैं ।

अन्तिम छः विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया और अभिसारिका तो चिन्ता, निःश्वास, खेद, अश्रु, वर्ण का फीका पड़ जाना अर्थात् वैवर्ण्य, ग्लानि तथा भूषणहीनता से युक्त होती है और आरम्भ की दो स्वाधीनपतिका और वासकसज्जा क्रीडा, उज्ज्वलता और हर्ष से युक्त होती है[5] ।

जिस नायिका का प्रिय उसके समीप है तथा उसके अधीन होता है

1- साहित्यदर्पण - 3/67 कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना ।
वृत्ति भाग - अस्याश्च पित्राद्यायत्तत्वात्परकीयात्वम्

2- साहित्यदर्पण - 3/66 यात्रादिनिरतान्योढा कुलटा गलितत्रपा ।।

3- दशरूपकम् - 2/21 साधारणीस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक् ।।

4- दशरूपकम् - 2/23
आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः ।।

5- दशरूपकम् - 2/28
चिन्तानिःश्वासखेदाश्रु वैवर्ण्यग्लान्यभूषणैः ।
युक्ताः षडन्त्या द्वे चाद्ये क्रीडौज्ज्वल्यप्रहर्षितैः ।।

तथा जो नायक की समीपता के कारण प्रसन्न रहती है वह "स्वाधीन पतिका" कहलाती है[1]। "वासकसज्जा" वह नायिका है जो प्रिय के आने के समय हर्ष से अपना श्रृंगार करती है[2]। पति के अपराधी न होने पर भी, विलम्ब होने पर जो नायिका उत्कण्ठित मन से उसकी प्रतीक्षा करती है वह "विरहोत्कण्ठिता" है। जब नायिका को नायक के किसी दूसरी स्त्री के सम्भोग करने का ज्ञान हो जाय तथा इस अपराध के कारण वह ईर्ष्या से कलुषित हो उठे तो वह "खण्डिता" कहलाती है[3]। "कलहान्तरिता" नायिका वह है जो नायक के अपराध करने पर क्रोध से उसका तिरस्कार करती है किन्तु बाद में नायक के प्रति किये गये अपने व्यवहार के विषय में पश्चाताप करती है। संकेत स्थल पर दिये गये समय पर नायक के उपस्थित न होने पर जो नायिका अपने आपको अत्यधिक अपमानित समझती है वह "विप्रलब्धा" कहलाती है[4]। जिस नायिका का पति किसी कार्य से दूर देश में स्थित हो वह "प्रोषितप्रिया" कहलाती है तथा जो नायिका कामपीड़ित होकर या तो स्वयं नायक के समीप अभिसरण करे या नायक को अपने पास बुलावे, वह" अभिसारिका" कहलाती है[5]।

1- दशरूपकम् - 2/24
आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका ।।

2- दशरूपकम् - 2/24
मुदा वासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये ।

3- दशरूपकम् - 2/25 चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कण्ठितोन्मना: ।
ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता ।।

4- दशरूपकम् - 2/26
कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक् ।
विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता ।।

5- दशरूपकम् - 2/27
दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यत: प्रोषितप्रिया ।
कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाभिसारिका ।

अत्यधिक काम से संतप्त नायिका जब लज्जा का परित्याग कर देती है तो वह अभिसारिका की अवस्था से युक्त हो जाती है ।

नायिका की उपर्युक्त आठों अवस्थायें उसके नायक के साथ सम्बन्धों के आधार पर कहीं गयी है । यदि नायक एक. पत्नी में ही अनुरक्त रहने वाला होगा तो नायिका सहज ही प्रसन्न रहेगी, यदि नायक शठ होगा तो नायिका को संताप वेदना, दुःख एवं अधैर्य का अनुभव होगा ।

उपर्युक्त सभी नायिकाएं उत्तम मध्यम तथा अधम इन तीन भेदों से तीगुनी होकर संख्या में तीन सौ चौरासी हो जाती है[1] ।

नायिका भेद के ही प्रसंग में नायिका के सहज गुण धर्मों की चर्चा की गयी है । नायिका में सामान्यतः सौन्दर्य, शान्ति, शीलता, मृदुता आदि गुणों का होना आवश्यक माना गया है । आचार्य धनन्जय ने स्त्रियों के बीस स्वाभाविक अलंकार बताये है । भाव, हाव, हेला ये तीन शरीरज अलंकार हैं । शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात भाव अयत्नज अलंकार है । इन्हें प्रकट करने में नायिकाओं को किसी प्रकार का यत्न नहीं करना पड़ता है । लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित,

---

1- साहित्यदर्पण- 3/87

इति साष्टाविंशतिशतमुत्तममध्याधमस्वरूपेण
चतुरधिकाशीतियुतं शतत्रयं नायिकाभेदाः ।।

2- दशरूपकम् - 2/30-33

यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलङ्कारास्तु विंशतिः ।
भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः ।।
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजाः ।।
लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितम् ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा ।।
विहृतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः ।

मौट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित तथा विहृत ये दस स्वभावज समझने चाहिए । ये स्वभाव से ही स्त्रियों में स्थित रहते हैं ।

साहित्यदर्पणकार ने स्त्रियों के अट्ठाइस सात्त्विक अलंकार माने हैं[1] । धनन्जय ने स्वभावज अलंकार दस माने हैं लेकिन विश्वनाथ ने अट्ठारह स्वभावज अलंकार स्वीकार किये हैं । इन्हों ने लीला, विलास आदि के अतिरिक्त मद, तपन, माग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि को भी स्वभाव सिद्ध माना है[2] ।

संस्कृत नाट्य शास्त्र का यह नायिकाभेद भले ही अविचारणीय और विस्मयकारी प्रतीत हो किन्तु ध्यान देने पर यह ज्ञात होता है कि यह नारी मनोविज्ञान का अत्यन्त सटीक अध्यन है । प्रणय एक ऐसा भाव है जो नारी के भीतर मानसिक व शारीरिक दृष्टि से जो भी सर्वश्रेष्ठ है उसे आविष्कृत करता है तथा नायिका भेद के अन्तर्गत जिस सूक्ष्मता और अन्तर्दृष्टि के साथ नारी की विभिन्न शारीरिक मानसिक भंगिमाओं का विश्लेषण हुआ है वह मात्र प्रशंसनीय ही नहीं संस्कृत नाट्य शास्त्र की विशिष्ट उपलब्धि है ।

अब उपर्युक्त नाट्य-शास्त्रीय मापदण्डों के आधार पर प्रथम उत्तररामचरितम् तत्पश्चात् कुन्दमाला की नायिका सीता का मूल्यांकन करेंगें ।

उत्तररामचरितम् की नायिका सीता- सीता राम की पत्नी है । रघुकुल गुरू वसिष्ठ ने नाटक के प्रारम्भ में ही उनके अलौकिक कुल शील का महत्त्व अत्यन्त

1- साहित्यदर्पण- 3/89 यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यका: ।

2- साहित्यदर्पण- 3/92

विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलम् ।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादशसंख्यका: ।।

प्रभावोत्पादक शब्दों में किया है -

> विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
> राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
> तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां
> येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयञ्च ।।[1]

अर्थात् भगवती वसुन्धरा ने आपको उत्पन्न किया ब्रह्मा के तुल्य महाराज जनक तुम्हारे पिता है और तुम उन धराधिपों की बहू हो जिनके वंश के सूर्य और हम गुरू है । उत्तररामचरितम् की नायिका सीता शास्त्रीय दृष्टि से स्वकीया नायिका है । स्वकीया नायिका शील, पतिव्रता, कुटिलता रहित, लज्जावती और पति की सेवा में निपुण होती है । सीता पतिव्रता नारी हैं । वे कई वर्षों से अपने पति की सहधर्मचारिणी रहीं हैं । उन्होंने सुख और दुःख दोनों में ही श्री राम का साथ दिया है । अपने शील तथा सदाचार से उन्हों ने दोनों महान् कुलों की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि की है । सीता के शील में उपर्युक्त सभी गुणों का समवाय एकत्र देखा जाता है । लक्ष्मण से वार्तालाप करते समय राम कहते हैं कि वह इतनी पवित्र है । जैसे- अग्नि और तीर्थोदक ।

> उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
> तीर्थोदकंच वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।।[2]

उपर्युक्त श्लोक से ही स्पष्ट हो जाता है कि सीता अत्यन्त ही पवित्र है । सीता की पवित्रता के लिए अग्नि की क्या आवश्यकता है क्यों कि तीर्थोदक और अग्नि स्वयं शुद्ध होते हैं वे कभी भी अपर वस्तुओं से शुद्ध नहीं किये जाते हैं । यह स्वयं ही अन्य पदार्थों की अशुचिता को दूर करते

1- उ0च0 - 1/9
2- उ0च0- 1/13

हैं । उसी प्रकार सीता स्वयं ही शुद्ध है उनसे तो अन्य पदार्थ पवित्र होते हैं अतः उनकी शुचिता के लिए अन्य किसी की भी आवश्यकता नहीं है । राम को दृढ़ विश्वास है कि जानकी पवित्र है और लोकापवाद मिथ्याभ्रान्ति है ।

राम के प्रति सीता का अनन्य अनुराग है । यों तो सीता का अधिकांश जीवन दुःखमय है किन्तु उनके जीवन का उत्तरार्ध, जो विरहाश्रुओं से भीगा है- इस नाटक में चित्रित किया गया है । चित्रदर्शन के समय शूर्पणखा के चित्र को देखकर सीता सहसा ही डर जाती हैं और पूर्व वनवास की पुनः सारी आशंका सत्य बनकर उनके मानस-पटल पर छा जाती है । राम द्वारा निष्कासन के समय सीता कठोरगर्भा हैं । ऐसी अवस्था में लक्ष्मण निरपराधिनी सीता को हिंसक पशुओं के बीच घोर वन में एकाकिनी और निराश्रिता छोड़कर लौट जाते हैं । ऐसे महान कष्ट को, जिसकी कल्पना भी असह्य है, उन्हों ने धैर्य पूर्वक सहन कर लिया । आदि कवि वाल्मीकि की सीता का सात्त्विक अभिमान इस समय तेज बनकर फूट पड़ता है किन्तु भवभूति की सीता का समस्त तेज यहां प्रणय भाव के चिरन्तन आदर्श में पूर्णतया लीन दिखाई देता है । यद्यपि कुछ समय के लिए सीता के मन में राम के प्रति कठोर विचार आते हैं किन्तु वह तुरन्त ही संभल जाती हैं । उनके मन में ये विचार आने स्वभाविक ही है क्यों कि बिना कोई अपराध बताये उनके पति ने उन्हें निर्वासित कर दिया है । इसके पश्चात् भी वह राममय दिखाई देती हैं ।

सीता एक क्षण के लिए भी राम से दूर नहीं होना चाहती हैं । अपने दोहद की पूर्ति के लिए गंगा के शीतल जल में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है तथा श्री राम से अपने साथ चलने का अनुरोध करती हैं । श्री राम की स्वीकृति पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न होती है तथा उन्हें असीम आनन्द प्राप्त होता है । उन्हें अपने पति के स्थायी प्रेम पर अखण्ड विश्वास

है । सीता अपने पति श्री राम के दुःख से दुःखित तथा सुख से सुखी होती हैं । पंचवटी दर्शन के समय सीता अपनी प्रिय सखी वासन्ती पर क्रुद्ध होती है क्यों कि वह बार बार श्री राम को पूर्व परिचित स्थलों को दिखाकर पीड़ित कर रही हैं । राम को दुःखी देखकर वह अपना समस्त दुःख तथा अकारण निर्वासन की बात भी भूल जाती है, जो कि नारी हृदय का विशेष गुण है । सीता वासन्ती को ही दारूण और कठोर कहने लगती हैं । जब राम उन्हें "अकरूणे वैदहि" कहकर पुकारते हैं तब वे कहती है - अकरूणाऽस्मि यैवंविधं त्वां पश्यन्त्यैव जीवामि"[1] अर्थात मैं कैसी निर्दयी हूं जो आपको इस अवस्था में देखकर भी जीवित हूं ।

नारी मन की यह विशेषता होती है कि वे अपने पति के प्रत्येक सुख और दुःख को कष्ट के साथ या प्रसन्नता पूर्वक सहन कर लेती है किन्तु किसी दूसरी स्त्री को पति की सहधर्मचारिणी के स्थान पर देखकर उन्हें असह्य पीड़ा होती है । अश्वमेध यज्ञ में उनके पति श्री राम ने सहधर्मचारिणी के स्थान पर सीता की स्वर्ण-मूर्ति ही स्थापित की है, यह जानकर उन्हें आत्म संतोष होता है तथा उनका अकारण निष्कासन का दुःख दूर हो जाता है । अपने पति के सुख की कल्पना में आत्म-विस्मृत होकर वे उस प्रतिमा की प्रशंसा करने लगती हैं । अपने प्रियतम के वियोग से प्रिय वस्तुएं भी उनके लिए अप्रिय हो जाती हैं । अपने को धिक्कारते हुए कहती हैं - कि मै कैसी अभागिन हूं जिसे कि केवल पतिविरह ही नहीं पुत्रविरह भी सहन करना पड़ रहा है[2] । राम ने सीता को "स्तोकवादिनि" कहा है । वह मितभाषिणी है । वह वाल्मीकि की सीता के समान उग्र नहीं हैं । इसीकारण वह अपने ऊपर किये गये समस्त अत्याचार को चुपचाप सह लेती हैं । यहां सीता के शील और आत्मसंयम की अभिव्यक्ति हुई है ।

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 194

2- उ0च0 पृ0 158

पशु पक्षियों और वृक्ष-लताओं के प्रति भी उनका असाधारण प्रेम देखा जाता है । करिकलभ, गिरिमयूर तथा कदम्ब के वृक्ष का उन्होंने अपनी देख-रेख में पोषण किया है । पंचवटी में उन्होंने अनेक वृक्षों को जल देकर, अनेक पक्षियों को अपने हाथों से खिलाकर पोषित किया है । गिरिमयूर को पत्नी के साथ् कदम्ब के वृक्ष पर सुखपूर्वक देखकर उनके नेत्र अश्रु से डबडबा जाते हैं । करिकलभ पर आपत्ति सुनकर वे उसकी रक्षा के लिए सहसा ही पुकार उठती हैं तथा उसको सकुशल देखकर उसे सुखी रहने का आशीर्वाद देती हैं । उनका हृदय मानवेतर प्राणियों के लिए वात्सल्य से भरा हुआ है ।

उत्तररामचरितम् में सीता का चित्रित चरित्र गम्भीर, आदर्श नारी के गुणों से अलंकृत, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति, स्नेह की चरममयी भावुक और सुकुमार हृदया नायिका के रूप में चित्रित किया गया है । भगवती भागीरथी और माता वसुन्धरा की धारणा है कि सीता के संसर्ग से हम दोनों की पवित्रता में वृद्धि होती है -

आवयोरपि यत्सङ्गात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते [1] ।।

<u>कुन्दमाला की नायिका सीता</u>- उत्तररामचरितम् की नायिका सीता की भाँति कुन्दमाला की नायिका सीता भी स्वकीया नायिका पृथ्वी की पुत्री[2] और जनक की कन्या[3] हैं । स्वकीया नायिका शील, पतिव्रता, कुटिलता रहित लज्जावती और पति की सेवा में निपुण होती है । ये सभी गुण नायिका सीता में विद्यमान हैं । निर्वासन के पश्चात् लक्ष्मण सीता को राम का सन्देश सुनाते

1- उ०च० 7/8

2- कुन्दमाला- दुहितरं भगवत्या विश्वंभरायाः - पृ० 256

3- कुन्दमाला- 6/30

है -

> तुल्याऽन्वयेत्नु- गुणेति गुणोन्नतेति,
> दुःखे सुखे च सुचिरं सह-वासिनीति ।
> जानामि केवलम् अहं जन-वाद-भीत्या,
> सीते त्यजामि भवतीं न तु भाव-दोषात्[1] ।।

अर्थात् हे जनक राजपुत्रि ! तुम हमारे समान पवित्र एवं उच्चकुल वाली हो, अनुकूल गुणों से युक्त हो तथा श्रेष्ठ गुणों वाली हो, सुख और दुख दोनों ही अवस्थाओं में सदा साथ रहने वाली सहधर्मचारिणी हो । यह मैं [राम] भली भाँति जानता हूँ । परन्तु लोकापवाद के भय के कारण विवश होकर तुम्हारा परित्याग कर रहा हूँ । तुम्हारी स्नेह आदि भावना में किसी प्रकार की न्यूनता अथवा विकार नहीं है, जिससे मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ । यहाँ पर सीता की निष्कलंकता, उच्चकुलोत्पन्नता आदि आदर्श गुणों की अभिव्यक्ति हो रही है । लक्ष्मण भी कहते हैं कि यह संसार स्वेच्छाचारी, उच्छृंखल है । वास्तविकता देखने तथा जानने का प्रयास नहीं करता और स्वेच्छा से किसी के लिए जो मन में आता है वही कहने लगता है[2] । इससे सीता की असाधारण पवित्रता का पता चलता है ।

राम के आदेशानुसार लक्ष्मण जब सीता को वन में छोड़ते समय क्षमा माँगते हैं तब सीता लक्ष्मण को निरपराध बताती हैं[3] । इसीप्रकार लक्ष्मण द्वारा कहने पर सीता श्री राम को संदेश देती हैं कि सदा अपने स्वास्थ्य के प्रति, प्रजानुरंजन और कर्तव्यपालन के प्रति पूर्ण सजग रहें[4] । यहाँ सीता के स्त्री सुलभ

1- कुन्दमाला - 1/12
2- कुन्दमाला- 1/13
3- कुन्दमाला- पृ0 40
4- कुन्दमाला- पृ0 32

भावों, कोमल और भावुक होने का परिचय मिलता है । सीता जी में नारी के समस्त गुण विद्यमान हैं । वे अपने पति की कोई भी कटु आलोचना नहीं सुनना चाहती हैं । यही कारण है कि जब वेदवती श्री राम की कटु आलोचना करती है तो वे उसे सुनना भी पसन्द नहीं करती हैं ।

निर्वासन के असह्य दु:ख से पीड़ित होकर सीता आत्महत्या करने का विचार करती हैं, परन्तु उसी क्षण उनके मन में यह विचार आता है कि रघुकुल का वंश नष्ट न हो जाये, इसलिए वह निर्वासन के असह्य कष्टों को सहन करती हुई आत्महत्या नहीं करती हैं[1] । जब वह अत्यधिक व्याकुलता का अनुभव करती हैं तब वह राम के लिए 'निरनुक्रोश' अर्थात निष्ठुर शब्द का ही प्रयोग करती है, जो उनके नारी सुलभ मनोभावों को दर्शाता है । सीता कभी भी अपने कर्तव्यपालन से विमुख नहीं होती हैं । यहाँ तक कि निर्वासन की दशा में भी वह राम को कर्तव्यपालन तथा प्रजानुरंजन के प्रति सजग रहने का संदेश देती हैं । आज्ञापालक लक्ष्मण की कर्तव्यपरायणता पर प्रसन्न होती हैं । यहाँ सदाशयता और उनके उदारता का परिचय मिलता है ।

राम के प्रति सीता का अनन्य अनुराग तथा असीम श्रद्धा है । वह मन, वचन तथा कर्म से राम से ही प्रेम करती हैं । राम के प्रति कटु शब्दों को सुनना भी नहीं चाहती हैं । वेदवती से वार्तालाप करते समय सीता कहती हैं- " अथ शरीरेण न पुनर् हृदयेन[2] " अर्थात् शरीर से परित्यक्त की गई हूँ हृदय से नहीं । वेदवती कहती है कि यज्ञ में अश्व के लिए सहधर्मचारिणी की आवश्यकता होती है इसलिए पाणिग्रहण अवश्य करना पड़ता है । तब सीता कहती हैं- आर्यपुत्रस्य हृदय प्रभवामि, न पुनर् हस्ते[3] "अर्थात् आर्य पुत्र के हृदय

1- कुन्दमाला- पृ0 27
2- कुन्दमाला- पृ0 70
3- कुन्दमाला- पृ0 72

पर मेरा अधिकार है, हाथ पर नहीं । सीता की यह उक्ति मानव के मनोविज्ञान पर दिङ्नाग की गहरी पकड़ दर्शाती है । यह एक सर्वानुभूत तथ्य है कि व्यक्ति पर व्यक्ति का स्वामित्व संभव नहीं होता, सम्बन्धों में बंध कर भी नहीं यदि कोई किसी पर शासन कर सकता है तो केवल प्रेम के द्वारा और यदि हृदय किसी के प्रेम का शासन स्वीकार करे तो वहाँ सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण नहीं होते । यदि श्री राम दूसरा विवाह कर भी लेते तो भी उनके मन पर सीता का ही साम्राज्य रहता । प्रेम की इस शक्ति का अभिज्ञान और तज्जन्य आत्मविश्वास ही सीता की उक्ति में परिलक्षित होता है ।

दीर्घिका पर राम के मूर्च्छित हो जाने पर भी सीता अत्यन्त कष्ट का अनुभव करती हैं । राम कहते हैं कि - तुम मेरे हृदय में निवास करने वाली गृह देवी हो, तुम ही मेरे स्वप्न में आने वाली शयन काल की सखी हो, अब मेरा मन अन्य दूसरी पत्नी को लाने की इच्छा नहीं रखता है अत: मेरे यज्ञ में तुम्हारी ही प्रतिमा मेरी धर्मपत्नी होगी[1] । इससे राम तथा सीता का दृढ़ प्रेम दिखाई देता है । सीता कहती हैं- उक्त संदेश को सुनकर मेरे हृदय से परित्याग का दु:ख पूर्ण रूप से दूर हो गया है । यदि वे अन्य स्त्री से विवाह कर लेते तो परित्याग किसी भी प्रकार सहन नहीं होता ।

सीता गुरूजनों का आदर करती हैं और अपनी माताओं पर श्रद्धा करती हैं । वह संसार के सभी शिष्ट व्यवहारों से परिचित हैं । सीता संस्कारी और धर्मपरायण हैं । किसी भी सामान्य भारतीय नारी की भाँति वे भी धार्मिक भावनाओं तथा मनोतियों में विश्वास रखती हैं ।वाल्मीकि के साथ आश्रम जाती हुई सीता भागीरथी जी से प्रार्थना करती हैं कि " यदि मैं कल्याण-पूर्वक सन्तान को उत्पन्न करूंगी तो प्रतिदिन सुन्दर रीति से गुँथी हुई

1- कुन्दमाला- 1/14

कुन्दमाला बनाकर आपको भेंट किया करूंगी[1] ।

षष्ठ अंक में सीता वाल्मीकि की आज्ञा से अपने चरित्र की विशुद्धता प्रमाणित करने के लिए देवी का आह्वान करती हैं । वे कहती हैं कि यदि मैं ने मन, वचन व कर्म से राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरूष को न देखा अथवा चाहा हो तो पृथ्वी देवी आकर मेरे हृदय की पवित्रता को संसार के सामने प्रकाशित करें । भगवती पृथ्वी पाताल से प्रादुर्भूत होकर सीता के पवित्र पातिव्रत्य का सत्यापन करती है[2] । इससे सीता के सतीत्व की गरिमा प्रतिष्ठित होती है । वाल्मीकि द्वारा राम को तिरस्कृत करने पर अपने को मन्दभागिनी कहती है । अतः कुन्दमाला में भी सीता को स्वकीया नायिका आदर्श नारी, धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत, कर्तव्यपरायण नारी के रूप में चित्रित किया गया है ।

उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला में सीता-तुलनात्मक समीक्षा -

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला दोनों ही नाटकों में सीता राम की धर्मपत्नी, पृथ्वी की पुत्री, जनक की कन्या तथा स्वकीया नायिका हैं । नारी जनोचित् सभी गुण उनमें पूर्ण रूप से विद्यमान हैं । दोनो ही नाटककारों ने सीता के चरित्र का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया है । नाटककारों ने सीता के चरित्र के सभी गुणों पर प्रकाश डाला है किन्तु दोनों की अभिव्यक्ति में अन्तर है । सीता राम से अनन्य प्रेम करती हैं । दोनों ही नाटकों में सखी द्वारा राम की कटु आलोचना करने पर उन्हें क्रोध आता है और वे अपनी सखी को ही कठोर कहने लगती हैं । अकारण त्याग दिये जाने पर उन्हें असह्य पीड़ा

1- कुन्दमाला- पृ0 55
2- कुन्दमाला- पृ0 279

होती है । किन्तु छाया रूप से राम के विचारों को जानकर कि " अश्वमेध यज्ञ में सहधर्मचारिणी के स्थान पर सीता की स्वर्ण-मूर्ति स्थापित की है " उन्हें आत्मसंतोष होता है और उनके मन का कालुष्य भी मिट जाता है । विरहाकुल राम पूर्व-स्मृतियों के संवेग से जब मूर्च्छित हो जाते हैं तब वे स्वयं दौड़कर उनकी मूर्च्छा को दूर करती हैं । इसप्रकार दोनों नाटकों में वे मन, वचन व कर्म से राममय दिखाई देती हैं ।

मानवेतर प्राणियों के प्रति भी सीता का वात्सल्य देखा जाता है किन्तु उत्तररामचरितम् में सीता के सौम्य शील में प्रकृति प्रेम अधिक देखा जाता है । कुन्दमाला में प्रकृति तथा वन्य जीवों के प्रति सीता के प्रेम का चित्रण नहीं हुआ है । अतः सीता स्वभाव से पवित्र तथा कर्तव्यपरायण स्त्री है । उनमें नारी के समस्त उदात्त गुण विद्यमान हैं ।

<u>उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में लक्ष्मण</u> - भवभूति ने लक्ष्मण के चरित्र को बड़े सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है । वे राम के आदर्शवादी दृष्टिकोण के एक यथार्थवादी पूरक के रूप में सामने आते हैं । उत्तररामचरितम् में लक्ष्मण के दर्शन हमें प्रथम तथा सप्तम अंक में होते हैं । वे संवेदनशील व्यक्ति हैं । बहुत अन्तराल के बाद सीता अपने पिता जनक से मिलती है । जनक जी के चले जाने पर सीता अत्यन्त दुःखी होती हैं । लक्ष्मण दुःखित सीता के मन को पूरी तरह से बहलाना जानते हैं इसीलिए राम तथा सीता से चित्रवीथिका देखने का आग्रह करते हैं । स्वयं राम भी उनकी प्रशंसा करते हैं - " जानाति वत्स दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्"[1]। यहां पर लक्ष्मण की संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति होती है । विवाह का प्रसंग आने पर लक्ष्मण सीता, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति का चित्र में परिचय कराते हैं । संकोचवश उर्मिला का नाम छोड़ देने पर सीता उनके साथ

1- उत्तररामचरितम् - पृ0 27

विनोद करती हैं किन्तु लक्ष्मण मुस्कराकर शान्त हो जाते हैं । इससे उनकी सीता के प्रति मातृवत् श्रद्धा और उनके गम्भीर व्यक्तित्व का पता चलता है । राम के भावुक हो जाने पर लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना देते हैं तथा उन चित्रों से ध्यान हटाकर जटायु प्रसंग की ओर राम तथा सीता को उन्मुख करते हैं । जटायु प्रसंग को प्रस्तुत करके लक्ष्मण एक महापुरूष के धैर्यविगलन को समाप्त कर देते हैं ।

लक्ष्मण एक आज्ञाकारी अनुज हैं । कठोर-गर्भा सीता को वे एक आज्ञाकारी अनुज की तरह राम के आदेश से वन छोड़कर आते हैं हालांकि वे इस आज्ञा से असन्तुष्ट थे किन्तु आज्ञा को ही सर्वोपरि मानते हैं । वाल्मीकिकृत गर्भांक नाटक के अभिनय को प्रस्तुत कराने के लिए श्री राम सारा प्रबन्ध लक्ष्मण को ही सौंपते हैं । गर्भांक नाटक को देखते समय नाट्य की वस्तुओं को सत्य मानकर राम के अत्यन्त भावुक हो जाने पर लक्ष्मण उन्हें यथार्थ की ओर लौटाने का प्रयत्न करते हैं । लक्ष्मण उन्हें हर क्षण आश्वासन देते हैं तथा राम के मूर्च्छित हो जाने पर लक्ष्मण अत्यन्त चिन्तित हो उठते हैं और कहते हैं - "भगवान् ! परित्रायस्व, परित्रायस्व, एष ते काव्यार्थः[1] " लक्ष्मण अपने कर्तव्य से विदित हैं तथा राम और सीता का मिलन हो जाने के पश्चात् सीता को प्रणाम करते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में लक्ष्मण की भूमिका विस्तृत न होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली तथा महत्त्वपूर्ण है ।

उत्तररामचरितम् की अपेक्षा कुन्दमाला में लक्ष्मण की भूमिका विस्तृत रूप से चित्रित की गई है । उत्तररामचरितम् की भाँति ही कुन्दमाला के लक्ष्मण भी आज्ञाकारी लघुभ्राता हैं । सीता निर्वासन के समय वे जानते हैं कि सीता निष्कलंक है किन्तु राम की आज्ञा मानकर सीता को रथ में बैठाकर वन ले जाते हैं । वन की विषम-भूमि पर रथ के चलने से पूर्ण गर्भा सीता के थक जाने

1- उ०च० पृ० 353

पर रथ रूकवाकर उनकी थकान के दूर हो जाने पर सोचते हैं कि अब सीता की मनः स्थिति देखकर उन्हें राम का संदेश सुना देना चाहिए । लक्ष्मण सीता का सम्मान उसीप्रकार करते हैं जिसप्रकार राम का करते हैं । सीता को अकेले वन में छोड़कर जाते हुए अपने कर्तव्य के अनुसार उनसे संदेश ग्रहण करते हैं तथा लोकपालों, मुनियों, देवताओं, गंगा तथा हिंसक पशुओं से उनकी रक्षा की प्रार्थना करते हैं । इस प्रकार वे अपना उत्तरदायित्व निभाते हैं । वे राम तथा सीता की सेवा में हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं । नैमिषारण्य में भी वाल्मीकि का आश्रम खोजते हुए वे राम के साथ जाते हैं तथा कुन्दमाला और पदचिह्नों को वे ही सर्वप्रथम देखते हैं । पूरे नाटक में लक्ष्मण राम के साथ ही दिखाई देते हैं ।

राम और सीता के प्रति लक्ष्मण के हृदय में अपार आदर है इसीलिए जब कंचुकी कथा गान से पूर्व कहता है कि " महाराज दशरथ की कौशल्या आदि ये तीन महारानियाँ हैं तथा भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की ये तीन पत्नियाँ हैं " तब लक्ष्मण तुरन्त ही कहते हैं कि " आपने विदेहराज पुत्री सीता को महारानियों में नहीं गिना और न ही वधुओं में गिना है[1] ।" जब लव और कुश रामायण की कथा को सुनाते हैं तब सीता निर्वासन का प्रसंग आने पर लक्ष्मण कहते हैं - " अहो अयशो भागी लक्ष्मणः[2] " । अर्थात् मैं लक्ष्मण कितना अपयश का भागी हूँ अर्थात् यह कैसी अपकीर्ति मैं ने अर्जित की है । इससे उन्हें आत्मग्लानि होती है किन्तु राम की आज्ञा को ही सर्वोपरि मानना वे अपना धर्म समझते हैं । वाल्मीकि की आज्ञा से राम सीता को ग्रहण करते हैं तब लक्ष्मण सीता को लज्जित होकर प्रणाम करते हैं तथा कहते हैं - "आर्ये, वध्यः पातकी लक्ष्मणः प्रणमति[3] " । अतः देखते है कि सीता के निर्वासन से उत्पन्न

1- कुन्दमाला - पृ0 234
2- कुन्दमाला- पृ0 243
3- कुन्दमाला - पृ0 282

ग्लानि अब भी उनके हृदय से निकल नहीं पायी है । राम लक्ष्मण को राज्यभार सौंपने का प्रस्ताव रखते हैं किन्तु लक्ष्मण तुरन्त नि:स्पृह भाव से श्री राम से अनुरोध करते हैं कि - यदि प्रसन्नम् आर्येण, तेन तनयसंक्रामिणा युवराज-शब्देन विभज्यतां चिर-कालाऽनुचर: सौमित्रि:" । अर्थात् यदि आप प्रसन्न हैं तो बहुत लम्बे समय से सेवा करने वाले सेवक का यह निवेदन स्वीकार करें कि यह युवराज पद अपने पुत्र कुश तथा लव को प्रदान करें । यहां भी लक्ष्मण की उदारता विनय, शिष्टता और नि:स्पृहता दर्शनीय है ।

तुलनात्मकसमीक्षा - उत्तररामचरितम् की अपेक्षा कुन्दमाला में लक्ष्मण का चरित्र कुछ अधिक मुखरित हुआ है किन्तु दोनों में ही लक्ष्मण को एक आज्ञाकारी लघुभ्राता के रूप में चित्रित किया गया है ।

उत्तररामचरितम् में लक्ष्मण सीता को राम की आज्ञा से वन छोड़कर वापस आ जाते हैं किन्तु कुन्दमाला में सीता को वन में छोड़ने के पश्चात् उचित अवसर देखकर सीता को निर्वासन का कारण भी बताते हैं तथा सभी वन्य प्राणियों से उनकी रक्षा की प्रार्थना करते हैं । उत्तररामचरितम् की अपेक्षा कुन्दमाला मे लक्ष्मण के चरित्र का अधिक सुन्दर चित्रण है और उत्तररामचरितम् में जहां वे केवल राम के आदेश का पालन करने वाले लघु भ्राता के रूप में उभरते है वहीं कुन्दमाला में वे अधिक संवेदन शील और भावुक रूप में सामने आते हैं । दोनों नाटकों में ही लक्ष्मण श्री राम के भावुक तथा दु:खित होने पर उन्हें सान्त्वना देते हैं । सीता निर्वासन का प्रसंग आने पर वे अत्यन्त आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं ।

लक्ष्मण के चरित्र का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि भवभूति ने लक्ष्मण के चरित्र का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है किन्तु कुन्दमालाकार ने लक्ष्मण के चरित्र को पूर्ण विकसित किया है । अटूट भ्रातृ प्रेम,

1- कुन्दमाला - पृ0 286

अनन्य आत्मसमर्पण, श्रद्धा, भक्ति और नि:स्वार्थ सेवा के लक्षण अनुपम आदर्श है । पूरी रामकथा में राम को लक्ष्मण से अलग करके नहीं देखा जाता, मानो वे श्री राम के व्यक्तित्व का विस्तार हो । यही कारण है कि रामकथा को आश्रय बनाकर लिखे गये नाटकों में लक्ष्मण की भूमिका किसी न किसी रूप में अनिवार्यत: रही है । चूंकि दोनों ही आलोच्य नाटक सीता के निर्वासन को केन्द्र बिन्दु बनाकर चलते हैं और वे लक्ष्मण ही है, जिन्हें श्री राम सीता को वन में निर्वासित करने का उत्तरदायित्व सौंपते हैं । अत: इन नाटकों में लक्ष्मण की भूमिका महत्त्वपूर्ण है ।

उत्तररामचरितम् में लव, कुश तथा चन्द्रकेतु का चरित्र सफलता पूर्वक चित्रित किया गया है । बालनेताओं के चरित्रांकन में भवभूति को अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है ।

<u>चन्द्रकेतु</u> - चन्द्रकेतु सभी वीरोचित् गुणों से युक्त है । जो धैर्य शान्ति आदि हमें लक्ष्मण में दिखाई देती है वही चन्द्रकेतु में भी दृष्टिगत होती है । वह स्वयं वीर है तथा वीर का आदर करना जानता है । उसकी योग्यता, वीरता साहस एवं युद्ध कौशल को देखकर ही राम ने उसे अश्व की रक्षा का उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करने के लिए नियुक्त किया है और चन्द्रकेतु उसे सफलता पूर्वक निभाता है ।

सुमन्त्र के प्रति उसका आदर-भाव अनेक स्थलों पर देखा जाता है[1] । अपनी सेना के साथ लव को वीरता-पूर्वक युद्ध करते देखकर वह उसकी उदारतापूर्वक प्रशंसा करता है[2] । जब अनेक सैनिक उस अकेले वीर पर एक साथ आक्रमण करते हैं तब वह कहता है - " मम त्वेक-मुद्दिश्य भूयसामारम्भ इति हृदयमपत्रपते "[3] । वह वीरोचित ललकार द्वारा लव को अपनी ओर आकर्षित

1- उ0च0- पृ0 276

2- उ0च0 - 5/2

3- उ0च0- पृ0 258

करता है -

भो भो लव महाबाहो किमेभिस्तव सैनिकैः
एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु ।।

अर्थात् हे ! विशालबाहु ! लव ! इन सैनिकों से तुम्हें क्या करना है यह रहा मैं ! मेरी ओर आओ ! लोहे को लोहे से कटने दो ।

वह वीर धर्म का पालन न करने वाले अपने सैनिकों के प्रति अत्यन्त रूष्ट होता है[2] । वह लव के साथ युद्ध करने से पूर्व उसे पैदल देखकर उससे रथ पर आरूढ़ होने का अनुरोध करता है किन्तु जब लव उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तब वह स्वयं नीचे उतर जाता है । इससे प्रतीत होता है कि चन्द्रकेतु न केवल धर्मनियमों से परिचित था किन्तु उनका पालन भी करता है ।

राम के प्रति चन्द्रकेतु के मन में अपार श्रद्धा है । उनके विरूद्ध वह एक भी शब्द सुनना पसन्द नहीं करता । जब लव राम के पराक्रम की आलोचना करने लगता है तब चन्द्रकेतु उत्तेजित हो जाता है किन्तु उन दोनों में अनायास ही मित्रता होती है दोनों का क्रोध शान्त हो जाता है । युद्ध शान्त होने पर वह उसे अपना मित्र मानता है तथा राम को उसका परिचय देता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रकेतु भी नाटक में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । कुन्दमाला में चन्द्रकेतु का वर्णन नहीं हुआ है ।

लव- लव बारह वर्षीय बालक है[3] । उसके रूप में अद्भुत आकर्षण है । अनेक बालकों

1- उ०च०- 5/7

2-उ०च० - 5/12

3-उ०च० - अथ खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य सङ्ख्यामङ्गलग्रन्थिरभिवर्तते । पृ० 135

के साथ खेलते हुए लव पर कौशल्या की दृष्टि रुक जाती है और उसके रूप को देखकर उन्हें राम की बाल्यावस्था का स्मरण हो आता है । जनक, कुञ्चुकी, अरुन्धती सभी के मन को लव चुम्बक की तरह आकर्षित कर लेता है ।

लव विनय-शील है । अपरिचित होते हुए भी सभी गुरुजन उसके लिए पूज्यनीय हैं । वह निश्चय नहीं कर पाता है, किस क्रम से उन्हें प्रणाम करें । वह विनय पूर्वक उनके पास पहुंच कर कहता है - " एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्याय: "[1] गुरुजनों के साथ लव का वार्तालाप अत्यन्त मोहक तथा प्रभावोत्पादक है । वह अपने माता पिता को नहीं जानता है । वह केवल इतना ही जानता है कि वह महर्षि वाल्मीकि का बालक है । राम और लक्ष्मण से उसका परिचय रामायण के पात्र होने के कारण है । चन्द्रकेतु के आगमन का वृत्तान्त सुनकर वह जनक से उसका परिचय पूछता है और वह उसे लक्ष्मण का पुत्र बताते है तब वह उनसे कहता है - "उर्मिलाया: पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्र: ।"[2]

वह रामायण के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी पारंगत है । वह शूर वीर है क्यों कि वह समस्त क्षत्रिय जाति के अपमान को सहन करने में असमर्थ है और वह " रे रे महाराजंप्रति कुत: क्षत्रिया: ।" के उत्तर में कहता है - "धिग् जाल्मान्-यदि नो सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका । किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि व: "[3] विरोधी भी उसके शौर्य की प्रशंसा करते है । उसे जन्म से जृम्भकास्त्र प्राप्त है । वह अकेला ही राम की विशाल सेना पर विजय प्राप्त कर लेता है । बालक होते हुए भी वह युद्ध स्थल में अत्यन्त पराक्रमी, साहसी योद्धा के समान युद्ध करता है । चन्द्रकेतु के साथ युद्ध करते हुए वह जिस पराक्रम

1- उ०च० पृ० 238
2- उ०च० पृ० 242
3- उ०च० पृ० 252 4/28

वीरता तथा युद्ध-पटुता का परिचय देता है वह भी असाधारण है ।

चन्द्रकेतु को देखकर उसके प्रति लव का मन सहसा उसकी ओर आकर्षित हो जाता है । वह सोचता है कि इसके शरीर पर बाणों का प्रहार कैसे करूं । राम के प्रति लव के मन में कोई द्वेष नहीं है अपितु अश्व-रक्षकों की गर्व-पूर्ण उक्तियां उसको युद्ध के लिए उत्तेजित करती है । वह राम की आलोचना करने पर भी संकोच नहीं करता है किन्तु राम के दर्शन-मात्र से उसका विरोध शान्त हो जाता है और चन्द्रकेतु द्वारा परिचय दिये जाने पर वह उन्हें प्रणाम करता है ।

<u>कुश</u>- लव और कुश दोनों जुड़वा भाई है । यह भी बारह वर्षीय बालक है । दोनों की आयु में कुछ ही क्षणों का अन्तर है परन्तु अग्रज होने के कारण वह लव के ऊपर विशेष उत्तरदायित्व का अनुभव करता है । वाल्मीकि ने अपने शिष्यों में उसे सबसे अधिक वीर, साहसी और समझदार समझकर ही अपनी रामायण के अप्रकाशित भाग को भरतमुनि के पास भेजने का महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा है ।

वह अत्यन्त वीर तथा ओजस्वी है जैसे ही उसे विदित होता है कि लव का राजा की सेना के साथ युद्ध चल रहा है वह ललकारता है[1] । उसकी ललकार सुनकर राम कहते हैं - कोऽप्यस्मिन् क्षत्रियपोतके पौरुषातिरेकः[2]"

कुश का स्वाभिमान उस समय प्रकट होता है जब लव उससे श्री राम को प्रणाम करने के लिए कहता है और कहता है कि " आर्य आप दर्पभाव को छोड़कर विनय से काम लें[3] ।" तब कुश क्रोध त्याग कर विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम

1- उ0च0 - 6/18
2- उ0च0 - पृ0 311 6/19
3- उ0च0- पृ0 312

करता है । लव की अपेक्षा कुश में व्यवहारिक ज्ञान अधिक है । राम के मुखमण्डल पर छाये हुए अश्रुकणों का कारण जब लव की समझ में नहीं आता तो कुश उसे समझाता है कि-

> विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपते:
>
> प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ।।[1]

यहाँ कुश की बुद्धिमत्ता और संवेदन शीलता का परिचय मिलता है । अत: कुश भी वीर, साहसी, ओजस्वी, बुद्धिमान, प्रतिभाशाली, स्वाभिमानी तथा विनय से परिपूर्ण है ।

कुन्दमाला में लव तथा कुश - दोनों दस वर्षीय बालक है[2] । इन बालकों का जन्म वाल्मीकि आश्रम में हुआ है । इनका नामकरण संस्कार आदि भी वाल्मीकि जी के द्वारा सम्पन्न हुआ है तथा रामायण को सस्वर लयपूर्ण पढ़ाया है । वे दोनों बालक अत्यन्त सुन्दर है । उनकी सुन्दरता का वर्णन दिङ्नाग ने इस प्रकार किया है -

> धावतो हरिणकैर्यथा प्रतिमल्ला किशोर-सिंहानाम् ।
>
> तथा च तपस्विनी-हृदयं हरति प्रिय-दर्शनं युगलम् ।।[3]

अर्थात् वे दोनों बच्चे तो हरिणों के समान दौड़ते हैं और सिंह के बच्चों से कुश्ती लड़ते हैं, इन दोनों बच्चों का जोड़ा अपने सुन्दर दर्शन से तपस्विनियों के हृदय को आकर्षित करता है । वे दोनों अत्यन्त पराक्रमशील है । षष्ठ अंक में कञ्चुकी, लव, कुश तथा लक्ष्मण की उपमा तीनों वेद {ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद}

1- उ0च0 - 6/30

2- कुन्दमाला- पृ0 209- सर्वथाऽद्य दशम: संवत्सरो देव्या: सीताया: स्वहस्तेन परिप्रेषिताया ।

3- कुन्दमाला- 2/1

से करता है । जिस समय वाल्मीकि की आज्ञा से लव और कुश रामायण की कथा सुनाने के लिए प्रस्थान करते हैं तो सीता लव से राजा का कुशल पूछने तथा प्रणाम करने के लिए कहती हैं किन्तु लव से माता की आज्ञा जानकर कुश राम को प्रणाम नहीं करना चाहता है और लव से कहता है कि " अप्रणामसारः किल अस्मद्-वश्याः "।[1] परन्तु लव कहता है कि यह माता जी की आज्ञा है अतः हम दोनों को प्रणाम करना चाहिए । दोनों हृदय से पवित्र निर्भीक तथा शिष्टाचार से पूर्ण परिचित है । कुश तथा लव अपनी माता को तथा गुरू वाल्मीकि को जानते हैं । पिता के विषय में दोनों को केवल इतना ही ज्ञात है कि वे जीवित है और उनका नाम "निरनुक्रोश "[2] है क्यों कि माँ कभी कभी इस नाम से पिता को सम्बोधित करती है ।दोनों दशरथ विवाह से लेकर सीता निर्वासन तक की कथा सुनाते हैं उन दोनों को यह ज्ञात नहीं है कि वाल्मीकि ने इसके आगे की कथा का निर्माण किया है या नहीं । उन्हें अपनी माता का नाम भी विदित नहीं है । राम द्वारा पूछने पर वह कहते है कि वाल्मीकि जी उन्हें "बहु" तथा आश्रमवासी "देवी" इस सम्बोधन से सम्बोधित करते हैं । रामायण की कथा सुनने के पश्चात् दोनों को यह विदित होता है कि यह राम वही हैं जिन्होनें निरपराध पवित्र सीता को निर्वासित किया है तथा यही वह लक्ष्मण हैं जो राम की आज्ञा से सीता को वन छोड़कर आये थे । कण्व से सम्पूर्ण रहस्य के ज्ञात हो जाने पर वे दोनों हर्षातिरेक से मूर्च्छित हो जाते हैं । वाल्मीकि की आज्ञा से तुरन्त सीता प्रवेश करती है तथा अपने कर स्पर्श से उन्हें सचेत करती है । अन्त में राम कुश तथा लव को युवराज पद प्रदान करते हैं । दोनों ही बालक धार्मिक कार्य के प्रति श्रद्धालु, कुशाग्र बुद्धि वाले, वीर, साहसी है ।

1- कुन्दमाला- पृ0 196

2- कुन्दमाला- पृ0 218

तुलनात्मक समीक्षा- उत्तररामचरितम् में लव और कुश बारह वर्षीय बालक है जबकि कुन्दमाला में उनकी आयु दस वर्ष बताई गई है । लव और कुश की अलौकिक वीरता व तेजस्वी व्यक्तित्व का जितना ओजस्वी रूप भवभूति ने अंकित किया है उतना दिङ्नाग नहीं कर सके हैं । दिङ्नाग ने लव के युद्ध का वर्णन नहीं किया है ।

दोनों ने ही लव और कुश के सौन्दर्य का वर्णन किया है । दिङ्नाग ने अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण किया है कि दोनों बच्चों ने अपने सुन्दर दर्शन से तपस्विनियों के हृदय को आकर्षित कर लिया है जब कि उत्तररामचरितम् में अनेक आश्रम बालों के साथ खेलते हुए लव के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर अरून्धती जनक, कञ्चुकी तथा महारानियाँ मुग्ध हो जाते हैं ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला नाटकों के नाटककारों ने लव और कुश के आकृति सादृश्य को देखकर राम तथा सीता का स्मरण कराया है । उत्तररामचरितम् में कौशिल्या कहती हैं- कि लव का मुख मेरी प्यारी पतोहु के मुखशशि से तथा राम से मिल रहा है[1] । जनक भी कहते हैं कि इस बच्चे में बेटी जानकी तथा रघुकुलधुरन्धर राम का सम्बन्ध प्रतिबिम्बित सा हो उठा है[2] । सुमन्त्र कहता है कि -

> अतिशयितसुरासुरप्रभावं शिशुमवलोक्य तथैव तुल्यरूपम् ।
> कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि ।।[3]

अर्थात् सुरों और असुरों का भी अतिक्रमण कर जाने वाले प्रभाव-वाले इस बालक को वैसे ही सदृश आकार-वाला देखकर मैं विश्वामित्र जी के यज्ञ के शत्रुओं का विनाश करते समय धनुष धारण करने वाले राम जी को स्मरण करने लगा हूँ ।

1- उ०च० पृ० 240
2- उ०च० पृ० 241 4/22
3- उ०च० 5/4

राम भी लव को देखकर कहते हैं - यह बालक एक साथ ही मुझे कष्टों से विश्राम प्रदान कर रहा है और जाने किस कारण से मेरी अन्तरात्मा को स्नेह से भर दे रहा है।[1]

कुन्दमाला में लव तथा कुश को देखकर विदूषक कहता है कि - बालक होने के कारण अभी पूर्ण शारीरिक विशालता को प्राप्त करने वाले, आलस्य रहित सुन्दरता में कामदेव के पुत्रों के समान, सुन्दर सालवृक्ष के समान ऊँचे कद वाले, शरीरधारिणी चेष्टा के समान चंचल, महाबल-शाली, अत्यन्त धीरज स्वभाव वाले मेरे मित्र राम के ही अंश से उत्पन्न हुए के समान, चन्द्रमा की कला के समान, दर्शन में आनन्द देने वाले आये हुए अति सुन्दर दो तपस्वी बालकों को देखा।[2] राम भी कहते हैं कि मैं इन दोनों तपस्वी बालकों को देखते ही न सही जाने वाली असह्य पीड़ा की दशा में पहुँच गया हूँ।[3]

इस प्रकार दोनों ही नाटककारों ने लव और कुश के आकृति सादृश्य का बड़ा ही हृदय स्पर्शी वर्णन किया है।

दोनों नाटकों में ही पहले श्री राम को प्रणाम न करने में कुश का स्वाभिमान प्रकट होता है किन्तु बाद में दर्पभाव छोड़कर श्री राम को विनय-पूर्वक प्रणाम करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति ने लव तथा कुश के चरित्र का अत्यन्त विशद एवं विस्तृत चित्रण किया है जब कि दिङ्नाग की कृति में उनके चरित्र का ~~चरित्र का~~ रेखांकन मात्र है।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में वाल्मीकि- आर्षदृष्टि-सम्पन्न ऋषि हैं। परमदुखकातर सिद्ध तपस्वी है, वह रामायण के प्रणेता हैं।[4] यद्यपि वह समाजिकों के समक्ष नाटक के अंतिम अंक में ही आते हैं किन्तु उनकी उपस्थिति अन्य अंकों

1- उ0च0 - पृ0 303

2- कुन्दमाला- पृ0 189

3- कुन्दमाला- पृ0 210

4- ऋषेः प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्।
अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु। आद्यः कविरसि, इत्युक्त्वान्तर्हितः। उ0च0पृ0 92

में भी अनुभव की जा सकती है । वनदेवता के शब्दों में वाल्मीकि पुराणब्रह्म के व्याख्याता है, जिनके पास मुनिजन ब्रह्मविद्या के अध्ययनार्थ आते हैं[1]। भागीरथी ने राम के पुत्रों लव और कुश की शिक्षा-दीक्षा तथा पालन का दायित्व वाल्मीकि को ही सौंपा है । वे अपनी आर्ष दृष्टि से सीता-निर्वासन के पश्चात् सभी घटनाओं को देखने में समर्थ हैं[2]। उनके प्रभाव से समस्त त्रैलोक्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय, पुरवासी, जनपदवासी, देव, असुर, पशु-पक्षी व स्थावर जंगम प्राणी गर्भांक नाटक को देखने के लिए गंगा तट पर एकत्र होते हैं[3]। गर्भांक के अन्त में राम के मूर्च्छित हो जाने पर वाल्मीकि की आज्ञा से एक पवित्र आश्चर्य घटित होता है । भागीरथी तथा पृथ्वी सीता को लेकर जल से निकलती है तथा सीता को अरून्धती को सौंप देती है । सीता अरून्धती की आज्ञा से राम को पाणि-स्पर्श द्वारा संजीवित करती हैं । राम के संजीवित हो जाने के पश्चात् भागीरथी तथा पृथ्वी कहती हैं कि चित्रदर्शन के समय आपने जो प्रार्थना की थी उसे मैंने पूरा कर दिया है । राम उन दोनों देवियों से क्षमा मांगते हुए प्रणाम करते हैं । इसके अनन्तर अरून्धती नगरवासी तथा ग्रामवासियों को सम्बोधित कर सीता की शुद्धता पर सन्देह करने के लिए उनकी निन्दा करती है । अन्त में अरून्धती के कहने पर राम सीता को स्वीकार करते हैं तथा वाल्मीकि द्वारा लाये गये लव और कुश अपने माता पिता से मिलते हैं । इस प्रकार वाल्मीकि जी उदार-मना तथा रघुवंश के शुभचिन्तक के रूप में दिखाई देते हैं ।

उत्तररामचरितम् के अनुसार कुन्दमाला नाटक में भी वाल्मीकि महत्त्वपूर्ण पात्र है । सभी फलित कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुए हैं । निर्वासित

1- उ०च० पृ० 88
2- उ०च० पृ० 336
3- उ०च० पृ० 334

सीता को आश्रय प्रदान करने में इनकी उदारता प्रकट होती है । ये जनक तथा दशरथ के मित्र हैं इसीलिए वाल्मीकि सीता को पुत्री तथा पुत्रवधु मानते हैं । आश्रम वालों से क्रन्दन करती हुई किसी स्त्री का समाचार सुनकर उसको शरण देने के लिए स्वयं आते हैं किन्तु राम द्वारा निर्वासित जान कर लौटते हैं, तभी अपनी आर्ष-दृष्टि से समस्त वृत्तान्त को समझकर सीता को अपने साथ आश्रम ले जाते हैं वहीं कुश और लव का जन्म होता है तथा वाल्मीकि जी उनका नामकरण संस्कार करते हैं तथा कुछ बड़े होने पर रामायण की कथा का उपदेश देते हैं ।

लव और कुश राम की सभा में उपस्थित होकर सीता निर्वासन तक की कथा सुनाते हैं तब कण्व इसके बाद की कथा सुनाते हैं । सब समाचारों के विदित हो जाने पर राम, लक्ष्मण, कुश तथा लव मूर्च्छित हो जाते हैं । इस दृश्य को देखकर वाल्मीकि जी सीता को स्पर्श करके सचेत करने की आज्ञा देते हैं । सभी की मूर्च्छितावस्था दूर हो जाने पर वाल्मीकि राम के ऊपर आक्रोश प्रकट करते हैं - कि अग्नि देवता द्वारा जिसकी शुद्धता का प्रमाण दिया गया, पवित्र सन्तान को उत्पन्न करने वाली सीता को केवल लोकापवाद के कारण निर्वासित कर दिया । तत्पश्चात् वाल्मीकि राम को सीता की शुद्धता का प्रमाण पृथ्वी द्वारा दिलाकर कुश और लव को समर्पित करके आश्रम लौट जाते हैं ।

वाल्मीकि आरम्भ से अन्त तक रघुकुल के लिए ही समर्पित दिखाई देते हैं । कुन्दमाला में वाल्मीकि का चरित्र एक विशेष स्थान रखता है ।

<u>तुलनात्मक समीक्षा</u>- दोनों में ही वाल्मीकि आर्ष-दृष्टि सम्पन्न ऋषि तथा रामायण के प्रणेता हैं । नाटकों में वाल्मीकि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है तथा वे आदि से अन्त तक राम-सीता के लिए ही समर्पित रहे हैं ।

उत्तररामचरितम् में वाल्मीकि को पुराणब्रह्म का व्याख्याता कहा है[1]। दोनों नाटकों में ही वाल्मीकि लव तथा कुश की शिक्षा-दीक्षा तथा नामकरण-संस्कार करते हैं।

उत्तररामचरितम् में वाल्मीकि विरचित नाटक का अभिनय होता है जबकि कुन्दमाला में लव और कुश रामायण का गान करते हैं।

दोनों में ही वाल्मीकि की आज्ञा से राम का सीता लव तथा कुश से मिलन होता है। निष्कर्षत: दोनों नाटकों में वे नि:स्पृह, सहायक, उदारहृदयी एवं स्पष्ट वक्ता महर्षि के रूप में सामने आते हैं।

नायक की फलप्राप्ति में विघ्न डालने वाला नायक का शत्रु प्रतिनायक कहलाता है। वह लोभी, धीरोद्धत, घमण्डी, पापी तथा व्यसनी होता है[2]। जैसे वेणीसंहार में युधिष्ठर का प्रतिनायक दुर्योधन तथा रामायण में राम का रावण है। उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में प्रतिनायक का सर्वथा आभाव है।

श्रृंगार रस परक नाटकों में विट, विदूषक आदि नायक के सहायक होते हैं[3]। इसमें विदूषक का स्थान प्रमुख है वह अपने हास्य-परिहास और मूर्खतापूर्ण वार्तालाप से नाटक में हास्य की स्थिति उत्पन्न करता है। इन सहायक पात्रों की योजना नाटक में आवश्यकतानुसार ही की जाती है।

<u>विदूषक</u>- संस्कृत नाटकों में विदूषक का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। सम्भवत: भवभूति ने करूणा से ओत-प्रोत अपने नाटक में विदूषक की आवश्यकता नहीं समझी किन्तु दिङ्नाग ने संस्कृत नाटकों की परम्परा का पालन करते हुए कुन्दमाला में विदूषक के पात्र की भी सृष्टि की है। कुन्दमाला में राम का विदूषक कौशिक, अन्य विदूषकों से पृथक बुद्धि रखने वाला एक सामान्य प्राणी है। वह राम का बाल्यकाल का अन्तरङ्ग मित्र है तथा उन्हें मन्त्री के समान परामर्श देता है। वह राम के दु:ख से दु:खी

1- उ0च0- पृ0 88
2- दशरूपकम् - 2/9 लुब्धो धीरोद्धत: स्तब्ध: पापकृद्व्यसनी रिपु:।
3- साहित्यदर्पण- 3/40 श्रृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्या: स्यु:।

तथा सुख से सुखी होता है । कुन्दमाला में विदूषक चतुर्थ अंक में प्रवेश करता है । ये ज्ञातव्य है कि विदूषक सीता निर्वासन का विरोध करता था तथा सीता निर्वासन को अन्याय समझता था किन्तु राम के समक्ष वह उसका विरोध न कर सका[1] । वह स्वामिभक्त है । वैदवती के मुख से तिलोत्तमा वृत्तान्त को सुनकर राम को तुरन्त खोजता हुआ आता है कि कहीं तिलोत्तमा राम को सीता का रूप धारण कर ठगने में सफल न हो जाये । वह राजा के सुख दु:ख दोनों में ही समान रूप से सहायता करता है कहीं पर भी अपने कर्तव्य से च्युत नहीं दिखता । सीता भी विदूषक पर विश्वास करती है कि वह राम का सच्चा शुभचिन्तक है । बावड़ी पर विदूषक को आता हुआ देखकर सीता निश्चिन्त होकर व्याकुल राम को छोड़कर चली जाती है[2] । वह प्रतिक्षण सावधान रहता है । दोनों बच्चों के सिंहासन पर बैठते ही तुरन्त कहता है[3]– " अविधा मुंच, सर्प, मुंच जीवतु तपस्वी-तनय:, अवतरतु सिंहासनत: ! वह उचित परामर्शदाता है तथा मनोरंजन भी करता है । अत: निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि विदूषक राम का कल्याण चाहने वाला, दयालु, उदार विश्वासी मित्र है । वह कहीं कहीं अपनी मूर्खता से सामाजिकों को हंसा देता है ।

नायक के राजकार्य में मन्त्री उसके सहायक होते हैं । अन्त:पुर में विचरण करने वाला वृद्ध, गुणी तथा सब कार्यों में निपुण ब्राह्मण कंचुकी कहलाता है । उत्तररामचरितम् में प्रथम अंक में कंचुकी का वर्णन हुआ है जो सूचना मात्र देता है । कुन्दमाला में षष्ठ अंक में कन्चुकी का वर्णन हुआ है ।

<u>सखियां</u> – नायिका के साथ उसकी दासियों एवं सखियों का वर्णन होता है । उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक में तमसा और मुरला सीता की सखी के रूप में सदा साथ रहती है तथा सीता को विषम-परिस्थितियां आने पर सान्त्वना देती है । वासन्ती भी सीता की दण्डकारण्य की प्रिय सखी है इन सभी देवियों का अस्तित्व एवं व्यक्तित्व अतिप्राकृत है ।

1– कुन्दमाला-पृ0 183   2– कुन्दमाला-पृ0 161   3– कुन्दमाला-पृ0 212

कुन्दमाला में वेदवती, यज्ञवती तथा पृथमा सीता की सखियाँ है । जिसमें वेदवती सीता की अंतरङ्ग सखी है । ये सीता के दु:ख से केवल दु:खी ही नहीं होती बल्कि सीता के क्षुब्ध मानस को सान्त्वना देती है ।

दोनों ही नाटककारों ने नाटकों में दिव्य पात्रों की कल्पना की है। उत्तररामचरितम् में लगभग तीस पात्रों का और कुन्दमाला में लगभग बीस पात्रों का प्रयोग हुआ है । दोनों नाटकों में पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों की संख्या कम है । उत्तररामचरितम् की अपेक्षा कुन्दमाला में सरल नामों का प्रयोग हुआ है। उत्तररामचरितम् में तमसा, मुरला, गोदावरी, पृथ्वी गंगा, वासन्ती, विद्याधर दम्पती आदि दिव्य पात्रों की कल्पना की है । इसके विपरीत दिङ्नाग ने कुन्दमाला में पृथ्वी को ही दिव्य पात्र स्वीकार किया है ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला दोनों नाटकों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति की अपेक्षा दिङ्नाग का चरित्र-चित्रण कुछ कम विकसित है । भवभूति का चरित्र-चित्रण सशक्त और प्रभावोत्पादक है । नाटककारों ने चरित्रांकन में स्वाभाविकता को कहीं नहीं छोड़ा है । नायक तथा नायिका की दृष्टि से भवभूति और दिङ्नाग दोनों के चित्रण में प्राय: समानता दिखाई देती है । दोनों नाटकों में सीता और राम की विरह वेदना का चित्रण अद्वितीय है । जो राम, सीता तथा अन्य पात्रों का उदात्त चरित्र रामकथा में प्रतिष्ठित किया गया है उन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए भवभूति तथा दिङ्नाग ने अपने नाटकों में पात्रों का चित्रण किया है । भवभूति तथा दिङ्नाग ने केवल कोमल और उदार भावों से प्रेरित चरित्रों का अंकन नहीं किया है अपितु भावनाओं की गम्भीरता का भी चित्रण किया है । किन्तु भवभूति में मानव मनोविज्ञान तथा उनकी भावनाओं की गहनतम अनुभूति को परख लेने की अद्भुत शक्ति है । अत: हम कह सकते हैं कि सभी प्रमुख चरित्रों के चित्रण कथानक के साथ साथ रस परिपाक में भी सहायक हुए है ।

पंचम परिच्छेद

उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला - रस निरूपण

कथावस्तु और पात्र विवेचन के पश्चात् प्रस्तुत परिच्छेद में रूपकों के तृतीय भेदक तत्त्व रस की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है । वस्तुतः रस ही नाटक का प्राणतत्त्व है और सामाजिकों को रसानुभूति कराना ही नाटक का प्रमुख उद्देश्य है । चाहे हम प्रकारान्तर में उसको कुछ भी कहें, कुछ भी नाम दें, काव्य अथवा नाटक में "रस" ही एक मूल तत्त्व है जिससे पाठक, श्रोता अथवा दर्शक के सम्मुख वह काव्य चिर-नवीन एवं चिरंजीवी बना रहता है । रस के बिना कोई भी नाट्यांग नहीं चल सकता इसीलिए कहा गया है- "नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते"। धनंजय का नाटक में रस के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रयोजन न स्वीकार करने का सम्भवतः यही कारण है । उन्होंने तो रस के अतिरिक्त दूसरा प्रयोजन मानने वालों का उपहास किया है[1] । अभिनव गुप्त ने भी नाटक को रसास्वाद की दृष्टि से अन्य {श्रव्यकाव्यों} की अपेक्षा श्रेष्ठ माना है । दृश्य और श्रव्य दोनों होने के कारण रस का आस्वादन नाटक से ही होता है । नाटक की अपेक्षा कम रसास्वाद महाकाव्य से और सबसे कम मुक्तक से प्राप्त होता है[2] ।

नाटक में रस का प्रमुख स्थान होने पर भी कथावस्तु और नेता को नगण्य नहीं माना जा सकता । ये तीनों तत्त्व एक दूसरे के आश्रित एवं पूरक है. एक के बिना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं है । डा० सत्यनारायण चौधरी लिखते हैं - वस्तु, नेता और रस इन तीनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । वस्तु और नेता के सम्यक् स्फुटन के बिना रस की निष्पत्ति सम्भव नहीं

1- दशरूपकम् - 1/6

2- तच्च प्रबन्ध एव भवति । वस्तुतस्तु दशरूपक एव । यदाह वामनः- सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः । तद्धि चित्रं चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात् तद्रूपसमर्पणया तु प्रबन्धे भाषा-वेष प्रवृत्त्यौचित्यादिकल्पनात् तदुपजीवने मुक्तके । अभिनव-भारती - षष्ठ अंक पृ० 492

है और रसनिष्पत्ति के बिना वस्तु स्वादहीन तथा नेता म्रियमाण सा हो जाता है । एक के विकृत होने पर शेष दोनों तत्त्व विकलांगप्रतीत होने लगते हैं । वस्तु एवं भाव का यह अपरिहार्य सम्बन्ध कला एवं प्रकृति का चिरन्तन सत्य है और इन तीनों तत्त्वों के सम्यक् सन्तुलन के बिना कोई भी श्रेष्ठ नाट्यकृति सम्भव नहीं हो सकती[1] है ।

विभाव अनुभाव और संचारीभावों के द्वारा अभिव्यक्त वासना-रूप रति आदि स्थायी भाव ही रस कहलाता[2] है ।

भरतमुनि धनंजय आदि आचार्यों ने नाटक में श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र वीर, भयानक वीभत्स तथा अद्भुत ये आठ रस ही माने[3] हैं । भरतमुनि ने नाटक में शान्त रस की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है । धनञ्जय ने भी शान्त रस को नहीं माना[4] है । मम्मट ने "निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः[5] "कहकर शान्त रस को भी स्वीकार किया है ।ये नौ रस मनुष्य की विभिन्न मनःस्थितियों से सम्बन्ध रखते हैं । रसों से सम्बद्ध आठ प्रकार के स्थायी-भाव माने गये हैं- रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय[6] ।

1- उत्तररामचरितम् की शास्त्रीय समीक्षा- पृ0 16

2- विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम् ।। सा0द0 - 3/1

3- श्रृंङ्गारहास्यकरूणा रौद्रवीरभयानकः ।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।। ना0शा0 6/16

4- दशरूपकम् - 4/35

5- काव्यप्रकाश - 4/35

6- नाट्यशास्त्रम् - 6/18 रतिर्हासश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावः प्रकीर्तिता ।।

भाव - मानव-जीवन सुख दुःखात्मक स्थितियों से परिपूर्ण रहता है, ये सुख-दुःखात्मक द्वन्द ही भावों की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। मनुष्य प्रतिदिन ही सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, मिलन-बिछोह, राग-द्वेष, दया-घृणा, आदि अनेक प्रकार के भावों का अनुभव करता है तथा चाहकर भी उनसे असम्पृक्त नहीं रह सकता। इन भावों से जो भी अनुभूति होती है वह दो प्रकार की ही होती है। तात्कालिक और संस्करात्मक।

जब हम प्रत्यक्ष रूप से किसी भाव से प्रभावित होते हैं तो वह तात्कालिक अनुभूति कहलाती है और धीरे-धीरे ये प्रत्यक्ष अनुभव सुप्त होकर संस्कार-रूप में परिणत हो मानस-पटल में विलीन हो जाते हैं, परन्तु समय समय पर स्थिति विशेष को देखकर अथवा सुनकर पुनः जागृत हो जाते हैं। इस प्रकार की अनुभूति संस्करात्मक कहलाती है। काव्य में वर्णित भाव संस्कार रूप से उपस्थित होने के कारण अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म एवं उदात्त होते हैं। यही कारण है कि सुख-दुःख का प्रत्येक भाव काव्य में मधुर ही होता है, तीक्ष्ण या कटु नहीं। उदाहरणार्थ- शोक नामक स्थायीभाव से उद्भूत करुण रस भी काव्य में आनन्दस्वरूप एवं आकर्षक ही होता है कष्टदायक नहीं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि भाव एक ऐसी मानसिक क्रिया है जिसपर व्यक्ति का अपना कोई अधिकार नहीं है। वह इच्छानुसार भावों का ग्रहण एवं परित्याग नहीं कर सकता है अपितु स्वभावतः ही उनसे प्रभावित होता है। डा० नगेन्द्र के अनुसार वाह्य जगत के संवेदनों से मनुष्य के हृदय में जो विकार उठते हैं वह ही मिलकर भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं।[1]

स्थायी-भाव - मनुष्य के हृदय में स्थायी-रूप से विद्यमान प्रेम, घृणा, क्रोध आदि के भाव ही जब अपने अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी भाव से तिरोहित नहीं होते वरन् उन्हें आत्मसात कर आत्मरूप बना लेते हैं तो वे स्थायी भाव कहलाते

1- रससिद्धान्त डा० नगेन्द्र - पृ० 219

हैं ।

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न य: ।

आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकर: [1] ।।

रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय तथा शोक नाम से ये स्थायी भाव आठ प्रकार के होते हैं ।

विभाव- रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते हैं लोक में जो रति आदि के उद्बोधक कारक हैं वे ही नाटक या काव्य में विभाव कहलाते हैं, "रत्याद्युद्बोधका लोके विभावा: काव्यनाटययो: [2]"। विभाव्यत् इति इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसका ज्ञान हो सके अर्थात् नाटक अथवा काव्य में वाणी, अभिनय और वर्णन इत्यादि के द्वारा प्रकट भिन्न, भिन्न भावों की जिसके कारण से सहृदयों को प्रतीति हो वे सब विभाव कहलाते हैं । विभाव स्थायी भाव को पुष्ट कर रस रूप में परिणित करते हैं ।

विभाव दो प्रकार के होते हैं । आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव । जिसको आधार बनाकर भाव जागृत होते हैं उसको आलम्बन विभाव कहते हैं । जैसे सीता को देखकर राम के मन में रति की उत्पत्ति होती है इसलिए सीता श्रृंगार रस की आलम्बन विभाव है जो जगे हुए भाव को उद्दीप्त करता है उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं । नायक-नायिका आदि की चेष्टाएं देश-काल आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आता है ।

अनुभाव- वाचिक, आंगिक एवं सात्त्विक आदि अभिनयों के द्वारा हृदयस्थ भाव अनुभावित होते हैं ।

रत्यादि स्थायी भाव को सूचित करने वाले विकार को अनुभाव कहते हैं [3]। ये अनुभाव भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि रस को पोषित करने वाले आलम्बन

1- दशरूपकम् —— 4/34 3- दशरूपकम- 4/3

2- साहित्यदर्पण - 3/29

के शारीरिक विकार हैं ।

नाट्यदर्पण में अनुभाव की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—

अनुलिंगनिश्चयाद् पश्चाद् भावयन्ति गमयन्ति लिंगिन रसम्" । अनु अर्थात् लिंग के निश्चय के पश्चात् रस की भुक्ति कराने वाले कार्य रूप स्तम्भ आदि अनुभाव कहे जाते हैं ।

व्यभिचारी भाव- उद्बुद्ध हुए स्थायी भावों की पुष्टि तथा उपचय में जो उनके सहकारी होते हैं उनको व्यभिचारी भाव कहते हैं । व्यभिचारी भाव रसों में नाना रूप से विचरण कर उनको पुष्ट कर आस्वाद के योग्य बनाते हैं[1] ।

धनंजय के अनुसार जिसप्रकार सागर के होने पर ही तरंगे उत्पन्न होती हैं और विलीन होती है, उसी प्रकार रति आदि स्थायी भाव के होने पर ही उसको लक्ष्य करके जिनका आर्विभाव और तिरोभाव हुआ करता है, वे निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव कहलाते हैं[2] ।

व्यभिचारी भावों की कुल संख्या 33 है[3] ।

1- निर्वेद	2- ग्लानि	3- शंका	4- असुया
5- मद	6- श्रम	7- आलस्य	8- दैन्य
9- चिन्ता	10- मोह	11- स्मृति	12- धृति
13- ब्रीडा	14- चपलता	15- हर्ष	16- आवेग
17- जड़ता	18- गर्व	19- विषाद	20- औत्सुक्य
21- निद्रा	22- अपस्मार	23- सुप्त	24- विबोध
25- अमर्ष	26- अवहित्थ	27- उग्रता	28- मति
29- व्याधि	30- उन्माद	31- मरण	32- त्रास
33- वितर्क			

1- नाट्यशास्त्रम् पृ0 390 2- दशरूपकम् - 4/7 3- दशरूपकम्- 4/8

इनमें से एक संचारी भाव किसी दूसरे संचारी भाव की उत्पत्ति का कारण तो हो सकता है लेकिन कोई भी संचारी किसी दूसरे संचारी का अनुभाव नहीं बन सकता है । संचारी भाव स्थायी भाव की भाँति सामाजिक का हृदयस्थ भाव है परन्तु स्थायी भाव की सत्ता कारण के अनुपस्थित रहने पर भी बनी रहती है । इसके विपरीत संचारी भाव कारण के अभाव में निःशेष हो जाते हैं । अतः स्पष्ट है कि स्थायी भाव स्थिर और संचारी भाव अस्थिर मनोदशा है । केवल स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त करते हैं संचारी नहीं क्यों कि प्रत्येक सहृदय के चित्त में वासना रूप से विद्यमान रहने के कारण स्थायी का ही साधारणीकरण सम्भव होता है । इस प्रकार स्थायी और संचारी दोनों ही भावों के हृदय में स्थित होने पर संचारी भाव ही स्थायी भाव को पुष्ट कर रसास्वाद के योग्य बनाते हैं ।

विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव को रसनिष्पत्ति का कारण कार्य और सहकारी कहा है । लोक में कारण कार्य और सहकारी रूप विभाव, अनुभाव और संचारी भाव रस बोध के प्रति व्यंजक रूप में कारण ही होते हैं[1] ।

उपर्युक्त चारों अंगों में स्थायी और संचारी भाव काव्य गत भाव है जिनके साथ सामाजिक तादात्म्य स्थापित करता है और काव्य के कारणभूत विभाव और कार्यभूत अनुभाव रूप उपकरणों से ये व्यंजित होते हैं[2] । विभाव द्वारा ही कवि किसी अनुभूति को सामाजिक के हृदय में जागृत करता है और उस जगी हुई अनुभूति का अनुभाव के द्वारा प्रकटन करता है । इस प्रकार रसास्वादन की प्रक्रिया में विभाव को पूर्वपक्ष और अनुभाव को उत्तरपक्ष भी कहा जा सकता है ।

1- साहित्यदर्पण - 3/14 कार्यकारणसंचारिरूपा अपि हि लोकतः ।।
रसोद्बोधे विभावाद्याः कारणान्येव ते मताः ।

2- रस प्रक्रिया- अवतरे- पृ0 64

भरत के रस-सिद्धान्त के विषय में विभिन्न मत -

रसास्वादन की प्रक्रिया पर सर्वप्रथम आचार्य भरत ने प्रकाश डाला। उनके अनुसार- "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" अर्थात् विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।

आचार्य भरत के इस सूत्र की अनेक आचार्यों ने अलग अलग ढंग से व्याख्या की है। चूंकि प्रस्तुत शोध का विषय नाटकों में रस के स्वरूप को निर्धारित करना मात्र है। अतः आचार्यों की व्याख्याओं की विस्तृत आलोचना तथा प्रत्यालोचना न कर उनका संक्षिप्त उल्लेख ही उचित होगा।

भट्टलोल्लट- इनके अनुसार विभाव अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य रामादि में रस की उत्पत्ति होती है। विभाव सीता आदि मुख्य रूप से रस के उत्पादक होते हैं। अनुभाव उस उत्पन्न हुए रस को बोधित करते हैं तथा व्यभिचारी भाव उसके परिपोषक होते हैं। इस प्रकार स्थायी भाव के साथ विभावों का उत्पाद्य-उत्पादक भाव अनुभावों का गम्यगमक भाव और व्यभिचारी भावों का पोष्यपोषक भाव सम्बन्ध है।

नायक-नायिकागत कटाक्षभुजाक्षेपादि अनुभाव रस के कार्य स्वरूप है अर्थात् ये रस से उत्पन्न होता है। अनुभावों के माध्यम से विभाव आदि कारणों से उत्पन्न हुआ रस प्रतीति योग्य हो जाता है। यह रस निर्वेदादि व्यभिचारी भावों से पुष्ट होता है तथा मुख्यतया अनुकार्य आदि में एवं अप्रधान रूप से नटादि में व्यक्त होता है।

उनके अनुसार रस की उत्पत्ति में विभाव ही पर्याप्त है।

1- काव्यप्रकाश- पृ0 66

अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव कार्य एवं पोषक स्वरूप हैं । आचार्य भट्टलोल्लट का यह मत "उत्पत्तिवाद" के नाम से प्रख्यात है ।

भट्टशंकुक- आचार्य शंकुक अनुमान प्रमाण के आधार पर भरत के रससूत्र की व्याख्या करते हैं । उनके अनुसार दुष्यन्त शकुन्तला आदि के हृदय-स्थित अनुराग को उत्पन्न करने में दुष्यन्त शकुन्तला आदि आलम्बन, एकान्त स्थान, उपवन एवं उद्यान आदि रागोद्दीपक सामग्रियाँ कारण स्वरूप होती है । यह अनुराग कटाक्ष एवं भ्रूविलास आदि कार्यरूप में प्रकट होते है तथा निर्वेद, ग्लानि एवं शंका आदि भिन्न भिन्न हृदयस्थ भावों द्वारा पुष्ट होता है ।

आचार्य के अनुसार दुष्यन्त शकुन्तलादि गत अनुराग के कारण, कार्य एवं सहकारी आदि काव्य में चित्रतुरगन्याय से स्थित होते थे । कारण कार्य आदि कृत्रिम होते हुए भी कृत्रिम न प्रतीत होते हुए, अनुकार्य दुष्यन्तादि के अनुराग को आकृति स्वरूप प्रतीत होता हुआ, नटादि गत रत्यादि स्थायी भाव, वहाँ स्थित न होते हुए भी सामाजिक द्वारा, रसरूप में आस्वादित किया जाता है ।

भट्टनायक- इनके मतानुसार विभावादि के द्वारा भोज्य-भोजक रूप सम्बन्ध से सामाजिक को रस का भोग या आस्वादन होता है । इसी हेतु यह मत "भुक्तिवाद" कहा जाता है । भट्टनायक उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद तथा अभिव्यक्तिवाद की आलोचना करते हैं । संक्षेप में इनके मत का सार यह है कि - काव्य-नाट्य में शब्द के अभिधा व्यापार के समान ही भावकत्व तथा भोजकत्व नामक व्यापार होते हैं । काव्यार्थ बोध होने के पश्चात् भावकत्वव्यापार द्वारा सीतादि रूप विभावादि तथा नायक गत रति आदि का साधारणीकरण हो जाता है और सहृदय जन भोजकत्व व्यापार के द्वारा उसका आस्वादन कर लेते हैं ।

भट्टनायक ने अपनी इस रसप्रक्रिया में सामाजिकगत रसानुभूति के

लिए सर्वप्रथम साधारणीकरण का उल्लेख किया है जिसका रसास्वादन में महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु उन्हों ने शब्द के भावकत्व और भोजकत्व नामक जिन दो नये व्यापारों की कल्पना की है वह अनुभव सिद्ध और प्रामाणिक नहीं है। यही कारण है कि उनके सिद्धान्त को वह मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी जो अभिनव गुप्त को मिली।

अभिनवगुप्त - भरतसूत्र के चतुर्थ किन्तु सर्वप्रमुख व्याख्याकार अभिनवगुप्त ने "अभिव्यक्तिवाद" की स्थापना की है उन्होंने अलंकार शास्त्र के प्रमुख ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन के आधार पर अपने अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है, इसीलिए उनके मत को अलंकारिक मत भी कहा जाता है। इनके मतानुसार रस की उत्पत्ति, अनुमिति न होकर अभिव्यक्ति होती है। सहृदयगत स्थायीभाव ही रसानुभूति का प्रमुख कारण है। संस्कार रूप में रति आदि स्थायी भाव सामाजिक की आत्मा में अव्यक्त अवस्था में स्थित रहता है। वह साधारणीकृत रूप में उपस्थित विभावादि सामग्री से अभिव्यक्त या उद्बुद्ध हो जाता है और तन्मयीभाव के कारण शून्य ब्रह्मस्वाद के सदृश परमानन्द रूप में अनुभूत होता है। इसप्रकार रस उत्पन्न नहीं वरन् अभिव्यक्त होता है विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तो व्यंजक या व्यक्त करने वाले है और रस व्यंग्य अर्थात् व्यक्त किये जाने योग्य है।

रसानुभूति की दशा में पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि विभावादि अपने वैयक्तिक रूप को छोड़ दें, साथ ही सामाजिक भी निर्वैयक्तिकता धारण कर लें। उस समय राम-सीता, दुष्यन्त-शकुन्तला अपने व्यक्तित्व को छोड़कर केवल नायक-नायिका के रूप में हमारे सामने आते हैं। साथ ही हम भी केवल

1- काव्यप्रकाश - पृ0 74-76

रसानुभवकर्तामात्र बन जाते हैं । इस प्रकार विभावादि केवल विषय-मात्र तथा सामाजिक केवल विषयी मात्र रह जाता है । इसे ही "साधारणीकरण" कहते हैं । साधारणीकरण आश्रय, आलम्बन, अनुभावादि सर्वांग का होता है । साधारणीकरण के कारण ही रसनुभूति होती है क्यों कि उस दशा में वैयक्तिक रागद्वेषादि का लोप हो जाता है ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्थायी-भाव का विभाव आदि के साथ व्यङ्ग्यव्यंजक भाव रूप संयोग होने से रस की अभिव्यक्ति होती है । इसी लिए यह मत "अभिव्यक्तिवाद" के नाम से जाना जाता है ।

उपर्युक्त चारों मतों को संक्षिप में इस प्रकार समझा जा सकता है -

आचार्य	आधारभूत दर्शन	निष्पत्ति का अर्थ	संयोग का अर्थ
1- भट्टलोल्लट	मीमांसा	उत्पत्ति	उत्पाद्य-उत्पादक
2- श्री शंकुक	न्याय	अनुमिति	अनुमाप्य-अनुमापक
3- भट्ट नायक	सांख्य	भुक्ति	भोज्य-भोजक
4- अभिनवगुप्त	वेदान्त	अभिव्यक्ति	व्यंग्य-व्यंजक

उपर्युक्त चारों प्रकार के मतों में अभिनवगुप्त का मत ही सर्वमान्य है ।

साधारणीकरण- रसास्वादन की प्रक्रिया में साधारणीकरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिना साधारणीकरण के सामाजिक रस का आस्वादन कर ही नहीं सकता । अब प्रश्न यह उठता है कि साधारणीकरण किसका है कवि, कवि की अनुभूति काव्य अथवा वर्णित आश्रय आलम्बन या भाव अनुभावों का ।

साधारणीकरण काव्य या नाटक के भीतर ही किसी भाव या वस्तु का होता है कवि, काव्य या उसकी अनुभूति का नहीं । जब तक सामाजिक काव्य में वर्णित विशिष्ट रामादि पात्रों के विभावों, अनुभावों

तथा संचारी भावों के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं करेगा तब तक उसे रसानुभूति नहीं हो सकती, इसीलिए भरत ने कहा है " एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते" अर्थात् जब रसांगों को सामान्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है तभी रस की निष्पत्ति होती है ।

साधारणीकरण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भट्टनायक ने किया है, इन्होंने रस के भोग के लिए "भावकत्व" और " भोजकत्व" नामक दो व्यापारों की कल्पना की है, इनमें भावकत्व व्यापार से विभावादि का साधारणीकरण होता है और भोजकत्व से स्थायीभाव रूप आस्वादित किया जाता है ।

भट्टलोल्लट के साधारणीकरणात्मक भावकत्व नामक व्यापार से काव्य में निबद्ध विभाव अनुभाव और संचारी भाव किसी भी व्यक्तिविशेष के अंग न रहकर साधारण धर्म के रूप में उपस्थित होते है, तत्पश्चात् सामाजिक में स्थित इत्यादि स्थायीभाव भी साधारणीकृत होकर ही सामाजिक के सामने भोगार्थ उपस्थित होते हैं ।

भट्टलोल्लट के साधारणीकरण को अभिनवगुप्त ने अधिक सुदृढ़ रूप प्रदान किया । उनके अनुसार पहले विभावादि का साधारणीकरण होता है । जिसके फलस्वरूप सामाजिकगत स्थायीभाव का भी साधारणीकरण हो जाता है । विभावादि और सामाजिक दोनों ही वैयक्तिता का परित्याग कर सर्व साधारण के हो जाते हैं, विभावादि और सामाजिक के स्वपर के भेद से ऊपर उठने पर सामाजिकगत स्थायीभाव भी उद्बुद्ध होकर अभिव्यक्त हो जाता है और सहृदय राग-द्वेष, हर्ष-विषाद से मुक्त होकर अलौकिक आनन्द का आस्वाद करता है ।

साधारणीकरण की प्रक्रिया में आश्रय के साथ सामाजिक का तादात्म्य होना अनिवार्य है साथ ही आश्रय का साधारणीकरण भी जरूरी

है लेकिन आश्रय के साधारणीकरण और सामाजिक के द्वारा आश्रय के साथ तादात्म्य की अनुभूति में अन्तर है । राम हनुमान जैसे अलौकिक शक्ति सम्पन्न पात्रों का अलौकिक न रहकर सामान्य पुरूष बन जाना ही आश्रय का साधारणीकरण है और सामाजिक के तादात्म्य का तात्पर्य है कि उन क्षणों में सामाजिक अपने को राम या हनुमान समझने लगते हैं तथा रामादि के कार्यों के प्रति उनके मन में उत्साह जागृत हो जाता है । पहली स्थिति में राम हनुमान सामान्य मानव धरातल पर और दूसरे में प्रमाता उठकर विशेष अलौकिक धरातल पर पहुंच जाता है रामादि अलौकिक पात्रों के साधारणीकरण का यह तात्पर्य नहीं है कि वे अपने विशिष्ट गौरव से वंचित हो जायें वरन् उनके गौरव का देशकालबद्ध रूप वैशिष्ट्य तिरोहित हो जाता है और सामान्य मानवीय औदात्य उभरकर सामने आ जाता है ।

आश्रय के साथ आलम्बन का भी साधारणीकरण होता है । काव्य अपने कुछ सामान्य गुणों के कारण समस्त सहृदय समाज के चित्त में एक सा ही भाव उत्पन्न करता है । इस प्रकार साधारणीकरण मूलत: आलम्बन के उन गुणों का होता है जो सम्बद्ध भाव की उत्पत्ति कर सके । जैसे आलम्बन सीता का सीतात्व तो नष्ट नहीं होता, पर उसके ऐसे सामान्य गुण उभरकर सामने आ जाते हैं जिनके कारण वे राम की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सहृदय समाज की स्नेहभाजन बन जाती है ।

आश्रय आलम्बन के साथ सहृदय की चेतना का साधारणीकरण होना भी आवश्यक है क्यों कि यह रसास्वादन की अन्तिम और आधारभूत क्रिया है, सहृदय की चेतना का साधारणीकरण तभी होता है जब विभावादि के साधारणीकृत रूप में उपस्थित होने पर प्रमाता की चेतना स्वपर की भावनाओं से मुक्त होकर एकाग्रचित हो जाती है । चित्त के एकाग्रचित्त होने पर ही प्रमाता आत्मस्वाद रूप रस का अनुभव करता है ।

रसास्वादन में आश्रय, आलम्बन, प्रमाता का अलग-अलग नहीं अपितु सर्वांग का ही साधरणीकरण होता है । जिस प्रसंग में हमें रसानुभूति करना है वह सम्पूर्ण प्रसंग ही विशिष्ट देश-काल बद्ध घटना न रहकर साधारणीकृत हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप प्रमाता की चेतना भी व्यक्तिगत संसर्गों से मुक्त होकर साधारणीकृत हो जाती है । हिन्दी के प्रसिद्ध डा0 नगेन्द्र जो भरत के रस सिद्धान्त के मौलिक व्याख्याकार है । उनका मत है कि वस्तुत: कवि की अनुभूति का ही साधारणीकरण होता है । काव्य प्रसंग तो अपने आप जड़ वस्तु है इसका साधारणीकरण कैसे होगा । साधरणीकरण तो चैतन्य क्रिया का होता है । काव्य का चैतन्य अंश तो अर्थ है जो कवि की सर्जनात्मक अनुभूति का परिणाम है । काव्य एक ओर कवि के अर्थ को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर प्रमाता के चित्त में समान अर्थ को उद्बुद्ध करता है । यह काव्य प्रसंग कवि की अनुभूति का मूर्तरूप या बिम्ब है । यही काव्य प्रसंग या बिम्ब शरीर है और कवि और कवि भावना उसको प्रकाशित करने वाली चैतन्य आत्मा है । चूँकि साधारणीकरण जड़ यान्त्रिक क्रिया न होकर चैतन्य क्रिया है । अत: काव्य प्रसंग या रस के समस्त अवयवों का साधरणीकरण मानने की अपेक्षा कवि भावना का साधारणीकरण मानना मनोविज्ञान के अधिक अनुकूल है[1] ।

यूँ तो अनुभूति हर व्यक्ति में होती है इसकी अभिव्यक्ति भी प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है परन्तु ऐसी अनुभूति जो सभी सामाजिकों के हृदय में समान भाव जगा सके उसमें साधारणीकरण की शक्ति होती है[2] । यह कवि की ही होती है । कवि जिस रूप में जिसभाव के साथ साधारणीकरण

1- रस सिद्धान्त- डा0 नगेन्द्र - पृ0 209 - 210

2- रस सिद्धान्त- डा0 नगेन्द्र- पृ0 211

करता है उसी रूप में सामाजिक भी । अतः साधारणीकरण कवि की अनुभूति का मानना ही अधिक उचित है ।

डा० नगेन्द्र के इस मत को असंगत ठहराते हुए अवतरे जी लिखते हैं कि कवि की अनुभूति का साधारणीकरण असंगत ही नहीं सर्वथा असम्भव है क्यों कि कवि की अनुभूति के साथ सामाजिक का सीधा सम्बन्ध हो ही नहीं सकता । दोनों के मध्य शब्दार्थमयी काव्यसृष्टि स्थित है । कवि की शब्दार्थमयी काव्यसृष्टि ही, जिसे विभावादि का नाम दिया जाता है वह माध्यम है, जिसके द्वारा सामाजिक कवि की अनुभूति तक पहुंचता है । सामाजिक का सीधा और साक्षात् सम्बन्ध पहले कवि-दृष्टि विभावादि से होता है इसलिए साधारणीकरण का प्रश्न भी सबसे पहले विभावादि के सम्बन्ध में ही उठता है और विभावादि के साधारणीकरण होने पर कवि अनुभूति के साधारणीकरण का प्रश्न इसलिए नहीं उठता कि विभावादि कवि अनुभूति का ही शब्दार्थमय व्यक्त रूप है जिसका साधारणीकरण पहले ही हो चुका है । फलतः कवि की अनुभूति के साधारणीकरण की बात बिना विभावादि के साधारणीकरण के कहना आकाश कुसुम की भांति है और विभावादि के साधारणीकरण के बाद कवि अनुभूति का पुनः साधारणीकरण मानना निरर्थक और निष्फल है[1] ।

इन सभी मतों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि साधारणीकरण पहले काव्य में निबद्ध रसांगो का होता है तत्पश्चात् सामाजिक उनके साथ तादात्म्य स्थापित करके उसमें निहित स्वाद का आस्वादन करता है । इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत की शास्त्रीय परम्परा में रसांगों का साधारणीकरण आवश्यक माना गया है । इस साधारणीकरण के आभाव में रस की "चर्वणा" असम्भव है अतः रसानुभूति के प्रक्रिया में साधारणीकरण एक अपरिहार्य और आवश्यक मनः स्थिति है ।

1- रस प्रक्रिया - अवतरे पृ० 203-204

नाटक में अंगी और अंग रस का विधान - नाटक में रसों की योजना धनंजय और विश्वनाथ ने दो रूपों में की है- "अंगी" तथा "अंग" रस । अंगी रस का नाटक में प्रधान रूप से परिपाक होता है तथा उस प्रधान रस की पुष्टि के लिए ही अन्य रसों की योजना होती है । ये रस ही नाटक में अंग रस के रूप में आते हैं ।

धनंजय के अनुसार नाटक में श्रृंगार या वीर रस ही अंगी रस होना चाहिए । शेष रसों का निरूपण अंग रस के रूप में होना चाहिए[1] । विश्वनाथ ने भी नाटक में श्रृंगार और वीर रस को अंगी और शेष रसों को अंग माना है । लेकिन इन दोनों रसों से रहित "प्रबोधचन्द्रोदय" में शान्त रस की प्रधानता है तथा यह एक सफल नाटक है । अतः केवल श्रृंगार और वीर रस ही अंगी हो, उचित नहीं प्रतीत होता है । कोई भी ऐसा काव्य नहीं होता जिसमें केवल एक ही रस का वर्णन हो, उसमें तो अनेक भावों रसों तथा प्रकृतियों का एक साथ परिपाक होता है । उनमें से जिस रस का आधिक्य हो उसे अंगी और जो अन्य रस उसके परिपोषक या उसमें चमत्कार उत्पन्न करने वाले हो, उन्हें अंग रस मानना चाहिए । इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए आनन्दवर्धन[2] ने कहा है कि नाटक में किसी भी रस को प्रधानता दी जा सकती है ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक में अनेक रसों के विभाजन होने पर भी एक ही रस की प्रधानता होती है । वह अंगी और शेष उस रस के पोषक अंग रस होते हैं ।

1- दशरूपकम्- 3/33 एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः श्रृङ्गार एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।।

2- ध्वन्यालोक- 3/21
प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने ।
एको रसोऽङ्गी कर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ।।

उत्तररामचरितम् में प्रमुख रस कौन सा है । इस विषय में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है । कुछ विद्वान करूण रस को नाटक का प्रधान रस मानते हैं और कुछ विद्वान विप्रलम्भ श्रृंगार को नाटक का अंगी रस स्वीकार करते हैं । इसलिए करूण और विप्रलम्भ श्रृंगार के विषय में विस्तार से चर्चा अपेक्षित है ।

करूण रस का स्थायी भाव शोक होता है तथा विप्रलम्भ श्रृंगार का स्थायी भाव रति होता है ।

करूण रस- करूण रस का स्थायी भाव शोक है, जो इष्ट के नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न होता है । विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव होते हैं एवम् उसका दाहकर्म आदि उद्दीपन होता है । प्रारब्ध की निन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवर्णता, उच्छवास, निःश्वास, स्तम्भ और प्रलाप इस रस में अनुभाव होते हैं एवं निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम विषाद, जडता, उन्माद और चिन्ता आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं ।[1]

विप्रलम्भ श्रृंगार- जहां अनुराग तो अति उत्कट है, परन्तु प्रिय समागन नहीं होता है उसे विप्रलम्भ श्रृंगार कहते हैं ।[2] काव्यप्रकाशकार ने अभिलाष, विरह ईर्ष्या, प्रवास और शाप- ये पांच प्रकार के विप्रलम्भ श्रृंगार बताये हैं ।[3]

1-क- साहित्यदर्पण - 3/222, 223, 224, 225

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करूणाख्यो रसो भवेत् ।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः ।।

ख- दशरूपकम् - 4/81, 82

2- क-साहित्यदर्पण- 3/186- यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ ।।

ख- दशरूपकम् - 4/57- विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविस्रम्भयोर्द्विधा ।।

3-काव्यप्रकाश- 4/29 वृत्ति

तत्र श्रृंगारस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगो विप्रलम्भश्च ।
अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पंचविधः ।।

नाट्यदर्पण में मान, प्रवास, शाप, ईर्ष्या और विरह ये पाँच भेद हैं[1] तथा दशरूपक में मान-विप्रयोग और प्रवास विप्रयोग दो भेद हैं[2]। साहित्यदर्पणकार ने पूर्वराग मान, प्रवास और करूण- ये चार प्रकार के भेद बताये हैं। अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृति ये दस कामदशायें विप्रलम्भ श्रृंगार में होती है[3]। प्रवास और शापज विप्रलम्भ के अन्तर्गत करूण-विप्रलम्भ का समावेश हो जाता है। लक्षण ग्रन्थों में विप्रलम्भ श्रृंगार में अभिलाष से लेकर मरण पर्यन्त दस काम दशाओं का वर्णन किया गया है। करूण रस में भी इष्ट की मृत्यु होनी अनिवार्य है। अतः यह शंका होती है कि मृत्यु करूण रस और करूण विप्रलम्भ दोनों में ही होती है फिर दोनों में अन्तर क्या है।

इस शंका का समाधान करते हुए विश्वनाथ ने कहा है - कि करूण विप्रलम्भ में पहले तो रस विच्छेद के कारण मृत्यु का वर्णन ही नहीं होना चाहिए। यदि उसका वर्णन आवश्यक ही हो तो उसे दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो वास्तविक मृत्यु का नहीं अपितु मृतप्राय अवस्था का वर्णन होना चाहिए और दूसरे उसका वर्णन अभिलाष के रूप में ही होना चाहिए। परिस्थितिवश जहाँ वास्तविक मृत्यु का वर्णन करना ही पड़े, वहाँ शीघ्र ही मृत व्यक्ति के पुनर्जीवित होने का वर्णन कर देना चाहिए[4]।

1- नाट्यदर्पण- 3/166

2- दशरूपकम् - 4/57,58- मानप्रवासभेदेन, मनोऽपि प्रवयेर्ष्ययोः।

3- साहित्यदर्पण- 3/187, 188, 189, 190, 191, 192

स च पूर्वरागमानप्रवासकरूणात्मकश्चतुर्धा स्यात्।

4- साहित्यदर्पण- 3/193, 194

रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते ।।

जातप्रायं तु तद्वाच्यं चेतसाकाङ्क्षितं तथा

वर्ण्यतेऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्याददूरतः ।।

इस प्रकार हम देखते है कि रूद्रट,[1] भोजराज,[2] तथा विश्वनाथ[3] आदि आचार्यों ने करूण रस से पृथक् श्रृंगार रस के अन्तर्गत "करूण-विप्रलम्भ" नामक एक उपभेद की कल्पना की है । उनके अनुसार जहां दो प्रेमियों में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है, परन्तु कालान्तर में उनका पुनर्मिलन हो जाता है अथवा वस्तुत: किसी की मृत्यु होती ही नहीं है किन्तु समझ ली जाती है, वहां करूण-विप्रलम्भश्रृंगार होता है । शरीरान्तर से पुनर्मिलन होने पर करूण-विप्रलम्भ नहीं माना जायेगा । इसके लिए एक ही शरीर से पुनर्मिलन आवश्यक है ।

अब उपर्युक्त वर्णन के अनुसार उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला में अंगी रस कौन सा है । इस विषय पर विचार करेंगे । उत्तररामचरितम् में मृत्यु वास्तव में होती नहीं है वरन् परिस्थितिवश समझ ली जाती है इसलिए ये करूण विप्रलम्भ के ही क्षेत्र में आता है । राम के आदेश से लक्ष्मण/ सीता को वन में छोड़ आते हैं किन्तु राम यह समझ बैठते हैं कि हिंस्र पशुओं द्वारा सीता का भक्षण कर लिया गया होगा[4] । इस प्रकार हम देखते हैं कि सीता की मृत्यु होती नहीं

1- काव्यालंकार (रूद्रट) 14/34

करूण: स विप्रलम्भो यत्रान्यतरो म्रियते नायकयो: ।

यदि वा मृतकल्प: स्यात्तत्रान्यस्तद्गतं प्रलपेत् ।।

2- सरस्वतीकण्ठाभरण - 5/50 लोकोत्तरेण युनि वल्लभे वल्लभायदा ।

भृशं दु:खायते दीना करूण: स तदोच्यते ।।

3- साहित्यदर्पण- 3/209

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।

विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करूणविप्रलम्भाख्य: ।।

4- उत्तररामचरितम् - 3/28 "क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता

है, वह छाया रूप में विद्यमान है किन्तु गंगा नदी के प्रभाव से राम उनको देख नहीं पाते हैं और मन ही मन समझ लेते हैं कि हिंसक पशुओं द्वारा सीता की मृत्यु हो गयी होगी । यहाँ पर राम और सीता का वियोग आत्यन्तिक नहीं है, राम केवल भ्रमवश ही इसे आत्यन्तिक समझ लेते हैं । अन्त में वाल्मीकि आदि के आशीर्वाद से राम का सीता, लव और कुश से मिलन होता है और उनके आत्यन्तिक वियोग का कोई अवसर नहीं रह जाता । अतः नाटक में करूण रस न समझकर करूण विप्रलम्भ श्रृंगार को ही अंगी रस मानना चाहिए ।

डा० लाल रमायदुपाल सिंह, डा० ब्रजवल्लभ शर्मा डा० नगेन्द्र आदि ने उत्तररामचरितम् में करूण विप्रलम्भ श्रृंगार को ही अंगी रस स्वीकार किया है । डा० सत्य नारायण चौधरी, आदि ने करूण रस को अंगी रस माना है । कुछ विद्वान भवभूति के प्रसिद्ध श्लोक "एको रसः करूण एव निमित्तभेदाद्" आदि के आधार पर नाटक में करूण रस मानते हैं किन्तु मेरे विचार से यह श्लोक सम्पूर्ण नाटक के लिए नहीं अपितु तृतीय अंक की कुछ घटनाओं के लिए कहा गया है । डा० नगेन्द्र ने भी रस सिद्धान्त में लिखा है कि " एको रसः करूण एव" श्लोक केवल एक विशेष पात्र तमसा का एक विशेष नाटकीय परिस्थिति में काव्य-मय उद्गार है । नाटक का वातावरण नितान्त करूणामय हो गया था सीता, राम, वासंती सभी के हृदय करूणार्द्र थे । उसी परिस्थिति का वाचिक प्रतीक है यह श्लोक । अतः इसे शास्त्र-वाक्य के रूप में ग्रहण करना कदाचित् उचित न होगा । यदि इसे पात्र के माध्यम से स्वयं कवि का उद्गार मान लिया जाए तब भी यह उद्गार सम्पूर्ण करूणाप्लवित नाटक का "भावार्थ" ही है, शास्त्रीय स्थापना नहीं"[1]। अतः पूर्वोक्त बताये गये आधार पर करूण रस मानने वालों का मत स्वतः ही निराधार सिद्ध होता है ।

1- रस सिद्धान्त - डा० नगेन्द्र - पृ० 255

उत्तररामचरितम् के अनुसार कुन्दमाला में भी करूण विप्रलम्भ श्रृंगार को ही अंगी रस मानना चाहिए क्यों कि दोनों का कथानक तथा प्रमुख घटनाएं आरम्भ से अन्त तक समान हैं । कुन्दमाला में स्पष्ट रूप से करूण विप्रलम्भ श्रृंगार दिखाई देता है क्यों कि राम को पूर्ण विश्वास है कि सीता जीवित है तथा एक स्थल पर तो राम कहते हैं कि मेरा मनोरथ शीघ्र ही पूरा होने वाला है[1] । कुन्दमाला में आरम्भ से ही विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन किया गया है किन्तु उत्तररामचरितम् नाटक में आरम्भ से अन्त तक करूण भाव देखा जाता है और उस शोक का पर्यावसान करूण विप्रलम्भ श्रृंगार में हो जाता है । नाटककारों ने अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, आदि दसों दशाओं का चित्रण किया है । अत: दोनों ही नाटकों का अंगी रस " करूण विप्रलम्भ श्रृंगार " ही है ।

उत्तररामचरितम् में अंगी रस - पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तररामचरितम् में "विप्रलम्भ श्रृंगार" का ही एक भेद "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" अंगी रस है । अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप उन्माद, व्याधि, जडता, और मृति ये दस कामदशायें विप्रलम्भ श्रृंगार में होती है । उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेद आदि इसके संचारी भाव होते हैं । अभिलाष नामक अवस्था का इस नाटक में वर्णन नहीं हुआ है क्यों कि नायक और नायिका प्रौढ़ दम्पती है और लोकापवाद सुनकर श्री राम ने सीता को निर्वासित कर दिया है । सम्पूर्ण नाटक में आरम्भ से अन्त तक करूण भाव ही देखा जाता है । महाकवि भवभूति ने नायक -नायिका के वियोग का वर्णन प्रस्तावना में ही कर दिया है । नट द्वारा कवि ने सीता के अपवाद तथा उसके कारण उत्पन्न होने वाली भावी अनिष्ट

1- कुन्दमाला-पृ0- 157 " तथा जानामि प्रत्यासन्न-फलो मे मनोरथ इति " ।

की आशंका की ओर पहले से ही संकेत कर दिया है[1] । प्रथम अंक में भगवती अरून्धती, शान्ता तथा राजमाताओं का संदेश, भगवान वसिष्ठ का संदेश तथा इसके उत्तर में राम की प्रतिज्ञा[2] सीता परित्याग को सूचित करती हैं । सीता परित्याग से उत्पन्न दुःख सम्पूर्ण नाटक को करूणा से आप्लावित कर देता है । सीता निर्वासन के समय ही राम को सीता के जीवन-नाश का पूर्ण विश्वास हो जाता है और इसीलिए श्री राम अपने लिए नृशंस, दुरात्मा, कृतघ्न आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं और कहते हैं- कि " जैसे कोई कसाई किसी पालतू पक्षी को बचपन से पाल पोस कर भी अचानक मार डालता है, उसी प्रकार बचपन से पाली हुई तथा जीवन भर सुख दुःख में संग संग रहने वाली इस प्राणप्रिया को आज मैं छल से मृत्यु के हाथों में दिये दे रहा हूँ"[3]। वे सीता की पवित्रता तथा पातिव्रत्य का स्मरण कर विलाप करने लगते हैं । उन्हें यह सोचकर अत्यन्त दुःख होता है कि जिस सीता के कारण संसार पवित्र हुआ आज उसी के विषय में लोग अपवित्र उक्तियां कह रहे हैं । आत्मग्लानि से श्री राम का हृदय पीड़ित हो उठता है । सीता निर्वासन जैसे कुकृत्य का विचार कर वे व्याकुल हो उठते हैं और इसीलिए प्रसुप्ता सीता के मस्तक के नीचे से अपना हाथ हटा लेते हैं । इसप्रकार वे अनेक प्रकार से अपने "निर्वेद" की अभिव्यक्ति करते हैं ।

सीता को निर्वासित करने के पश्चात् भी प्रतिपल राम का ध्यान सीता के सुख दुःख में ही लगा रहता है । प्रथम अंक के अंत में राम भगवती पृथ्वी तथा भागीरथी जी से सीता की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं ।

1- उ0च0- पृ0 17 - यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत्, ततः कष्टं स्यात् ।

2- उ0च0 1/11, 12

3- उ0च0 - 1/14

"भगवति वसुन्धरे! श्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्"[1] सीता के प्रति राम की यही चिन्ता करुणा की पुष्टि करती है । यहीं पर " चिन्ता" नामक अवस्था है ।

दुःख और करुणा की जो धारा प्रथम अंक में देखी गई थी, वह द्वितीय अंक में भी दृष्टिगोचर होती है । गर्भिणी सीता के परित्याग जैसा निर्दय कार्य करने के बाद अब उन्हें प्रजा के कल्याण के लिए तपस्यारत शूद्र तपस्वी का वध करना है । कर्तव्य पालन के लिए ही वे शूद्र तपस्वी पर प्रहार करते हैं तथा कहते हैं " कृतं रामसदृशं कर्म "[2] यहां श्री राम की शोचनीय दशा के अतिरिक्त ग्लानि, शंका, आदि भाव भी दिखाई दे रहे हैं । जनस्थान के पूर्व परिचित स्थलों को देखकर उनका दुख पुनः जाग उठता है । उनका हृदय व्यथित हो उठता है और पागल से होकर कहने लगते हैं कि "बहुत पहले उठा हुआ दुःख आज नया सा होकर मुझे व्यथित कर रहा है ।"[3] उनका हृदय व्याकुल हो उठता है और वे कहते है -

> पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
> विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम् ।
> बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
> निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ।।[4]

अर्थात् जिस पंचवटी में उन्होंने अपनी प्रिया के साथ वे दिन अत्यन्त

1- उ0च0 - पृ0 80

2- उ0च0 पृ0 102

3- उ0च0- 2/26- पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव ।।

4- उ0च0 - 2/26

आनन्दपूर्वक व्यतीत किये थे, उसी पंचवटी को आज राम सीता के बिना कैसे देखें । उनका यह स्मृतिजन्य विषाद अत्यन्त करूण है । यहाँ पर "स्मृति" नामक अवस्था है ।

तृतीय अंक में अदृश्य सीता राम को तो देखती हैं किन्तु राम सीता को नहीं देख पाते । इस अंक में करूणा की अत्यन्त मार्मिक, गम्भीर एवं हृदयावर्जक व्यंजना हुई है । आरम्भ में ही राम के दु:ख को पुटपाक के सदृश बताया गया है -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथ: ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करूणो रस: ।।[1]

अर्थात् सीता त्याग के पश्चात् राम की वेदना, जिसे गम्भीरता के कारण वे व्यक्त नहीं कर पाते घनीभूत होकर पुटपाक के समान उन्हें भीतर ही भीतर जला रही है । दीर्घ शोक से सन्तप्त होकर वे अत्यन्त दुर्बल हो गये है । पंचवटी में दु:ख ही उनका एकमात्र साथी है । पंचवटी के पूर्वानुभूत दृश्यों को देखकर सीता की स्मृति में व्याकुल होना स्वाभाविक है ।

वासन्ती भी पूर्व स्मृतियों को स्मरण कराकर उनकी वेदना को और अधिक उद्दीप्त करती है और कहती है कि यह वही स्थल है जहाँ आप सीता की प्रतीक्षा किया करते थे और गोदावरी के तट से लौटी हुई सीता आपको प्रतीक्षारत देखकर मुग्धा एवं कातर-भावा प्रणाम करती थी -

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षण:
सा हंसै: कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते ।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया:
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्ध: प्रणामाञ्जलि: ।।[2]

1- उ0च0- 3/1 2- उ0च0 3/37

धनञ्जय ने इस पद्य को प्रणयमान का उदाहरण बताया है[1] ।

पंचवटी के कान्धक-तुल्य-द्रुमों, वृक्षों, मृगों, पशु,पक्षियों को तथा गोदावरी, कन्दराओं को देखकर उन्हें सीता के साथ निवास करने के वे सभी दिन स्मरण हो आते हैं । श्री राम दण्डकारण्यवास प्रियसखी तथा विदेहराजपुत्री सीता का स्मरण कर मूच्छित हो जाते हैं । सीता अपने कर स्पर्श से उनकी चेतना वापस लाती है । उन्हें सीता के जीवित होने का हल्का सा बोध होता है किन्तु उनके चेतन मन में सीता के दिवंगत होने का भाव इतना प्रबल एवं दृढ़ है कि वे उसे भ्रम समझकर संतोष कर लेते हैं । वासन्ती जानती है कि सीता के वियोग से राम अत्यन्त व्यथित है । वह राम के दु:ख से अत्यन्त दु:खित है तथा उन्हें धैर्य बंधाती है किन्तु जाने अनजाने वह पंचवटी के जिन दृश्यों को दिखाती है तथा जिनका वे स्मरण कराती है वे सब उनकी वेदना को तीव्रतर करने में सहायक होते हैं । वह कहती है कि यह वही मयूर है जिसे आपकी प्रिया ने प्रतिदिन पोषित किया था -

अनुदिवसमवर्धयत् प्रिया ते
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम् ।
मणिमुकुट इवोच्छिख: कदम्बे
नदति स एष वधूसख: शिखण्डी ।।[2]

राम सीता के वियोग में अत्यन्त शोकातुर हैं । उनकी पीड़ा असीम है । उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया है कि सीता की अंगलतिका वन के हिंसक पशुओं द्वारा नष्ट कर दी गयी है[3] । सीता की उस दशा का स्मरण कर

1- द०रू० 4/58 2- उ०च० - 3/18
3- उ०च० - 3/28

कहते हैं कि " हे प्रिय जानकी ! तुम कहां हो " पंचवटी के प्रत्येक दृश्य को देखकर उनकी व्याकुलता एवं विरह वेदना द्विगुणित हो जाती है । वे अपने उद्वेग, मोह, दाह और हृदय को विदीर्ण करने वाले दु:ख का वर्णन इन शब्दों में करते हैं -

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकल: कायो मोहं न मुंचति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाह: करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ।।[1]

अर्थात् मेरा हृदय फटा जा रहा है परन्तु शोक के संवेग के कारण दो खण्डों में अलग अलग नहीं हो जाता । वह व्याकुल शरीर मूर्च्छा को तो वहन करती है पर चेतना को सदा के लिए त्याग नहीं पाती । यह हृदय का सन्ताप शरीर को जलाता तो है, किन्तु प्राणों का अन्त नहीं कर रहा है । यहां "उद्वेग" तथा "प्रलाप" नामक अवस्था है ।

पंचवटी के दर्शन से उनकी दु:खाग्नि जो अभी तक उनके अन्त:करण में छिपी हुई थी आज उद्दीप्त होकर जलने लगती है और "मोह" ने उन्हें आवृत कर दिया है । वे व्यथित होकर कहने लगते हैं कि सीता के बिना मुझे यह संसार सूना लग रहा है । मुझे मोह ने घेर लिया है, मैं भला क्या करूं ।

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्ध:
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोह: स्थगयति कथं मन्दभाग्य: करोमि[2] ।।

1- उ०च० - 3/31 2- उ०च० - 3/38

यहाँ "उन्माद" नामक अवस्था है ।

इस प्रकार भवभूति ने तृतीय अंक में करूणा का अगाध सागर ही प्रवाहित कर दिया है । इस अंक में दु:ख ने अपने विकास की चरम सीमा को स्पर्श कर लिया है । यहाँ तक कि राम की करुण दशा को देखकर पाषाण भी रोने लगते हैं और वज्र का भी हृदय विदीर्ण हो उठता है -

"अपि ग्रावा रोदित्यापि दलति वज्रस्यापि हृदयम् " ।।[1]

महाकवि की प्रतिभा ने सीता को अदृश्य रखकर राम और सीता के इस अल्पकालीन मिलन को भी दु:ख में परिणत कर दिया है । तृतीय अंक में सीता की करूण दशा भी पूर्णतया अभिव्यक्त हो रही है । सीता की वियोगावस्था को देखकर तमसा कहती है कि सीता के मुखकमल को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो वह स्वयं विरहवेदना हो, अथवा करूणा की मूर्ति हो ।

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकबरीकमाननम् ।
करूणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी ।।[2]

सीता के विरह में राम की वियोगावस्था को देखकर वासन्ती कहती है कि एकदम दुबले हो जाने के कारण तथा शरीर के पीले पड़ जाने के कारण श्री राम को पहचानना भी कठिन हो गया है ।

नवकुवलयस्निग्धैरङ्गैर्ददन्नयनोत्सवं
सततमपि न: स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव स: ।
विकलकरण: पाण्डुच्छाय: शुचा परिदुर्बल:
कथमपि स उन्नेतव्यस्तथापि दृशो: प्रिय: ।।[3]

1- उ०च० 1/28   2- उ०च० 3/4   3- उ०च० 3/22

इस प्रकार नायक और नायिका दोनों ही के विरह में इतने दुर्बल हो गये हैं कि उन्हें पहचानना भी कठिन हो गया है । अत: यहाँ "व्याधि" नामक अवस्था है । इसप्रकार तृतीय अंक में राम और सीता की करुण दशा के साथ वासन्ती के दु:ख की भी अभिव्यक्ति हुई है ।

पंचवटी के पूर्व दृश्यों का स्मरण कर राम बार बार मूर्च्छित हो जाते हैं । सीता अदृश्य रूप में ही अपने कर स्पर्श से उनकी चेतना वापस लाती है । सीता के वियोग से वे पीड़ित है । सीता की स्मृति के कारण राम "जडता" से आक्रान्त है तथा कहते हैं -

> करपल्लव: स तस्या: सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्ट: ।
> परिकम्पिन: प्रकम्पी करान्मम स्विद्यत: स्विद्यन् ।।[1]

अर्थात् मेरे जड़ हो गये हुए, काँपते हुए तथा स्वेदयुक्त हाथ से सीता का करकिसलय अचानक छूट गया । यहाँ "जडता" नामक अवस्था है ।

श्री राम सीता वियोग से व्यथित होकर कहते हैं कि सीता का वह वियोग तो शत्रुओं को समाप्त कर देने के लिए ही था परन्तु यह तीक्ष्ण और चुपचाप सह लेने योग्य प्रलय तो अनन्त प्रतीत हो रहा है । यह सुनकर सीता कहती है - "बहुमानितास्मि पूर्वविरहे । निरवधिरिति हा हतास्मि"[2] । अर्थात् पहले वाले विरह के सम्बन्ध में तो मुझे पर्याप्त सम्मान दिया गया । "निरवधि" यह शब्द तो मुझे मार डाल रहा है । यहाँ राम और सीता को मृत्यु तुल्य दु:ख हो रहा है अत: यहाँ "मृति" नामक अवस्था है ।

1- उ0च0 3/41
2- उ0च0 3/44 - पृ0 199

चतुर्थ अंक में जनक और कौशल्या का मिलन भी करुणा से ओत-प्रोत है । जनक अपनी पुत्री सीता के वियोग से अत्यन्त दु:खी हैं वे कहते हैं कि लगातार उठने वाला तीव्र दु:ख बहुत समय बाद नया सा होकर रूक भी नहीं रहा है[1] । यहां पर सीता का "स्मरण" वात्सल्य का उद्रेक करता हुआ दु:ख का ही परिपोष करता है । सीता का स्मरण कर कौशल्या भी विलाप करती हैं । कौशल्या के निर्वेद, ग्लानि, स्मृति, विषाद, मूर्छा आदि द्वारा दु:ख की सम्यक् अभिव्यंजना हुई है । उनकी कल्पना भी करुणा से ओत-प्रोत तथा हृदयद्रावक है[2] । जनक जैसे ब्रह्मज्ञानी तथा कौशल्या जैसी विदुषी भी वात्सल्य भाव मे बहकर करुण क्रन्दन करने लगती हैं ।

पंचम अंक में भी घोर युद्ध के वातावरण में करूणा की कुछ बूंदे अनायास ही बरस पड़ती है । दशरथ के साथी और राम के पूज्य वयोवृद्ध सुमन्त्र लव को ध्यानपूर्वक देखते हैं और सीता के आभाव के कारण दारूण शोक के वशीभूत हो अत्यन्त संतप्त हो जाते हैं । षष्ठ अंक में भी कवि ने वात्सल्य का पर्यावसान करूण में कर दिया है । राम कुश और लव को न पहचानते हुए भी एक विचित्र वात्सल्य का अनुभव करते हैं तथा उनकी आकृति में सीता के सौन्दर्य का अनुभव करके अत्याधिक दु:खी हो उठते हैं ।

सप्तम अंक में भी राम और सीता के मिलन से पूर्व दु:ख के अनेक भाव दिखाई देते हैं । गर्भांक नाटक प्रस्तुत किया जाता है । गर्भांक में नेपथ्य से सीता का करुण विलाप सुनाई दे रहा है जिसे सुनकर राम का दु:ख और भी उद्दीप्त हो जाता है । वे सीता की दशा देखकर अत्यन्त

1- उ०च० 4/3

2- उ०च० पृ० 245

दु:खित होते हैं । अपने समक्ष भागीरथी तथा पृथ्वी द्वारा सम्भाली हुई सीता को देखकर उनके नेत्रों में अश्रु भर आते है और वे लक्ष्मण का सहारा लेते हैं । दु:ख के इस लहराते सागर में सीता का एक एक शब्द एक एक वाक्य करूणा की छोटी बड़ी तरंगों को अग्रसर करता हुआ सा प्रतीत होता है ।

इस प्रकार नाटक में आरम्भ से अन्त तक राम और सीता विरह की अग्नि में झुलसते हैं और कई बार दोनों को मृत्युतुल्य दु:ख भी होता है । कुछ विद्वान करूणा से ओत-प्रोत इस नाटक में करूण रस को अंगी रस स्वीकार करते हैं किन्तु अन्त में राम और सीता का मिलन हो जाने के साथ ही करूण रस इस नाटक का अंगी रस नहीं बन पाता है । करूण रस में नायक और नायिका का आत्यन्तिक वियोग अनिवार्य है और यह तभी सम्भव है जब दोनों में से किसी एक की मृत्यु हो जाये और फिर मिलन कभी सम्भव न हो किन्तु यहां राम और सीता का वियोग आत्यन्तिक नहीं है, राम केवल भ्रमवश इसे आत्यन्तिक समझ लेते हैं । अंत में गंगा, पृथ्वी, अरून्धती और वाल्मीकि के आशीर्वाद से राम और सीता का मिलन हो जाता है और आत्यन्तिक वियोग का कोई अवसर नहीं रह जाता । अत: इस नाटक का अंगी रस करूण मानने वाले विद्वानों का मत स्वत: ही निराधार हो जाता है । इसकी विस्तृत चर्चा हम आरम्भ में कर चुके हैं ।

उत्तररामचरितम् में आरम्भ से अंत तक विभिन्न पात्रों का कातर भाव उपयुक्त ही प्रतीत होता है क्यों कि उन्हें विश्वास है कि हिंस्र पशुओं द्वारा सीता का भक्षण कर लिया गया है[1] । जनक, कौशल्या, वासन्ती आदि भी इसी विश्वास के आधार पर विलाप करते हैं परन्तु कवि ने सामाजिकों

1- उ०च० 3/28 " क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता"

को इस क्रम में नहीं रखा है । तृतीय अंक में "सामाजिक" छाया रूप में सीता के दर्शन भी कर लेते हैं । अत: शोक स्थायी भाव न रहकर विप्रलम्भ श्रृंगार का ही एक अंग बन जाता है । शास्त्रीय भाषा में इसे "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" कहते हैं[1] । इस प्रकार देखते हैं कि सम्पूर्ण नाटक में करूण को प्राधानता देते हुए भी अन्त में राम और सीता का मिलन कराकर भवभूति ने करूण का पर्यावसान श्रृंगार रस में करा दिया है । अत: नाटक में "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार ही अंगी रस है ।

उत्तररामचरितम् में अन्य रस - उत्तररामचरितम् में संयोग श्रृंगार, वीर, अद्भुत, हास्य तथा वात्सल्य रसों की भी स्थिति है ।

वीर रस - प्रताप, विनय आदि विभावों के द्वारा विभावित होकर दया, युद्ध, दान आदि अनुभावों के द्वारा अनुभावित होकर तथा गर्व, धृति, हर्ष, अमर्ष, स्मृति, मति, वितर्क इत्यादि व्यभिचारी भावों के द्वारा भावित होकर उत्साह नामक स्थायी भाव का आस्वादन होता है अर्थात् वह सहृदयों के चित्त का विस्तार करते हुए आनन्द प्रदान करता है, यही वीर रस है । यह तीन प्रकार का होता है - दयावीर, युद्धवीर तथा दानवीर[2] ।

वीर रस का चरम उत्कर्ष चतुर्थ अंक की समाप्ति के पूर्व देखा जाता है । "उत्साह" पूर्वक लव अश्व को देखकर कहता है - कि "यह अश्वमेध विश्व-विजयी क्षत्रियों के शक्तिशाली उत्कर्ष की कसौटी है, जिससे सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति तिरस्कृत होती है[3] । इतने में उसे वीर-घोषणा सुनाई देती है, जिसका

1- सा0 द0 3/209

2- दशरूपकम् - 4/72

3- उ0च0-पृ0 25।

प्रत्येक अक्षर उसके स्वाभिमान को ठेस पहुंचाता है । वह "गर्व" के साथ कहता है कि " तो क्या पृथ्वी क्षत्रियों से विहीन हो गई है, जो इस प्रकार कहा जा रहा है ।[1]" वह सैनिकों को धिक्कारते हुए महाराज रामचन्द्र की विजय-पताका छीन लेता है और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हुए क्रुद्ध होकर कहता है -

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् [2] ।।

यहाँ लव के हृदय में "उत्साह" का आविर्भाव अश्वमेध के अश्व को देखकर ही हुआ है । अत: अश्वमेध का घोड़ा आलम्बन है । क्षत्रियों के प्रति क्रोध, राजपुरुष का कथन आदि वाक्य उद्दीपन विभाव है । लव की गर्वोक्तियां, अश्व को ढेलों से मारते हुए ले जाना, धनुष चढ़ाना आदि अनुभाव है । गर्व, उग्रता, औत्सुक्य, अमर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं ।

चतुर्थ अंक में जो वीर रस का भाव जागृत होता है, वह पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु के साक्षात् मिलन के साथ ही चरम सीमा पर पहुंच जाता है । लव सैनिकों पर बाण वर्षा करने में व्यस्त हैं । कुछ रोष के कारण उसका मुख आरक्त हो जाता है । लव के तमतमाये हुए चेहरे को देखकर चन्द्रकेतु कहता है -

---

1- उ0च0 - पृ0 252

2- उ0च0 - 4/29

किरति कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्री -
रविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण ।
समरशिरसि चञ्चत्पञ्चचूडश्चमूनाम्
उपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः [1] ।।

उसकी मौर्वी का घोष गर्जना करते हुए गिरि-कुञ्जरों के कर्णों को पीड़ित कर रहा है । रूण्ड-मुण्डों से उसने पृथ्वी को आच्छादित कर दिया है । भवभूति ने लव के शौर्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है । वह निर्भीक बालक है । चन्द्रकेतु का आह्वान सुनकर वह उसकी ओर आकर्षित होता है, तभी कुछ सैनिक लौट कर उसे घेर लेते हैं । वह जृम्भकास्त्र से सभी सैनिकों को निश्चेष्ट कर देता है । सैनिकों के कोलाहल को शान्त करके अपने प्रतिद्वन्दी चन्द्रकेतु के समीप पहुँचता है । चन्द्रकेतु जब रथ से नीचे उतरता है तब लव कहता है कि कुमार ! " आप तो रथ पर ही शोभित होते है । इतना आदर दिखाने की आवश्यकता नहीं है "[2] । " आप भी दूसरे रथ को सुशोभित करें " चन्द्रकेतु के इस प्रस्ताव को सुनकर वह दर्पपूर्ण उत्तर देता है कि " हम वनवासी है हमें रथ पर चलने का अभ्यास नहीं है ।

लव को राम के प्रति कोई द्वेष या ईर्ष्या नहीं है किन्तु अश्व रक्षकों द्वारा समस्त क्षत्रिय जाति पर आक्षेप करने पर उसका अहंकार उद्दीप्त हो जाता है । बात ही बात में लव राम की वीरता की आलोचना करता है[3] तब चन्द्रकेतु क्रुद्ध हो जाता है । लव भी चन्द्रकेतु की भृकुटी देखकर उत्तेजित

1- उ0च0 - 5/2

2- उ0च0 पृ0 283

3- उ0च0 5/32, 34

हो जाता है और दोनों का क्रोध भड़क उठता है । वे दोनों युद्ध के लिए युद्ध भूमि में आ जाते हैं । षष्ठ अंक में विद्याधर द्वारा लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का बड़ा ही उत्तेजनापूर्ण वर्णन किया गया है । इस वर्णन में वीर रस की ही प्रधानता है । राम के आगमन से युद्ध समाप्त हो जाता है किन्तु कुश के प्रवेश से एक बार फिर "उत्साह" नामक स्थायी भाव दिखाई देता है। वह क्रोध के साथ वीरता पूर्वक अपने धनुष को उठाते हुए "हर्ष" और"धैर्य" के साथ कहता है -

> दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो
> दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभि:
> आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
> दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनु: [1] ।।

यहां पर चन्द्रकेतु तथा लव के युद्ध को देखकर कुश के हृदय में"उत्साह" नामक स्थायी भाव जागृत होता है । चन्द्रकेतु तथा उसके सैनिक आदि आलम्बन हैं । क्षत्रियों के प्रति क्रोध तथा दण्डायन द्वारा युद्ध का वर्णन आदि उद्दीपन विभाव है । कुश की उत्तेजना पूर्ण उक्तियां धनुष चढ़ाना, धनुष का ठोकना आदि अनुभाव हैं । धैर्य, हर्ष, अमर्ष, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं । कुश के पौरुषातिरेक से राम अत्यन्त प्रभावित होते हैं तथा उसे अपनी ओर आते देखकर कहते हैं कि"इसकी दृष्टि तीनों लोकों की शक्ति के सार को तिनका बना देने वाली है, धीर और गर्वीली चाल धरती को दबाए सी दे रही है । कुमारावस्था में भी पहाड़ की सी गुरूता धारण करने वाला क्या यह साक्षात् वीर रस ही आ रहा है अथवा क्या स्वयं दर्प ही है ।[2]"

1- उ0च0 - 6/18 2- उ0च0 6/19.

इस प्रकार भवभूति ने चतुर्थ पंचम तथा षष्ठ अंकों में वीर रस का विस्तार किया है ।

संयोग श्रृंगार - संयोग श्रृंगार में नायक नायिका अभीष्ट समागम प्राप्त कर लेते है । दोनों के समागम में उभयाश्रित रति प्रकृष्ट रूप को प्राप्त कर संयोग श्रृंगार कहलाती है । जहां नायक नायिका एक दूसरे के अनुकूल होकर दर्शन स्पर्श आदि का परस्पर उपभोग करते है वहां प्रसन्नता तथा उल्लास से युक्त संयोग श्रृंगार होता है[1] । इसमें लीला आदि दस चेष्टाएं होती है । जो दाक्षिण्य मृदुता तथा प्रेम के अनुरूप होती है[2] । उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़ कर अन्य निर्वेद आदि इसके संचारी भाव होते हैं ।

नाटक में संयोग श्रृंगार का बहुत सुन्दर एवं हृदयग्राही चित्रण हुआ है । नाटक के प्रथम अंक में संयोग श्रृंगार के कुछ अव्यक्त मधुर चित्र खींचे गये हैं, जो अत्यन्त हृदयग्राही हैं । राम सीता प्रौढ़ दम्पती हैं इसलिए नवविवाहित पति-पत्नी की तरह आनन्दोल्लास का वर्णन यहां नहीं किया गया है । महाकवि भवभूति ने राम और सीता के अतीत की अनेक स्मृतियों को अंकित कर उनके प्रगाढ़ प्रेम का स्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक चित्रण किया है । चित्र दर्शन के समय सीता राम के सुन्दर और सौम्य कान्ति वाले शङ्कर के धनुष को अनायास तोड़ देने वाले और काकपक्ष के कारण लुभावने लगने वाले उस रूप का स्मरण करती है जिसे देखकर जनक आश्चर्य-चकित

1- दशरूपकम् - 4/69

अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यं विलासिनौ

दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वित: ।।

2- दशरूपकम् - 4/70

हो गये थे[1] । चित्रदर्शन को देखकर राम कालिन्दी-कूल पर श्याम वट की छाया में व्यतीत किये हुए क्षणों को स्मरण कर कहते हैं-

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा -
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता[2] ।।

यहाँ आश्रय राम, आलम्बन सीता है । जंगल का मार्ग, यमुना का तट, वट की छाया उद्दीपन है तथा श्रम, आलस्य और निद्रा व्यभिचारी भाव है । लीला, विलास और केलि आदि अनुभाव है और स्थायी भाव रति है । इसमें विभावादि अंगों से परिपुष्ट संयोग श्रृंगार की अभिव्यंजना हुई है । संयोग श्रृंगार का एक और सुन्दर उदाहरण भवभूति ने प्रस्तुत किया है । राम और सीता जनस्थान में हैं । गोदावरी के दोनों तटों पर घने वृक्षों से आच्छादित वन हैं । गोदावरी का कल-कल निनाद प्रतिध्वनित हो रहा है । निरन्तर वर्षा से बादलों के कारण स्निग्ध एवं नीलिमा वाला यह प्रस्रवण पर्वत है । उद्दीपन की इतनी सामग्री को प्रस्तुत कर कवि ने नायक नायिका के श्रृंगार का वर्णन किया है -

किमपि किमपि मन्दम्मन्दमासक्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो -
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्[3] ।।

1- उ0च0 पृ0 33
2- उ0च0 1/24
3- उ0च0 - 1/27

सीता के स्पर्श से राम अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का वर्णन स्वयं करते हैं - यहाँ मोह, निद्रा, हर्ष आदि भाव दिखाई दे रहे हैं ।

तवस्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यम् भ्रमयति च सम्मीलयति च[1] ।।

सीता के मधुर वचनों को सुनकर अत्यन्त सुख प्राप्त होता है तथा आनन्दित होकर राम कहते हैं कि तुम्हारे यह मधुर वचन ही मेरे मुरझाये हुए जीवन कुसुम को खिलाने वाले हैं, वे मुझको प्रसन्न करते हैं और मेरी इन्द्रियों को तृप्त करते हैं । वे मेरे कानों के लिए अमृत के समान हैं और मस्तिष्क के लिए औषधि के समान है ।

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरूहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि[2] ।।

चित्रदर्शन से परिश्रान्त सीता जब विश्राम लेना चाहती हैं तब राम अपनी भुजा को उनका उपधान बना देते हैं और वे राम के हृदय पर मस्तक रखकर सो जाती हैं उनको देखकर राम के मन में जिन भावों का उदय होता है, उससे दाम्पत्य-प्रेम की पराकष्ठा का स्वरूप अंकित होता है । यहाँ प्रसुप्ता सीता को देखकर ही राम के मन में "रति" नामक स्थायी भाव जागृत होता है -

इयंगेहे लक्ष्मी रियममृतवर्तिर्नयनयो -
रसावस्या: स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस:
अयम्बाहु: कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसर:
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरह:[3] ।।

1- उ0च0 1/35 2- उ0च0 1/36 3- उ0च0 1/38

इस प्रकार नाटक में केवल प्रथम अंक में ही संयोग श्रृंगार का अत्यन्त सूक्ष्म एवं हृदयग्राही वर्णन देखा जाता है । इसके बाद द्वितीय से सप्तम् अंक में संयोग श्रृंगार के लिए कथानक में कोई अवकाश नहीं है ।

हास्य रस - अपने अथवा दूसरे के विकृत वेष तथा भाषा आदि विभावों का आलम्बन करके उत्पन्न होने वाला हास नामक स्थायी भाव है । उसका परिपोष ही हास्य रस है[1] । निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि तथा मूर्च्छा व्यभिचारी भाव होते हैं[2] ।

उत्तररामचरितम् में हास्य रस पूर्ण विकसित नहीं हुआ है किन्तु भवभूति ने अपनी प्रतिभा से करूणा से ओत-प्रोत उत्तररामचरितम् में आवश्यकता-अनुसार हास्य रस की भी योजना की है । प्रथम अंक में अष्टावक्र का प्रवेश होता है । "अष्टावक्र के विषय में वीरराघव स्वयं कहते हैं- " हास्यरसानुप्रवेशार्थम् अष्टावक्रप्रवेशः[3] "। तृतीय अंक में अत्यन्त कारूण्य वर्णन के पश्चात् सामाजिकों की मानसिक वेदना को कुछ कम करने के उद्देश्य से ही चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में दण्डायन और सौधातिक के वार्तालाप में हास्य रस का पुट दे दिया है । सौधातिक की प्रायः सभी उक्तियाँ हास्य उत्पन्न करने वाली हैं । वसिष्ठ तथा राजमाताओं का स्वागत करता हुआ कहता है - " स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानां तपोधनानाम्[4] "। अर्थात् अध्ययन से छुट्टी दिलाने वाले और पक गई हुई

1- दशरूपकम् - 4/75
विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा ।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः ।।

2- दशरूपकम् - पृ0 384

3- उद्धृत- उत्तररामचरितम् - डा0 लाल रमायदुपाल सिंह

4- उ0च0- पृ0 210, 211

दाढ़ी वाले विविध प्रकार के तपस्वियों का स्वागत करता हूँ । इसी प्रकार एक स्थल पर और कहता है कि मैं तो समझा था कि ये कोई बाघ वाघ है क्यों कि इनके पहुंचते ही उस बेचारी कपिला बछिया को बलात् मार डाला है । ब्राह्मण बालकों द्वारा अपरिचित अश्व का विशद वर्णन भी हास्य को उत्पन्न करता है ।

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान् ।
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ।।[1]

यहाँ पर आश्रम बालक "आश्रय" है । अश्व आलम्बन है । घोड़े की विचित्र आकृति लम्बी सी पूँछ, लम्बी गर्दन आदि उद्दीपन विभाव है । अश्व को देख कर हँसना, उसको देखकर विशद वर्णन करना आदि अनुभाव है । शंका ग्लानि आदि व्यभिचारी भाव है । इन विभावादि अंगों से परिपुष्ट हास्य रस की अभिव्यंजना हो रही है । प्रथम अंक में चित्रदर्शन के समय लक्ष्मण कहते हैं कि यह आदरणीया माण्डवी है और यह श्रुतकीर्ति है । इसके उत्तर में सीता का प्रश्न- वत्स इयमपरा का[2] मधुर परिहास का ही उद्बोधक है ।

अद्भुत रस - अलौकिक पदार्थों से उत्पन्न होने वाला विस्मय स्थायी भाव ही जिसका जीवन है, यह अद्भुत रस है । अश्रु, कम्पन, प्रस्वेद तथा गद्गद होना आदि उसके कार्य अनुभाव है, हर्ष आवेग और धृति इत्यादि

1- उ0च0 4/26

2- उ0च0 पृ0 36

इत्यादि व्यभिचारी भाव है[1]।

लव और चन्द्रकेतु के युद्ध में दोनों ओर से दिव्यास्त्रों का प्रयोग होने पर अनेक स्थलों पर अद्भुत रस का संचार होता है। चन्द्रकेतु क्रुद्ध होकर आग्नेय अस्त्र का प्रयोग करता है। जिसके प्रयोग से उसके बाण अग्नि की वर्षा करने लगते हैं। जिसका शब्द सुनकर चामरों से युक्त विमानों के समूह आकाश में इधर उधर भागने लगते हैं। बज्रखण्ड के विस्फोट के सदृश भयंकर शब्द करती हुई अग्नि की ज्वालाएं बहुत ऊपर तक पहुंच गई हैं और उड़ती हुई चिनगारियों से युक्त होकर भयानक ढंग से सभी वस्तुओं का ग्रास करने लगी हैं[2]। शीघ्र ही इन भयंकर अलौकिक शक्तियों को शान्त करने के लिए लव वरूणास्त्र का प्रयोग करता है, जिससे आकाश बादलों से आच्छादित हो जाता है और बिजलियां चमकने लगती हैं। वरूणास्त्र के प्रयोग से, निरन्तर जलधाराओं के सम्पात से चन्द्रकेतु का अग्नयास्त्र समाप्त हो जाता है परन्तु चन्द्रकेतु लव के वरूणास्त्र को समाप्त करने के लिए वायव्य अस्त्र छोड़ देता है, जिससे चारों ओर मंडराते हुए असंख्य मेघ लुप्त हो जाते हैं[3]। भवभूति ने यह अद्भुत वर्णन आश्चर्य चकित विद्याधर दम्पती द्वारा करवाया है। यहां अलौकिक शक्तियों से उत्पन्न होने वाला "विस्मय" स्थायी भाव ही जागृत हो रहा है।

1- दशरूपकम् - 4/78,79

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः।
कर्मास्यसाधुवादाश्रु वेपथुस्वेदगद्गदाः ।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः ॥

2- उ0च0 - 6/4

3- उ0च0 पृ0 217,218

सप्तम अंक में गर्भांक नाटक में अनेक स्थलों पर अद्भुत रस देखा जाता है । जब गोद में एक एक शिशु को लेकर भगवती पृथ्वी तथा भागीरथी जल से निकलती है तब सामाजिकों को आश्चर्य की अनुभूति होती है । गर्भांक में जृम्भकास्त्रों के आविर्भाव के अवसर पर भी अद्भुत रस के दर्शन होते हैं ।

रौद्र रस - मात्सर्य तथा शत्रु द्वारा किये गये उपकार आदि विभावों से होने वाला जो क्रोध है उसकी पुष्टि रौद्र रस कहलाता है । इसके पश्चात् क्षोभ उत्पन्न होता है, जो ओठ चबाना, कांपना, भौहें टेढ़ी करना, पसीना, मुख लाल होना आदि तथा शस्त्र उठाना, डींग मारना, अपने कंधे पर तथा भूमि पर चोट करना, प्रतिज्ञा करना इत्यादि आङ्गिक, वाचिक अनुभावों तथा सात्त्विक भावों से युक्त होता है । इसमें अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, असूया उग्रता तथा वेग आदि अनुभाव हुआ करते हैं[1] ।

रौद्र का स्थायी भाव क्रोध है जब कि वीर का उत्साह स्थायीभाव है । रौद्र में विवेक नहीं होता लेकिन वीर में विवेक होता है । उत्तररामचरितम् में रौद्र रस की सुन्दर छटा यत्र-तत्र दृष्टिगोचार होती है । सीता परित्याग का कारण जानकर जनक सम्पूर्ण प्रजा को ही अपने चाप और शाप से नष्ट करने के लिए तैयार हो जाते हैं किन्तु अरून्धती द्वारा समझाये जाने पर शान्त हो जाते हैं ।

एतद्वैशसवज्रघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः
क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा[2] ।।

1- दशरूपकम् - 4/74 क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः
क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभृकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः ।
शस्त्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै -
रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौग्र्यवेगादयः ।।

2- उ0च0 4/24

लव के द्वारा अश्व हरण की बात सुनकर सारे सैनिक आपे से बाहर हो जाते हैं और उनके संहार के लिए उद्यत हो जाते हैं । सेना के आक्रमण से क्रुद्ध लव अपनी क्रोधाग्नि की उपमा वडवानल से देता है -

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभु -
क्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे ।
समन्तादुत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकल:
पयोराशेरोघ: प्रलयपवनास्फालितइव ।।[1]

अर्थात् " हर तरफ उठता हुआ घने रणसङ्कुलविलास का यह कोलाहल, पहाड़ों के टकराने से क्षुब्ध कर दिए गए हुए वडवामुखानल का ग्रास बनने वाले प्रलय की झंझा से आलोडित समुद्र के प्रवाह की तरह, मेरी प्रचण्ड कोपाग्नि का कवल बने " । चन्द्रकेतु लव के मुख से राम की निन्दा सुनकर अत्यन्त उद्दीप्त हो जाता है । दोनों ही क्रोधावेश में लड़ने के लिए उन्मत्त हो जाते हैं । चन्द्रकेतु और लव के युद्ध को सुनकर कुश भी वहां पहुंच जाता है । वह क्रोधावेश में कहता है कि " मैं आज संसार से राजा शब्द ही समाप्त कर दूंगा और क्षत्रियों का दर्प सदा के लिए समाप्त कर दूंगा ।[2]

वात्सल्य- अधिकांश आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रन्थों में वात्सल्य को रस के के रूप में स्वीकार नहीं किया है । वात्सल्य को स्वतंत्र रस स्वीकार नहीं किया गया है वरन् इसका अन्तर्भाव श्रृङ्गार रस में ही कर दिया है । किन्तु विश्वनाथ ने वात्सल्य के स्वतन्त्र अस्तित्व का अनुमोदन किया है । उनके अनुसार प्रकट चमत्कारक होने के कारण कोई कोई वात्सल्य रस भी मानते हैं ।

1- उ०च० - 5/9   2- उ०च० - 6/16

इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी भाव होता है । पुत्रादि इसका आलम्बन और उसकी चेष्टा तथा विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव होते हैं । आलिङ्गन, अंग स्पर्श, सिर चूमना, देखना, रोमांच, आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव होते हैं । अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव होते हैं । इसका वर्ण कमलगर्भ के समान है और ब्राह्मी आदिक मातायें इसकी अधिष्ठात्री देवियां हैं ।[1]

उत्तररामचरितम् में वात्सल्य की अभिव्यक्ति के अनेक स्थल देखे जाते हैं और अंगी रस की सम्पुष्टि में पूरा सहयोग देता है । कुश और लव को आलम्बन बनाकर सीता के वात्सल्य का सीता को आलम्बन बनाकर जनक के वात्सल्य का, लव को आलम्बन बनाकर अरून्धती, जनक और कौशिल्या के वात्सल्य का तथा चन्द्रकेतु, लव और कुश को आलम्बन बनाकर राम के वात्सल्य का भवभूति ने अत्यन्त प्रभावोत्पादक चित्रण किया है । तृतीय अंक में मानवेतर प्राणियों के प्रति भी राम और सीता का वात्सल्य देखा जाता है । सीता के दु:ख से जनक अत्यन्त दु:खित होते हैं । वाल्मीकि आश्रम में पहुंचकर जनक को सहसा ही सीता का स्मरण हो आता है । वह कहते हैं -

अनियतरूदितस्मितं विराज
त्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशो: स्मरामि
स्खलदसमञ्जसमञ्जु जल्पितं ते ।[2]

1- साहित्यदर्पण- 3/251, 252, 253

2- उ0च0 - 4/4

अर्थात् हे पुत्री! अनिश्चित रूप से रोने और मुस्कराने, सुन्दर लगते हुए कुछ दूध के दाँतों के ही कलियों के अगले हिस्सेवाले और तुतलाती, अटपटी व मधुर बोली बोलने वाले शिशुरूप तुम्हारे मुख-कमल की याद कर रहा हूँ। लव को देखकर अरून्धती, कौशल्या, जनक आदि उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं और उनका वात्सल्य सहसा ही उमड़ पड़ता है। अरून्धती कहती है-

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
बटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियैव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूत्वा वत्सः स मे रघुनन्दनो
झटिति कुरूते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम् ॥[1]

अर्थात् "नीलकमल की पखुड़ियों की तरह चिकने साँवले रंगवाला, काकपक्ष रूपी आभूषण वाला, शोभा से ही सभी छात्रों के समूह को सुशोभित करता हुआ, पावन कान्तिवाला यह कौन पुनः शिशु रूप धारण किए राम के समान प्रतीत होता हुआ, मेरी दोनों आँखों में अमृताञ्जन लगाये दे रहा है।" लव और कुश को देखकर राम के मन में सहसा पुत्रवत् भावनाएं जागृत हो जाती हैं और वे कहते हैं कि चन्द्रमा और चन्दन के रस की तरह शीतल यह तुम्हारा स्पर्श मुझे आनन्दित कर रहा है।

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः ॥[2]

चन्द्रकेतु के प्रति भी राम का अत्यधिक वात्सल्य है। विमान

1- उ०च० 4/19　　　2- उ०च० 6/13

से उतरते ही श्री राम कहते हैं कि हे सूर्यवंश के चन्द्र चन्द्रकेतु ! तुमको देखकर मेरे चित्त का सन्ताप शान्त हो जाता है ।

दिनकरकुलचन्द्र चन्द्रकेतो
सरभसमेहि दृढ़ं परिष्वजस्व
तुहिनशकलशीतलैस्तवाङ्गैः
शममुपयातु ममापि चित्तदाहः ।।[1]

वाल्मीकि आश्रम में लव की कान्ति को देखकर कौशल्या के वात्सल्य का क्षीर पुनः छलछला उठता है और वे कहती हैं- कि राम की कौमार्यश्री के आश्रय से युक्त भोले-भाले और मनोहारी अंगों के द्वारा यह कौन बालक हमारी आँखों को ठण्डक पहुंचा रहा है ।[2]

इस प्रकार यद्यपि उत्तररामचरितम् का अंगी रस विप्रलम्भ श्रृंगार निर्धारित होता है तथापि उसमें संयोग श्रृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और अद्भुत रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है । अंगी रस के अतिरिक्त अन्य रस विशिष्ट स्थलों तक ही सीमित हैं किन्तु करूणा और कातरता से ओत-प्रोत इस नाटक में वीर, हास्य आदि रसों का संक्षिप्त किन्तु हृदयावर्जक चित्रण न केवल भवभूति के भाव-शिल्प का परिचायक है अपितु नाटक को एक रस और बोझिल होने से बचाता है । वात्सल्य यद्यपि अधिकांश आचार्यों के मत से रस की कोटि में परिगणित नहीं होता किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वात्सल्य न केवल मानव अपितु मानवेतर प्राणियों की भी एक प्रबल वृत्ति है, जो सम्भवतः प्रकृति ने सृष्टि की परिवर्धन की दृष्टि से प्राणिमात्र में स्थापित की है । सभी प्रकार के स्नेहों में अपत्य स्नेह को

1- उ०च० 6/8 2- उ०च०

सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है । वात्सल्य के इस महत्त्व को देखते हुए ही विश्वनाथ ने उसे "रस" स्वीकार किया है । भवभूति ने उत्तररामचरितम् में राम के अपत्य स्नेह का बहुत ही मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है । जनक के माध्यम से भी वात्सल्य की सृष्टि हुई है । वास्तविकता तो यह है कि विप्रलम्भ के पश्चात् सबसे सुन्दर चित्रण वात्सल्य भाव या वात्सल्य रस का ही हुआ है । इसके अनन्तर हम कुन्दमाला की रस योजना की समीक्षा करेंगे ।

कुन्दमाला में अंगी रस- उत्तररामचरितम् के समान ही कुन्दमाला में भी "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" अंगी रस है । अभिलाष, चिन्ता, स्मृति आदि कामदशायें विप्रलम्भ श्रृंगार में होती हैं । नाटक में लगभग सभी अवस्थाओं का वर्णन हुआ है । नाटक के आरम्भ में ही रथ पर आरूढ़ सीता को देखकर सूत्रधार कहता है- "कष्टं भोः । कष्टं भोः अति करूणं वर्तते" अर्थात् अत्यधिक करूणमय तथा दयनीय दृश्य उपस्थित हो रहा है । प्रथम अंक में लक्ष्मण का सीता के प्रति कारूण्य-भाव देखा जाता है । यद्यपि सीता निर्वासन का दुःख लक्ष्मण को असह्य था लेकिन फिर भी राजाज्ञा के कारण वे सीता को वन छोड़ने के लिए ले जाते हैं और जब वे राम का संदेश सीता से कहने के लिए उद्यत होते हैं तब उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि उनके हृदय में मानो कोई ग्रन्थि बंध गई है और वाणी वहीं रूक गई है ।[1] इतना दुःख, इतना असह्य कष्ट सहने के बाद भी वे श्री राम का संदेश सुनाते हैं । यहाँ लक्ष्मण की विवशता के साथ उनकी दयनीय दशा ध्वनित हो रही है । लक्ष्मण अपने जीवन को धिक्कारते हुए कहते हैं कि " इन दुःखों को देखने के लिए ही मुझ मन्दभागी

1- कुन्दमाला- 1/8

लक्ष्मण को हनुमान् ने जीवित किया था "[1]। लक्ष्मण, मुनियों से, भगीरथी से, हिंसक जन्तुओं से, नदियों और लोकपालों से सीता की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं । वाल्मीकि के हृदय में भी सहसा करूणा का आविर्भाव होता है इसीलिए वह असहाय रोती हुई गर्भजन्य से कष्ट व्याकुल स्त्री की व्यथा सुनकर तुरन्त आते हैं तथा उसे आश्रय देते हैं[2]। इस नाटक में "अभिलाष" नामक अवस्था का वर्णन नहीं हुआ है । राम लक्ष्मण द्वारा सीता को संदेश भेजते हैं कि "यज्ञ में तुम्हारी ही प्रतिमा मेरी धर्मपत्नी होगी"[3]। राम का उक्त संदेश सीता के वियोग दाह को कम करता है । यहाँ तक कि परित्याग किये जाने पर सीता की करूण दशा को देखकर वन के प्राणी भी शोक से विह्वल हो जाते हैं[4]।

द्वितीय अंक में सीता की वियोगावस्था चरम-सीमा पर पहुँच गयी है । जब उनकी वियोग व्यथा तीव्र हो उठती है तब वह चिन्तित होकर राम के लिए "निष्ठुर" शब्द का प्रयोग करती हैं । अनेक प्रकार से वे अपने "निर्वेद" की अभिव्यक्ति करती हैं । दु:ख, ग्लानि, शंका, श्रम आदि भाव उनके मन में जागृत होते हैं और इसीलिए प्राण-परित्याग का विचार उन्हें बार-बार व्यथित करता है । वेदवती सीता की अभिन्न सखी होने के कारण उनके दु:ख को दूर करना चाहती है और कहती हैं कि पुत्र के मुख को देखने पर भी राम के विरह का दु:ख समाप्त नहीं हुआ है । इन शब्दों को सुनकर सीता की विरहावस्था द्विगुणित हो जाती है । इस प्रकार द्वितीय अंक में सीता की विरहावस्था का अगाध सागर उमड़ता

1- कुन्दमाला - 1/17
2- कुन्दमाला - 1/27
3- कुन्दमाला- 1/14
4- कुन्दमाला- 1/18

हुआ दृष्टिगोचर होता है

तृतीय अंक में राम और सीता की विरहावस्था की अत्यन्त मार्मिक गम्भीर एवं हृदयावर्जक व्यंजना हुई है । श्री राम सीता के लिए प्रतिपल चिन्तित रहते हैं । वे कहते हैं कि " मैं ने अज्ञान के वश में आकर सीता का निर्वासन कर बहुत बड़ी भूल की है[1] "। वे अब भी पश्चाताप की अग्नि में झुलसते रहे हैं । यहां ग्लानि, निर्वेद आदि भाव दिखाई दे रहे हैं । राम की पीड़ा अत्यन्त कष्टदायक है । वह तपस्विनी सीता के प्रवास का स्मरण कर कहते हैं कि सीता मेरे बिना किसको देखती होगी और हिंसक सिंह आदि वन्य पशुओं से आक्रान्त वन में आशा रहित सीता किस प्रकार जीवन व्यतीत करती होगी । सीता के प्रति यही चिन्ता उनके दुःखी हृदय पर प्रतिपल छायी रहती है -

> पातयति सा क्वदृष्टिं कस्मिन्ना साद्य चित्तम् आश्वसिति ।
> जीवति कथं निराशा श्वापद्-भवने वने सीता ।।[2]

यहां पर "चिन्ता" नामक अवस्था है । सीता के निष्कारण प्रवास का स्मरण कर उनका विषाद चरम सीमा पर पहुंच जाता है । राम को सीता के जीवित होने का पूर्ण विश्वास है । कुन्दमाला के रचना-कौशल तथा पदचिह्नों को देखकर उनकी घनीभूत पीड़ा हठात् ही प्रस्फुटित हो उठती है । वे अपने हृदय को विदीर्ण करने वाले दुःख का वर्णन इन शब्दों में करते हुए कहते हैं कि कुन्दमाला और पदचिह्नों को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि देवी सीता यहीं कहीं है और उन्होंने यहां अभी-अभी पंक्ति बनाई है ।[3]

1- कुन्दमाला- 3/3 2- कुन्दमाला - 3/4 3- कुन्दमाला- 3/10

पूर्व परिचित स्थलों को देखकर राम का हृदय व्यथित हो उठता है । पूर्व स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क को आक्रान्त कर देती हैं । वनवास के समय का स्मरण कर राम कहते हैं कि सीता के हाथ को पकड़ कर अनेक प्रकार के आनन्द देने वाली रति सम्बन्धी कथाओं को कहते कहते और चलते चलते पैरों के शिथिल हुए वेग को स्मरण कर रहा हूँ ।

किसलय-सुकुमारं पाणिमालम्ब्य देव्या:
विविध-रति सखीभि: संकथाभिर् दिनान्ते ।
चरण-गमन-वेगान्मन्थरस्य स्मरामि
स्रुत-पयसि तटिन्या: सैकते चङ्क्रमस्य ।।[1]

यहाँ पर "स्मरण" नामक अवस्था है । उनके विरह का दु:ख फिर से नया रूप धारण कर उनके हृदय को व्याकुल करने लगता है । वह कहते हैं कि सीता ने मुझ अभागे का वरण करके कौन सा सुख प्राप्त किया है, वह एक के बाद एक निरन्तर दु:ख को प्राप्त कर रही है -

पूर्वं वन-प्रवास: पश्चाल्लङ्का तत: प्रवासोऽयम्
आसाद्य माम् अधन्यं दु:खाद् दु:खं गता सीता ।।[2]

यहाँ पर "उद्वेग" नामक अवस्था है ।

तृतीय अंक में राम की विरह अवस्था के साथ साथ सीता की विरहावस्था का वर्णन भी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । राम को गोमती नदी के समीप देखकर सीता की दृष्टि अनायास ही उधर आकृष्ट हो जाती है । वे अनेक प्रकार से "निर्वेद" "ग्लानि" आदि की अभिव्यक्ति करती

1- कुन्दमाला- 3/12 2- कुन्दमाला - 3/13

है तथा अपने विरह जन्य कष्टों का वर्णन इसप्रकार करती है कि राम को देखकर मुझे सन्तोष प्राप्त हो रहा है, बहुत दिनों से विरह जन्य कष्टों को भोग रही हूँ, यही दुःख है । अत्यन्त कठोर है- इसलिए अभिमान है । पुराना परिचय है- इसलिए प्रेम है, दर्शन के योग्य हैं इसलिए देखने की उत्कण्ठा उत्पन्न हो रही है । स्वामी है अतः आदरणीय है, कुश और लव के पिता है इसलिए पारिवारिक प्रेम भावना उद्बुद्ध हो रही है । मुझे अपराधी निश्चित किया गया है, अतः लज्जित हो रही हूँ, मुझे नहीं प्रतीत होता कि आर्य पुत्र के दर्शन से मेरी कैसी दशा हो गई है[1] । सीता के विभिन्न प्रकार के भावों की आँख-मिचौली को कवि ने दीपक अलंकार के माध्यम से कहलवाया है ।

कुन्दमाला में विप्रलम्भ श्रृंगार का परिपाक अत्यन्त उत्तम कोटि का हुआ है । चतुर्थ अंक में राम और सीता का मिलन होता है किन्तु यहाँ सीता छाया रूप में विद्यमान है । प्रतिपल सीता के मानस पटल पर राम तथा राम के मनः मस्तिष्क में सीता का ही स्मरण छाया रहता है । राम दीर्घिका के जल में सीता की छाया को देखकर उसे सीता ही समझ लेते हैं और कहते हैं कि सैकड़ों मनोरथों के पश्चात् तुम प्राप्त हुई हो मुझे छोड़कर फिर कहीं अज्ञात स्थान को जा रही हो -

> अपाण्डरेण मयि दीर्घ-वियोग-खेदं
> लम्बाडलकेन वदनेन निवेदयन्ती ।
> एषा मनोरथ-शतैः सुचिरेण दृष्टा
> क्वाडपि प्रयाति पुनर् एव विहाय सीता [2] ।।

दिङ्नाग ने सीता की विरहातिशयिता का तथा राम की हार्दिक

1- कुन्दमाला - पृ० 101 2- कुन्दमाला- 4/13

मर्मवेदना का बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है । राम के मन में कितनी व्याकुलता है, कितनी असह्य वेदना है जो जल में सीता की छाया देखकर ही दु:खित हो जाते हैं । दीर्घिका में पुनः सीता को न देखकर राम का दु:ख असह्य हो जाता है । सीता के रूप की स्मृति से उद्दीप्त वेदना की सघनता उन्हें मूच्छित कर देती है । सीता अपने कर स्पर्श तथा आँचल से हवा करके उनकी चेतना वापस लाती है । राम अपनी प्रिया के स्पर्श से आनन्द का अनुभव करते हैं किन्तु राम का यह सुख क्षणिक था । वे चारों ओर देखते हैं किन्तु प्रत्यक्ष रूप में सीता को कहीं नहीं देख पाते । वे विलाप करते हुए पुकार उठते हैं-

> गाढम् आलिङ्ग वैदेहि ।
> देहि मे दर्शनं प्रिये ।
> त्यज्यतां दीर्घ-रोषोऽयं ।
> किं नु निष्करूणा मयि ।।[1]

यहाँ "प्रलाप" नामक अवस्था है ।"मोह" ने श्री राम को बार बार आवृत कर लिया है । इसप्रकार राम तथा सीता दोनों ही विरह के दु:ख से पीड़ित है । राम को व्यथित देखकर सीता उन्हें अकेले इस दशा में छोड़कर जाने का निश्चय नहीं कर पा रही है । वियोग की दशा में भी सीता का राम के प्रति उत्कट प्रेम देखा जाता है ।

श्री राम सीता को प्रत्यक्ष रूप में न देखकर अत्यन्त दु:खित होते है । वे चिल्ला चिल्ला कर कहते हैं कि तुम मुझे दर्शन देकर धन्य कर दो । वे अपना विवेक खो बैठते हैं और कहते हैं -

---

1- कुन्दमाला - 4/15

अविदितम् अनुसृत्य चित्रकूटे
सुतनु सुमाऽवचयाय निर्गतां त्वाम् ।
कुसुममवचितं विकीर्य भूमौ
स्मरसि रसेन मया धृतं पटान्तम् ॥[1]

अदृश्य सीता से ही वार्तालाप करते हुए कहते हैं कि तुम्हें याद है जब तोड़े हुए समस्त फूलों को बखेर कर प्रेम से मैं तुम्हारे वस्त्र का कोना पकड़ लिया करता था । यहाँ "उन्माद" नामक अवस्था है ।

कई वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी राम का दु:ख-संवेग सीता-छाया, कुन्दमाला, पदचिह्न आदि की स्मृति के कारण नूतन प्रतीत होता है । पंचम अंक में राम दीर्घिका में सीता की छाया का स्मरण कर अत्यन्त दु:खित होते हैं । वे कहते हैं कि मैंने स्वयं दीर्घिका के जल में दुर्बल सीता को देखा था-।

अतिप्रसादाद् असतीव तस्मिन्
दृष्टा मया वारिणि पङ्कजाऽक्षी ।
लम्बालकं पाण्डुर-पीन गण्डं
प्रसाद-रम्यं वदनं वहन्ती ॥[2]

यहाँ "पाण्डुपीनगण्डम्" से सीता की विरह दशा व्यंजित हो रही है अत: यहाँ "व्याधि" नामक अवस्था है ।

राम सीता की स्मृति के कारण "जडता" से आक्रान्त है । अपनी पत्नी से रहित होने के कारण उन्हें सुख और दु:ख का कोई परिज्ञान नहीं

1- कुन्दमाला - 4/21   2- कुन्दमाला - 5/2

रह गया है । वे कहते हैं-

> आसीद् इयत्सु दिवसेषु निरस्त-जानेर्
> नैराश्य-लुप्त-मनसो न सुखं न दुःखम् ।
> छायादि-दर्शन-बलाद् अधुना मनो मे
> दुःखं सुखं च परिगृह्य पुनः प्रसूतम् ।।[1]

यहाँ "जडता" नामक अवस्था है ।

लव और कुश को देखकर राम के मन में वात्सल्य के भाव उभरते हैं किन्तु उनके मुखमण्डल पर राम को सीता की छाया ही दृष्टिगोचर होती है[2] और सीता की स्मृति उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर देती है । षष्ठ अंक में भी लव और कुश से रामायण सुनने के पश्चात् श्री राम की विरह अवस्था ही व्यंजित हो रही है । सीता अपनी शुद्धता को स्वयं प्रमाणित करती है । उनका प्रत्येक वाक्य हृदय के मर्मस्थलों को झंकृत कर देता है[3] । अन्त में राम और सीता का मिलन होता है । वाल्मीकि तथा पृथ्वी के प्रत्येक वाक्य से चाहे उसमें राम और सीता के प्रति वात्सल्य व्यक्त हुआ हो या राम के प्रति रोष, उनके हृदय में दुःख ही उत्पन्न करता है । कहीं कहीं तो राम और सीता को मृत्युतुल्य दुःख भी होता है । सम्पूर्ण नाटक में राम का सीता के प्रति तथा सीता का राम के प्रति वियोग देखा गया है । सामाजिकों के साथ साथ राम को भी यह पूर्ण विश्वास है कि सीता जीवित है । एक स्थल पर तो श्री राम कहते हैं - "तथा जानामि प्रत्यासन्न फलो मे मनोरथ इति" अर्थात् शीघ्र ही मेरा मनोरथ पूरा होने वाला है ।अतः इस नाटक में

1- कुन्दमाला- 5/4 2- कुन्दमाला- 5/15

3- कुन्दमाला- पृ0 264, 265

आरम्भ से अन्त तक "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" ही अंगी रस है ।

कुन्दमाला नाटक में अन्य रस - कुन्दमाला नाटक में अद्भुत और वात्सल्य रस का ही परिपाक हुआ है ।

अद्भुत रस - इसका स्थायी भाव "विस्मय" है । षष्ठ अंक में जब सीता अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए भगवती पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि आप मेरे हृदय की पवित्रता संसार के सामने प्रकाशित करें । तभी आकाश से भयंकर शब्द सुनाई देता है -

> नादः पाताल-मूलात् प्रभवति तुमुलं पूरयन् व्योम-रन्ध्रं
> पातक्लिष्टा इवैते दिशि गिरयो मन्द-मन्दाश् चरन्ति ।
> बद्धाऽऽनन्दाः समन्ताल् लवण-जलधयो मथ्यमाना इवासन्
> सीमाल्लङ्घ्य वेगादुद-निधि-सलिलैः स्वानि वेलावनानि ।।[1]

अर्थात् आकाश के छिद्र को भरता हुआ पाताल से भयंकर शब्द उत्पन्न हो रहा है, गिरने के दुःख से दुःखित ये पर्वत दिशाओं की ओर धीरे धीरे जा रहे हैं । ऐसा प्रतीत हो रहा है लवण सागर चारों ओर से मथे जाते हुए वेग से समुद्र के जलों से अपने किनारे पर स्थित रत्नों को छोड़कर सीमा का अतिक्रमण करके आनन्दयुक्त हो गये । सहसा ही पाताल लोक से प्रकाश उत्पन्न होता है । इस अप्रत्याशित घटना को देखकर वाल्मीकि भी आश्चर्य चकित होकर कहते हैं - "कथम् अदृष्टपूर्वाऽश्रुतपूर्वा इयम् आश्चर्यपरम्परा-वृत्तिः"[2] भगवती पृथ्वी के पृथ्वी लोक में प्रकट होने की इस अद्भुत घटना से सभी गद् गद तथा आश्चर्य चकित हो जाते हैं । इस अलौकिक घटना के दर्शन से "विस्मय"

1- कुन्दमाला - 6/24 2- कुन्दमाला- पृ० 269

स्थायी भाव ही जागृत हो रहा है । सीता द्वारा पृथ्वी से प्रार्थना कर उन्हें पृथ्वी लोक में बुलाना आलम्बन विभाव है । पाताल का भयंकर शब्द आदि उद्दीपन विभाव है । उसकी प्रशंसा करना, गदगद होना अनुभाव है तथा आवेग हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है ।

पाताल लोक की वायु चिरकाल से सभी दिशाओं को सुगन्धित करती हुई चल रही है और यह पृथ्वी क्रमशः धीरे धीरे प्रकट हो रही है[1] ।

इस प्रकार दिङ्नाग ने केवल षष्ठ अंक अर्थात् निर्वहण सन्धि में ही अद्भुत रस का विस्तार किया है ।

वात्सल्य रस - इसका स्थायी भाव "स्नेह" है । कुन्दमाला की अपेक्षा उत्तररामचरितम् में वात्सल्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है । कुन्दमाला के पंचम अंक में लव और कुश को देखकर राम के हृदय में वात्सल्य अनायास ही प्रस्फुटित होता है । लव और कुश को देखकर वे कहते हैं- अहो हृदय-ग्राही स्पर्शः । उनके स्पर्श से उनका हृदय गद्गद हो जाता है वे सोचते हैं कि " यद्यपि मैं पुत्र के आलिंगन सुख से अपरिचित हूँ फिर भी उस आलिंगन की तुलना को प्राप्त हो रहा हूँ"[2]। एक स्थल पर राम कहते हैं कि बच्चे अवस्था के कारण गुणों से श्रेष्ठ तथा बड़े लोगों के लिए लाड़-प्यार करने योग्य होते हैं ।

भवति शिशु-जनो वयोऽनुरोधाद्
गुण-महतामपि लालनीय एव ।
व्रजति हिमकरोऽपि बालभावात्
पशुपति-मस्तक-कैतकच्छदत्त्वम्[3] ।।

1- कुन्दमाला- 6/26 2- कुन्दमाला - पृ0 206 3- कुन्दमाला- 5/12

अर्थात् बच्चे अवस्था के कारण गुणों से श्रेष्ठ बड़े लोगों के लिए लाड़-प्यार करने योग्य होते ही है । बालभाव के कारण ही चन्द्रमा शंकर जी के सिर पर केतकी के पत्र के समान सुशोभित होता है । केवल पंचम अंक में ही लव और कुश को आलम्बन बनाकर राम के वात्सल्य का वर्णन है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही नाटकों का अंगी रस विप्रलम्भ श्रृंगार है । अंग रसों के रूप में उत्तररामचरितम् में वीर, संयोग श्रृंगार, रौद्र, हास्य, अद्भुत और वात्सल्य का सुन्दर चित्रण हुआ है जबकि कुन्दमाला में केवल अद्भुत तथा वात्सल्य रस का ही परिपाक हुआ है ।

<u>तुलनात्मक विवेचन</u> - शोध प्रबन्ध के गत पृष्ठों में विवेचन किया गया है कि उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला दोनों नाटकों का मूल-आधार वाल्मीकि-रामायण है । दोनों नाटककारों ने कथावस्तु और चरित्रचित्रण दोनों दृष्टियों से महाकाव्य को ही अपना आधार बनाया है । दोनों ने कथावस्तु और चरित्र-चित्रण के विकास के साथ साथ कुछ मौलिक परिवर्तन भी किये हैं । रस की दृष्टि से भी वाल्मीकि-रामायण से दोनों नाटकों में मौलिक अन्तर तो आ ही गया है । वाल्मीकि-रामायण का अन्त करूण रस में होता है । दोनों नाटककारों ने वाल्मीकि-रामायण के विपरीत ऐतिहासिक परिस्थिति, सामाजिकों के भाव, नाटकीय प्रभावोत्पादकता और अपनी रूचि के अनुकूल नाटक के अंगी रस में परिवर्तन किया, जो बहुत बड़े साहस का कार्य है । दोनों ने करूण के स्थान पर विप्रलम्भ श्रृंगार को अङ्गी रस बनाया ।

संस्कृत साहित्य के अनेक विद्वान तथा आलोचक उत्तररामचरितम् में करूण रस को ही अंगी रस मानते हैं और नाटककार के इस श्लोक को

उद्धृत करते है-

> एको रस: करूण एव निमित्तभेदाद्
> भिन्न: पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान् ।
> आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
> अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ।।[1]

किन्तु यह श्लोक सम्पूर्ण नाटक के लिए नहीं वरन् केवल तृतीय अंक की कुछ घटनाओं के लिए कहा गया है । उत्तररामचरितम् के पूर्वार्ध छ: अंकों में भले ही दर्शकों या पाठकों को करूण रस का आभास मिलता है, किन्तु नाटक का अन्त श्रृंगार रस के उपभेद करूण विप्रलम्भ में ही होता है । इसका विवेचन इसी अध्याय के गत पृष्ठों में भली भांति कर दिया गया है ।

दिङ्नाग रचित कुन्दमाला में बड़े साहस के साथ नाटककार ने आदि से अन्त तक विप्रलम्भ श्रृंगार की ही निष्पत्ति की है । उत्तररामचरितम् के छ: अंकों में करूण रस का स्थायी-भाव शोक और उससे सम्बन्धित सभी अङ्गों और उपांगो का चित्रण हुआ है और नाटक के मुख्य पात्र राम को यह सत्य सा प्रतीत होता है कि उनकी प्रियतमा सीता मृत्यु को प्राप्त हो गयी है । यद्यपि पाठक या दर्शक यह जानते है कि राम का यह भ्रम मात्र है किन्तु नाटककार इन छ: अंकों में शोक स्थायी भाव के अंगों उपांगो से परिपाक कराकर करूण रस की प्रधानता दिखाते हुए ही दिखाई पड़ते हैं । नाटककार को सीता का चिर-वियोग या मृत्यु अभीष्ट नहीं है और इसी लिए वह अन्त में राम और सीता

1- उ०च०- 3/47

का मिलन कराकर नाट्यकला के प्रति न्याय करते हैं ।

दिङ्नाग ने उत्तररामचरितम् को प्रेरणा स्रोत मानते हुए भी कहीं भी करूण रस का परिपाक करने का प्रयास नहीं किया है । नाटक के मुख्य पात्र तथा अन्य पात्रों को यह विश्वास रहता है कि सीता मृत्यु को नहीं प्राप्त हुई है इसीलिए सीता का अलगाव वियोग की सीमा तक ही रहता है इसलिए नाटक के नायक करूण विप्रलम्भ के ही अंगों उपांगों को व्यक्त करते हैं ।

नायक राम एक वियोगी नायक की भाँति लगभग वियोग की सभी दशाओं का अनुभव करते हैं । नाटककार ने उनमें अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, आदि विरह की लगभग सभी दशाओं का चित्रण किया है । कहीं कहीं विरह की चरम अवस्था में राम को मृत्यु-तुल्य दु:ख होता है किन्तु अन्त में इस करूण विप्रलम्भ का अन्त भी सुखद होता है । अन्त में नाटककार राम-सीता का मिलन कराकर श्रृङ्गार रस की ही पुष्टि करते है । यद्यपि दोनों ही नाटकों का अंगी रस "विप्रलम्भ श्रृंगार" ही है तथापि दोनों नाटकों की रस संयोजना में एक सूक्ष्म अन्तर भी है । उत्तररामचरितम् में करूणा अधिक हैं । जबकि कुन्दमाला में श्रृंगार तत्त्व की प्रधानता है ।

अन्य रसों के दृष्टिकोण से उत्तररामचरितम् में वीर संयोग श्रृंगार, हास्य, अद्भुत, रौद्र तथा वात्सल्य रस का चित्रण हुआ है । लव, कुश और चन्द्रकेतु के युद्ध में वीर रस का चित्रण हुआ है किन्तु कुन्दमाला में वीर रस का नितान्त आभाव है । इस नाटक में अंग रस के रूप में अद्भुत और वात्सल्य का चित्रण हुआ है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दोनों नाट्यकृतियों में रस की सुरसरिता का आप्लावन अत्यन्त मनोहर, ऐसा आप्लावन है जो सहृदय के हृदय को ब्रह्मानन्दसहोदर रस की अनुभूति में डुबो देता है। दोनों ही नाटककारों ने विभिन्न रसों का चित्रण गहरी अन्तरदृष्टि और मनोवैज्ञानिक सूझ बूझ के आधार पर अत्यन्त कुशलता पूर्वक किया है। अतएव यह कहना सर्वथा उचित है कि रस निष्पत्ति की दृष्टि से दोनों ही नाटक उत्तमकोटि के है तथा सामाजिकों को रस का पूर्ण आस्वादन कराने में समर्थ है।

षष्ठ परिच्छेद

उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला - शैली सौष्ठव

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला के वस्तु नेता और रस की समीक्षा करने के पश्चात् प्रस्तुत परिच्छेद में शैली पर विचार करेंगे ।

भाषा अर्थ की संवाहिका है इसलिए काव्य की उत्कृष्टता के लिए परिमार्जित भाषा और शैली का होना अत्यन्त आवश्यक है । नाटक की भाषा सरल, सुबोध तथा पात्रों की क्रियाकलापों के अनुरूप होनी चाहिए जिसे पढ़ने या सुनने से ही अर्थ की प्रतीति हो जाये । जिस कथन को सीधे ढ़ंग से व्यक्त किया जा सकता है कवि उसी को अपनी प्रतिभा के चमत्कार से रस, अलंकार तथा छन्दों में सुशोभित करके अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना शब्द शक्तियों द्वारा प्रकट करके सहृदयों के हृदय में चमत्कार के साथ कौतूहल की भी वृद्धि करता है । गूढ़ भावों को सरल ढ़ंग से व्यक्त करना ही समर्थ भाषा का लक्षण है ।

शैली काव्य के वाह्य रूप को अलंकृत करती है तथा आन्तरिक रूप को विकसित करती है । शैली के आभाव में शरीरभूत भाषा, आत्मभूत भाव एवं रस का सौन्दर्य भी प्रकट नहीं होता । जिस प्रकार मानव की संरचना में हाथ, पैर आदि अवयवों का अपना अलग ही महत्त्व है और उन सबसे ही शरीर की रचना होती है । उसीप्रकार काव्य रूप शरीर में शब्द-अर्थ-रूप अवयवों का सन्निवेश होता है ।

शैली के दो प्रमुख तत्त्व है - व्यक्ति तत्त्व और वस्तु तत्त्व । इसी को क्रमशः भाव पक्ष और कला पक्ष कहते हैं । भाव पक्ष में कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों की प्रधानता होती है और कला पक्ष में काव्य के सौन्दर्य के उपकरण भाषा, छन्द, अलंकार, शैली आदि का विधान होता है । इस तरह शैली में बुद्धि और हृदय दोनों का समावेश होता है । बुद्धि से ही मनुष्य किसी तथ्य या वस्तु का चयन करता है तत्पश्चात् उसके औचित्य

अनौचित्य पर विचार करके उसकी उत्कृष्टता का निर्धारण करके हृदय द्वारा उसमें निहित निखिल सौन्दर्य का आस्वादन करता है । इसीलिए नाटक या काव्य में पाण्डित्य के साथ साथ कवि की वैदग्ध्य पूर्ण प्रतिभा भी आवश्यक मानी गयी है, क्योंकि नाटक और काव्य का उद्देश्य कान्ता के समान मधुर, कोमलकान्त पदावली में उपदेश देना है । इसीलिए प्रायः नाटकों के लिए वेद, उपनिषद, सांख्य योग आदि से कथानकों का चयन नहीं किया जाता क्योंकि उनमें मात्र पाण्डित्य की भरमार है जो रसानुभूति कराने में असमर्थ ही नहीं अपितु शुष्क और नीरस से भी है । इसलिए नाटक में पाण्डित्य के साथ साथ उदारता, लालित्य, अर्थगौरव आदि गुणों का होना भी अनिवार्य माना गया है ।

गुण- भारतीय आचार्यों ने शैली के माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण माने हैं । ये गुण रस के धर्म है शब्द अर्थ के नहीं । जिस प्रकार शूरता आदि आत्मा के गुण हैं उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण काव्य के आत्मभूत रस के ही धर्म है । शरीरभूत शब्द और अर्थ के नहीं[1] । किसी वीर पुरुष की शारीरिक रचना को देखते ही जिस प्रकार उसकी वीरता का आभास हो जाता है उसी प्रकार मधुर और कठोर पद रचना को देखने से माधुर्य और ओज गुणों की प्रतीति होती है । ये गुण तीन है माधुर्य, ओज तथा प्रसाद[2] ।

1- काव्यप्रकाश - 8/66
ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा : ।।

2- साहित्यदर्पण - 8/1
रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा । गुणाः
माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा ।

जिसमें चित्त आह्लाद के कारण पिघल सा जाये ऐसा आनन्द विशेष माधुर्य कहलाता है । सम्भोग श्रृंगार, विप्रलम्भ श्रृंगार, करूण और शान्त रसों में क्रमशः माधुर्य गुण का आधिक्य होता है । शान्त रस में सबसे अधिक माधुर्य गुण प्राप्त होता है । ट, ठ, ड, द को छोड़कर शेष वर्ण अपने वर्ग के पंचम अक्षर ञ, म, ङ, न से संयुक्त होने पर माधुर्य के व्यंजक होते है । समास रहित तथा छोटे-छोटे समासों वाली मधुर रचना भी माधुर्य की व्यंजक होती है [1] ।

चित्त का विस्तार स्वरूप दीप्तत्व "ओज" कहलाता है । वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में क्रम से इसकी अधिकता होती है । वर्गों के पहले अक्षर के साथ मिला हुआ उसी वर्ग का दूसरा अक्षर और तीसरे के साथ मिला हुआ उसी का चौथा अक्षर ऊपर या नीचे अथवा दोनों ओर रेफ से युक्त अक्षर एवं ट, ठ, ड, ढ, श और ष ये सब ओज के व्यंजक होते हैं । लम्बे-लम्बे समासों से युक्त उद्धत रचना भी ओज को व्यंजित करती है [2] ।

सूखे ईंधन में अग्नि जैसे झट से व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार जो गुण चित्त में तुरन्त व्याप्त हो जाये उसे "प्रसाद" कहते हैं । यह गुण सभी रचनाओं तथा सभी रसों में रह सकता है । श्रवण मात्र से ही जहां अर्थ की प्रतीति हो जाये ऐसे सरल और सुबोध पद "प्रसाद गुण" के व्यंजक होते हैं [3] ।

रीतियां- काव्य में पदों का मेल या संगठन ही "रीति" कहलाती है ।

1- साहित्यदर्पण - 8/2-3 2- साहित्यदर्पण - 8/4-7

3- साहित्यदर्पण- 8/7, 8

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः ।।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।
शब्दास्तद्व्यंजका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः ।।

यह अंगसंस्थान की तरह मानी जाती है और काव्य के आत्मभूत रस भाव आदि की उपकारक होती है ।" पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्था विशेषवत् । उपकर्त्री रसादीनां ।[1] " गुणों के आधार पर ही शैली के तीन भेद किये गये हैं वैदर्भी, गौडी और पांचाली- " सा त्रेधा वैदर्भी, गौडी या पांचाली चेति[2] । साहित्यदर्पणकार ने वैदर्भी, गौडी, पांचाली और लाटी चार प्रकार की रीतियां मानी हैं[3] ।

माधुर्य व्यंजक वर्णों के द्वारा की हुई समास रहित अथवा छोटे छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना "वैदर्भी" रीति कहलाती है[4] । श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ व्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि इन दस गुणों को वैदर्भ मार्ग का प्राण बताया गया है[5] । इनमें से श्लेष, समता, सुकुमारता और ओज शब्दाश्रित तथा प्रसाद, अर्थव्यक्ति, कान्ति, उदारता और समाधि अर्थाश्रित है । माधुर्य शब्द और अर्थ दोनों में रहता है ।

1- सा० द० 9/1 2- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - 12/9

3- साहित्यदर्पण- 9/1
सा पुनः स्याच्चतुर्विधा ।।
वैदर्भी चाथ गौडी च पांचाली लाटिका तथा ।

4- साहित्यदर्पण- 9/2, 3
माधुर्यव्यंजकैवर्णै रचना ललितात्मिका ।।
आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।

5- काव्यादर्शः - 1/41, 42
श्लेषः प्रसादः समता माधुर्य सुकुमारता,
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्ति समाधयः ।।
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणाः स्मृताः ।।

ओज को व्यंजित करने वाले कठिन वर्णों से बनाये हुए अधिक समासों से युक्त उद्भट को "गौड़ी" रीति कहते हैं[1]।

"वैदर्भी" और "गौड़ी" दोनों रीतियों से बचे हुए शेष वर्ण, जो न माधुर्य के व्यंजक हों और न ओज के उनसे जो पांच, छः पदों तक की समासयुक्त रचना की जाए वह "पांचाली" रीति कहलाती है[2]।

"वैदर्भी" और "पांचाली" दोनों के लक्षणों से कुछ कुछ युक्त रीति "लाटी" कहलाती है[3]।

आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा रूप में स्वीकार किया है - "रीतिरात्मा काव्यस्य"। इनके अनुसार वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली तीन प्रकार की रीतियां होती है। इसके अतिरिक्त अन्य काव्य शास्त्र आचार्यों ने भी मुख्य रूप से यही तीन रीतियां तथा माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन गुण माने हैं। भोज ने रीति की संख्या में तथा वामन ने गुणों की संख्या में कुछ वृद्धि की है परन्तु उसका समावेश इन्हीं तीनों में माना जा सकता है, अतः उनका विवेचन यहां नहीं किया जा रहा है। रीतियों की संख्या के विषय में कुन्तक का कथन है कि स्वभावभेदमूलक होने से रीतियां अनन्त हो सकती हैं परन्तु उनकी संख्या

1- साहित्यदर्पण - 9/3
ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः ।। समासबहुला गौडी ।

2- साहित्यदर्पण - 9/4
वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।
समस्तपंचषपदो बन्धः पांचालिका मता ।।

3- साहित्यदर्पण- 9/5
लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपांचाल्योरन्तरे स्थिता ।

तीन ही उचित है[1]। अत: भारतीय आचार्यों ने तीन गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद तथा वैदर्भी गौडी, और पंचाली तीन रीतियां मानी हैं।

उपर्युक्त गुण और रीतियों के सैद्धान्तिक विवेचन के उपरान्त इन दोनों नाटकों में प्राप्त गुण और रीति पर विचार करेंगे।

उत्तररामचरितम् में गुण एवं रीति विवेचन- वैदर्भी रीति प्रिय कवि कालिदास के पश्चात् भवभूति संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी सर्वप्रियता का कारण उनकी परिष्कृत और प्रसाद-गुण युक्त शैली है। भवभूति भी वैदर्भी रीति के श्रेष्ठ कवि हैं। वैदर्भी रीति की मुख्य विशेषताएं हैं- " मधुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा आभाव या थोड़े समास युक्त पदों का होना[2]। भवभूति की यह विशेषता है कि वह प्रसंग के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। साधारणतया उनकी भाषा में प्रसाद-गुण का प्राचुर्य है किन्तु प्रसाद गुण की प्रचुरता के साथ साथ कुछ लालित्य-पूर्ण स्थलों पर माधुर्य तथा ओज गुण भी दृष्टिगोचर होते हैं। प्रसाद गुण युक्त इस नाटक की भाषा इतनी सरल और सुस्पष्ट है कि पढ़ते ही बिना किसी प्रयास के अर्थ स्पष्ट हो जाता है। युद्ध के वर्णन में कवि ने ओज-गुण का प्रयोग किया है।

श्रृंगार और करूण दोनों रसों के लिए वैदर्भी उपयुक्त रीति है। अत: उत्तररामचरितम् में वैदर्भी का ही प्रयोग हुआ है, परन्तु

1- वक्रोक्तिजीवितम् -
यद्यपि कवि स्वभावभेद-निबन्धनत्वादनन्तभेदभिन्न - त्वमनिवार्य: तथापि परिसंख्यातुमशक्यत्वात् समान्येनत्रैविध्य- मेवोपपद्यते।

2- साहित्यदर्पण - 9/2,3

जहाँ गौडी का प्रयोग उचित था, वहाँ सर्वत्र गौड़ी का ही प्रयोग हुआ है । चतुर्थ और पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन गौड़ी रीति में किया है । द्वितीय अंक में प्रकृति के भयावह रूप का वर्णन भी गौडी रीति में ही किया है । उसमें कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं । भवभूति की भाषा में एक प्रवाह है, गति है जिससे एक घटना के बाद दूसरी घटना संगुम्फित रूप में उपस्थित होती है ।

नाटक में प्रसाद, माधुर्य तथा ओज तीनों ही गुणों की प्रधानता है । इनके कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

प्रथम अंक में राम की अनेक उक्तियाँ प्रसाद-गुण युक्त[1] है । अन्य पात्रों की भाषा में भी प्रसाद-गुण प्रचुरता से दिखाई देता है[2] ।

तृतीय अंक में राम और सीता के सुख और दुःख दोनों की अभिव्यक्ति प्रसादपूर्ण है । परमपूज्या अरून्धती सीता के प्रति जो श्रद्धा व्यक्त करती है । उसमें भी प्रसाद गुण है-

> शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
> विशुद्धेरूत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ।
> शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
> गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः[3] ।।

इस पद्य में किसी प्रकार की जटिलता अथवा क्लिष्टता नहीं है । शब्द अपने सौन्दर्य से बरबस ही मन को आकृष्ट कर लेते हैं ।

1- उ०च० 1/17, 19   2- उ०च०-2/3, 3/13

3- उत्तररामचरितम् - 4/11

षष्ठ अंक में राम के मुखमण्डल पर शोक तथा बहते हुए आँसुओं को देखकर कुश लव को समझाते हुए कहता है कि महारानी सीता के न रहने पर रघुनाथ जी के लिए प्रत्येक वस्तु दु:खमय हो गयी है । क्यों कि प्रियतमा के न रहने पर सारा संसार सूना जंगल बन जाया करता है । एक तो वह उतना प्रेम । और फिर यह असीम वियोग । फिर तुम रामायण न जानने वाले के तुल्य इस तरह क्यों पूछ रहे हो।[1] यहाँ भी प्रसाद गुण है ।

उत्तररामचरितम् में माधुर्य गुण के भी उदाहरण अनेक स्थलों पर देखे जाते हैं । चित्रदर्शन के समय राम और सीता का सम्पूर्ण वार्तालाप माधुर्य गुण से युक्त है । चित्रदर्शन के प्रसंग में पावन, शीतल जलवाली भगवती भागीरथी में स्नान करने की इच्छा व्यक्त कर सीता राम से पूछती है- "आर्यपुत्र युष्माभिरपि आगन्तव्यम्" । राम उत्तर देते हैं - "अतिकठिनहृदये एतदपि वक्तव्यम्" तब सीता अत्यन्त प्रसन्न होकर कहती है- "तेन हि प्रियं मे" । इस मधुर वातावरण में माधुर्य गुण ही है[2] ।

तृतीय अंक में भी राम और सीता के अदृश्य मिलन के अवसर पर कहीं कहीं माधुर्य की छटा दिखाई देती है । राम कहते हैं कि निश्चित रूप से वही पूर्वपरिचित, जीवनदायी और हृदय-परितोषी स्पर्श है जो कि परिताप से उत्पन्न होने वाली मूर्च्छा को तुरन्त दूर करके आनन्दोत्पादन के द्वारा फिर से जड़ता ला देता है ।

स्पर्श: पुरा परिचितो नियतं स एव
सञ्जीवनश्च मनस: परितोषणश्च ।
सन्तापजां सपदि य: परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति ।[3]

1- उत्तररामचरितम् - 6/30 2- उत्तररामचरितम् - पृ0 59
3- उत्तररामचरितम् - 3/12

यहाँ पर "ञ" और "ज", "न" और "त", "न" और "द" संयुक्त वर्ण माधुर्य के द्योतक हैं ।

चतुर्थ और पंचम अंकों में ओज गुण का प्राचुर्य देखा जाता है । अश्वरक्षकों की दर्पमयी घोषणा सुनते ही लव की वाणी ओजपूर्ण हो जाती है । वह क्रोधपूर्वक कहता है - "भो भोः तत्किमक्षत्रिया पृथ्वी यदेवमुद्घोष्यते"[1]। अर्थात् तो क्या धरती क्षत्रियों से शून्य हो गई है जो ऐसी घोषणा कर रहे हो । चतुर्थ अंक में सैनिकों की घोषणा के पश्चात् लव का प्रत्येक शब्द ओजपूर्ण है । "मूर्ख जनता अग्नि-शुद्धि पर विश्वास नहीं करती" कंचुकी द्वारा ऐसा कहने पर जनक ओजपूर्ण वाणी में ही अपनी भावना को व्यक्त करते हैं[2]।

कुश की उक्तियाँ भी ओजपूर्ण हैं । युद्ध का पता चलने पर कुश कहता है-

अद्यास्तमेतु भुवनेषु च राजशब्दः
क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शममद्य यान्तु[3] ।।

यहाँ पर उक्ति के माध्यम से ओजगुण है । एक अन्य स्थल पर भी कुश ओजपूर्ण शब्दों में कहता है-

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो -
दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः ।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः[4] ।।

1- उ0च0 - पृ0 - 252
2- उ0च0 - पृ0 225
3- उ0च0- 6/16
3- उत्तररामचरितम् - 6/18

अर्थात् भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर आजतक इन्द्र को भी दक्षिणा देने वाले और घमण्डियों को कुचलने के लिए अपने क्षात्रतेज की अग्नि को धधकाने वाले सूर्यवंशीय महाराजाओं से अगर युद्ध हो तो यह चमकीले अस्त्रों से निकलती हुई तेज किरणों की शिखा से आरती पाने वाली प्रत्यंचा वाला मेरा धनुष कृतार्थ हो उठे । यहाँ पर महाप्राण "ख" तथा "श" आदि अक्षरों से संघटित रचना में रेफ के संयोग से अत्यधिक ओजस्विता आ गई है । इसलिए उक्त पद्य में ओज गुण है । इसके अतिरिक्त नाटक में गुणों के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं ।

उत्तररामचरितम् नाटक में वैदर्भी और गौड़ी रीति दोनों का ही प्रचुरता से प्रयोग हुआ है । नाटककार भवभूति ने भावपूर्ण हृदय की गहन एवं सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति सरल शब्दों में की है । प्रथम अंक में चित्रदर्शन के पश्चात् राम और सीता के वार्तालाप में वैदर्भी रीति ही है । सीता के स्पर्श से उत्पन्न रोमांचित अनुभूति का वर्णन करते हुए राम कहते है-

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यम् भ्रमयति च सम्मीलयति च[1] ।।

दुरूह से दुरूह मनोभावों तथा सूक्ष्म मनोविकारों को अभिव्यक्त करने में भवभूति निपुण है । भाव के अनुरूप भाषा के प्रयोग में उनकी प्रतिभा सर्वत्र देखी जाती है । बारह वर्षों के इतने सुदीर्घ अन्तराल के

1- उत्तररामचरितम् - 1/35

पश्चात् दण्डकारण्य में अपने प्राणप्रिय, विरह से व्याकुल श्री राम के अकस्मात् दर्शन से सीता के दु:खी मन में अनेक भाव उत्पन्न होते हैं, जो कवि ने अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किये हैं।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा -
द्वियोग दीर्घेऽस्मिञ्झटितिघटनात् स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ।।[1]

तमसा सीता से कह रही है कि बेटी ! " इस समय तुम्हारा हृदय पुन: समागम की आशा न रह जाने के कारण उपेक्षामय, अकारण परित्याग से विषादपूर्ण, इस लम्बे वियोग में अचानक मिलने से नितान्त स्तब्ध, राम के सौजन्य से प्रसन्न, प्रियतम के शोक के कारण अत्यन्त शोकाकुल तथा प्रेम के कारण द्रवीभूत सा हो उठा है। यहाँ नाटककार ने उत्प्रेक्षा के द्वारा सीता के व्याकुल मानस में क्रमश: एक के बाद एक दूसरे मनोभावों का उदय और विलय अत्यन्त सफलता पूर्वक वैदर्भी रीति में चित्रित किया है।

राम की वेदना का वर्णन,[2] वासन्ती का राम के प्रति हृदय विदारक उपालम्भ-तीक्ष्ण व्यंग्य,[3] जनक की वात्सल्य पूर्ण व्यथा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण,[4] पर्वत शिखर, वनस्थलों नदी तटों का वर्णन[5] अत्यन्त सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है।

पद्य के समान गद्य में भी कवि ने आन्तरिक भावों को व्यक्त करने में वैदर्भी रीति का ही प्रयोग किया है। प्रथम अंक में वेदना की

1- उ०च० 3/13
2- उ०च० 3/31
3- उ०च० 3/26
4- उ०च० 4/23
5- उ०च० 2/23, 24, 25

तीव्र अनुभूति को राम अत्यन्त सरल वाक्यों में व्यक्त करते हैं[1]।

उत्तररामचरितम् में गौडी रीति का प्रयोग भी कुछ स्थलों पर हुआ है। अश्वरक्षकों की चुनौती को सुनकर तथा उनके चमकते हुए शस्त्रों को देखकर लव उत्तेजित होकर दीर्घ समासों तथा कठोर वर्णों से युक्त भाषा का प्रयोग करता है।

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र -
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्त हसदन्तकवक्त्रयन्त्र -
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्[2] ।।

लव के पराक्रम तथा लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन भी गौडी रीति द्वारा ही किया गया है। लव के पराक्रम को देखकर चन्द्रकेतु कहता है-

पातालोदरकुंजपुंजिततमःश्यामैर्नभो जृम्भकैः
उत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः ।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभिस्तीर्यते
लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव[3] ।।

अर्थात् पाताल की भीतरी झुरमुटों में सिमटे हुए अन्धकार की तरह काले और खूब तपा दिए गए हुए तथा चमकते हुए पीतल की नारंगी ज्योति की तरह जलती शिखाओं वाले जृम्भकास्त्रों के द्वारा आकाश आच्छादित होता जा रहा है, मानों कल्प के अवसान के समय प्रचण्ड और अत्यन्त भयंकर तूफानों से उलट-पलट दिए गए हुए और भीतर घुसे हुए बादलों

1- उ0च0 2/23, 24, 25 2- उत्तररामचरितम्- 4/29
3- उ0च0- 5/14

और विजलियों के कारण भूरी हो उठी हुई कन्दराओं वाले विन्ध्यागिरि के शिखरों से व्याप्त हो उठा है ।

केवल मानवीय प्रकृति की उग्रता का वर्णन करने में ही नहीं, अपितु प्रकृति की भीषणता का चित्रण करने में भी कवि ने गौडी रीति का प्रयोग किया है[1] । शम्बूक राम के समक्ष ग्रीष्म के कठोर तपन का वर्णन गौडी रीति में ही करता है -

> निष्कूजस्तिमिता: क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वना:
> स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय: ।
> सीमान: प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
> तृष्यद्भि: प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रव: पीयते ।[2]

अर्थात् कहीं पर तो चिड़ियों के चहकने से रहित होने से एकदम शान्त और कहीं पर अत्यन्त भयंकर जीवों की दहाड़ो वाले और कहीं अपनी स्वेच्छा से सो गये हुए भारी कुण्डलीवाले सर्पों की सांस से धौंक दी गई हुई आगवाली और गड्ढों में दूर दूर पर थोड़े थोड़े जलवाली सीमायें है, जिनमें प्यासे गिरगिटों को अजगर का पसीना पीना पड़ रहा है ।

गद्य में भी भवभूति ने गौडी रीति का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है । वैदर्भी रीति प्रधान इस नाटक में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुण विद्यमान हैं, जो कवि की बहुमुखी प्रतिभा को द्योतित करता है । अब कुन्दमाला में गुण तथा रीति का विवेचन करेंगे ।

<u>कुन्दमाला में गुण एवं रीति विवेचन</u>- काव्य के विभिन्न उपादान तत्त्वों

1- उ0च0 - 2/9 2- उ0च0 - 2/16

में गुण तथा रीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है । कुन्दमाला नाटक की भाषा भी प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी रीति है । नाटक की भाषा सरल, सरस और दीर्घ समासों से रहित है किन्तु कहीं कहीं दीर्घ समास रचना में भी दिङ्नाग ने अपना कौशल दिखाया है । दिङ्नाग की शैली भवभूति की अपेक्षा सरस तथा सरल है । नाटक में सर्वत्र प्रसाद गुण की ही प्रचुरता है किन्तु कुछ स्थलों पर माधुर्य गुण भी दिखाई देता है । दिङ्नाग केवल वैदर्भी रीति के ही प्रयोग में कुशल है परन्तु भवभूति उत्तररामचरितम् में न केवल वैदर्भी के प्रयोग में सफल हुए है अपितु आवश्यकतानुसार उन्होंने गौडी रीति का भी प्रयोग किया है । अत: दिङ्नाग की शैली सुगम एवं परिमार्जित है । नाटक में क्लिष्ट शब्द योजना नहीं की गई है इसीलिए छोटे छोटे वाक्यों से परिपूर्ण शैली स्वत: ही परिस्थिति के अनुकूल भावों को व्यक्त करती है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं ।

नाटक में सर्वत्र प्रसाद और माधुर्य गुण की प्रधानता है जिसके कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं । प्रथम अंक में अनेक स्थलों पर "प्रसाद गुण" दिखाई देता है । सीता को अकेली वन में छोड़ने के पश्चात् लक्ष्मण का वन के प्राणियों से सीता का परिचय कराना तथा उनकी रक्षा की प्रार्थना "प्रसाद पूर्ण" है । दिङ्नाग की ये प्रसिद्ध पँक्तियां "प्रसाद" का सुन्दर उदाहरण है -

प्रमाद: संपदं हन्ति प्रश्रयं हन्ति विस्मय: ।
व्यसनं विनयं हन्ति हन्ति शोकश्च धीरताम् [2] ।।

1- कुन्दमाला- 1/21

2- कुन्दमाला- 3/2

अनेक स्थलों पर राम अपनी असह्य विरह-वेदना को व्यक्त करने के लिए अत्यन्त सरल शब्दावली का प्रयोग करते हैं।[1] दीर्घिका पर अदृश्य सीता के प्रति विरह-व्याकुल राम का उपालम्भ भी "प्रसादपूर्ण" है।

गाढम् आलिङ्ग वैदेहि !
देहि मे दर्शनं प्रिये ।
त्यज्यतां दीर्घ-रोषोऽयं ।
किं नु निष्करुणा मयि ।।
देवि विज्ञापयामि त्वां ।
यत् त्वं चारित्रशालिनी ।
निर्वासिताऽसि विषयाद्
अस्मिन् दोषे प्रसीद मे ।।[2]

इस पद्य में किसी प्रकार की कोई क्लिष्टता नहीं है। शब्द अपने सौन्दर्य से बरबस ही मन को आकृष्ट कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त नाटक में अन्य स्थलों पर भी प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं।

माधुर्य गुण की भी छटा यत्र-तत्र मिलती है जैसे -

एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य,
हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुवन्ति ।
नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं[3]
तिर्यग्गता वरम् अमी न परं मनुष्याः ।।

पशु पक्षियों की निम्न कोटियों में उत्पन्न होने वाले ये पशु पक्षी श्रेष्ठ हैं।

1- कुन्दमाला- 3/3
2- कुन्दमाला- 4/15, 16
3- कुन्दमाला- 1/18

प्रस्तुत श्लोक में "त" तथा "न" और "द" तथा "न" संयुक्त वर्ण माधुर्य के व्यंजक है ।

सीता निर्वासन में अपनी भूमिका से खिन्न होकर लक्ष्मण आत्मग्लानि का अनुभव करते हुए अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं ।

आर्यां स्व-हस्तेन-वने विमोक्तुं श्रोतुं च तस्याः परिदेवितानि ।
सुखेन लङ्का-समरे हतं माम् अजीवयन्मारुतिर् आत्तवैरः ।।[1]

यहां "क" और "ङ" संयुक्त वर्ण माधुर्य के व्यंजक है ।

आह्लादकता माधुर्य का प्रधान लक्षण है । माधुर्य की एक झलक द्वितीय अंक के प्रारम्भ में मिलती है । अश्वमेध यज्ञ का समाचार सुनकर सभी प्रसन्न होते हैं तथा उसके मंगल की कामना करते हैं-

तीर्थोदकानि समिधः परिपूर्ण-रूपा
दर्भाङ्कुरान् अविहतान् परिगृह्य सद्यः ।
अग्रे भवन्तु मुनयो मुनि-कन्यकाश् च
कुर्वन्तु मङ्गल-बलीन् उटजाङ्गणेषु ।[2]

सभी मुनिगण तथा मुनिकन्यायें अपनी अपनी कुटियों के आंगनों में मांगलिक उपहारों को करें । यहां पर "क" और "ङ", "ग" और "ङ", "त" और "न" संयुक्त वर्ण माधुर्य के द्योतक हैं । इन सभी पद्यों में माधुर्य गुण प्रधान, कोमलकान्त वैदर्भी रीति दर्शनीय हैं । इसके अतिरिक्त माधुर्य गुण के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

1- कुन्दमाला- 1/17   2- कुन्दमाला- 2/2

विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता के कारण कुन्दमाला नाटक में सर्वत्र वैदर्भी रीति है । रीति की दृष्टि से दिङ्नाग कालिदास तथा भवभूति के अत्यन्त निकट है । इसमें गौडी तथा पांचाली रीति का सर्वथा आभाव है । कवि ने अपने हृदय के समस्त उद्‌गार वैदर्भी रीति के माध्यम से ही अभिव्यक्त किये है । प्रथम अंक में अनेक स्थलों पर वैदर्भी रीति का वर्णन हुआ है[1] । उदाहरणार्थ - सीता को वन छोड़ते समय लक्ष्मण गंगा जी के शीतल जल का वर्णन अत्यन्त सरल तथा मनोहर शब्दों में करते हुए कहते हैं-

आदाय पङ्कज-वनान्मकरन्द-गन्धान्
कर्षन् नितान्त-मधुरान् कलहंस-नादान् ।
शीतास् तरङ्ग-कणिका विकिरन् उपैति
गङ्गाऽनिलस् तव सभाजन-काङ्क्षयेव ।।[2]

अर्थात् कमलों के वन से पराग की सुगन्धि को लेकर, अत्यन्त मनोहर हंसो की ध्वनि को धारण करता हुआ, लहरों के शीतल जल को बिखेरता हुआ, यह गंगा के किनारे की वायु आपकी सेवा करने की इच्छा से ही मानों आपके पास आ रही है ।

आश्रम वर्णन में अनेक स्थलों पर वैदर्भी रीति के दर्शन होते हैं । आश्रम वर्णन में वैदर्भी रीति का चमत्कार प्रशंसनीय है[3] । श्री राम की मनोव्यथा की अभिव्यक्ति अत्यन्त सरल शब्दों में की गई है । लव और कुश को देखकर अपने हृदय में उत्पन्न आनन्द को श्री राम वैदर्भी रीति

1- कुन्दमाला- 1/4, 18 2- कुन्दमाला- 1/5
3- कुन्दमाला-4/4, 11

द्वारा व्यक्त करते हैं-

> यां यामवस्थामवगाहमानम्
> उत्प्रेक्षते स्वं तनयं प्रवासी ।
> विलोक्य तां तां गतं कुमारं,
> जातऽनुकम्पो द्रवतामुपैति ।।[1]

इन पुत्रों को देखकर मेरा हृदय दया से ओतप्रोत होकर पिघला जा रहा है । पद्य और गद्य दोनों में ही वैदर्भी रीति का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । परित्यक्त तथा करूण क्रन्दन करती हुई किसी स्त्री का समाचार सुनकर वाल्मीकि वहां आते हैं तथा अपने तेज से सीता निर्वासन का कारण जानकर अपने आन्तरिक भाव अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त करते हैं ।[2] द्वितीय अंक में कवि ने सीता की अन्तर्वेदना का वर्णन वैदर्भी रीति के माध्यम से ही किया है ।[3] संवाद कुछ वृहत होने पर भी चारूता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई है । रसास्वाद की दृष्टि से भी ये स्थल अत्यन्त मनोरम है । इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी वैदर्भी रीति के उदाहरण मिलते हैं ।

दोनों नाटकों में गुण तथा रीति का प्रयोग भली-भांति हुआ है । उत्तररामचरितम् में माधुर्य, प्रसाद तथा ओज तीनों गुणों का तथा वैदर्भी और गौडी रीति का प्रयोग सुन्दर ढ़ंग से हुआ है जब कि कुन्दमाला में केवल प्रसाद और माधुर्य गुण का और वैदर्भी रीति का ही प्रयोग हुआ है ।

1- कुन्दमाला- 5/13　　2- कुन्दमाला- पृ0 56

3- कुन्दमाला- पृ0 63

वृत्तियां= नाट्याचार्यों ने वृत्तियों को नाट्य की माताएं माना है[1]। सभी नाट्याचार्यों ने वृत्ति के चार भेद बताये हैं - भारती, सात्त्वती, कैशिकी और आरभटी[2]। धनंजय के अनुसार वृत्ति नेता का वह व्यापार-स्वभाव है जो उसे किसी कार्य में प्रवृत्त करता है[3]। व्यापार (कायिक, वाचिक और मानसिक) ही नाटक का प्रधान तत्त्व है और उसकी उत्पत्ति वृत्तियों से होती है इसीलिए इन्हें "नाट्य-मातर:" कहा गया है। सात्त्वती वृत्ति विशेषत: मानस व्यापार-रूप होती है, भारती वाचिक व्यापार रूप और कैशिकी तथा आरभटी दोनों वृत्तियाँ विशेषकर कायिक व्यापार-रूप है। नाट्य में सभी व्यापार रस, भाव तथा अभिनय से युक्त होता है। अत: ये वृत्तियां भी रस, भाव तथा अभिनय का अनुसरण करती हैं।

1- कैशिकी वृत्ति- जो विशेष प्रकार की वेश-भूषा से चित्रित हो, जिसमें स्त्री पात्रों की बहुलता हो, नृत्य गीत की प्रचुरता हो, श्रृंगार-प्रधान व्यवहार हो, वह चारु विलासों से युक्त वृत्ति कैशिकी है। इसके नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ ये चार भेद होते हैं[4]।

1- (क) ना०शा० 18/4 काव्यानां मातृका वृत्तय:
(ख) ना०द० 3/155 " नाट्यमातर:"
(ग) सा० द० - 6/123 - नाट्यस्य मातृका: ।

2- ना०द०- 3/1 भारती सात्त्वती कैशिक्यारभटी च वृत्तय: ।
रसभावाभिनयगाश्चतस्रों नाट्यमातर: ।।

3- द०रू०- 2/46- टीका-प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्ति: ।

4- दशरूपकम् -2/47
गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदु: श्रृंगारचेष्टितै: ।।
नर्मतत्स्फिञ्जतत्स्फोटतद्गर्भैश्चतुरङ्गिका ।

2- सात्त्वती वृत्ति- सत्त्व का अर्थ है- मन, उसका व्यापार अर्थात् मानस व्यापार ही सात्त्वती वृत्ति है । यह मानस व्यापार सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया, हर्ष आदि भावों के रूप में होता है और इसको सात्त्विक, वाचिक तथा आङ्गिक अभिनय के द्वारा प्रकट किया जाता है । किन्तु इसमें सात्त्विक अभिनय की ही प्रधानता होती है । संलापक, उत्थापक, संघात्य तथा परिवर्तक ये चार प्रकार के भेद होते हैं।[1]

3- आरभटी वृत्ति- माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्ति आदि चेष्टाओं के द्वारा आरभटी वृत्ति होती है । संक्षिप्तिका, संफेट, वस्तूत्थान तथा अवपातन इसके चार अंग होते हैं।[2]

4- भारती वृत्ति - प्राय: संस्कृत भाषा में नट द्वारा किया गया वाचिक व्यापार भारती वृत्ति कहलाता है । जो प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख इन चार अंगों से युक्त होता है।[3]

वृत्तियों के प्रयोग की व्यवस्था बताते हुए धनंजय ने कहा है कि श्रृंगार रस में कैशिकी वृत्ति, वीर में सात्त्वती और रौद्र तथा वीभत्स रस में आरभटी का प्रयोग होता है । भारती वृत्ति का सभी रसों में प्रयोग होता है क्यों कि यह शब्दवृत्ति है।[4] साहित्यदर्पणकार के अनुसार भी श्रृंगार में कैशिकी तथा वीर, रौद्र तथा वीभत्स में सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति होती है।[5]

अब हम उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में वर्णित वृत्तियों का विवेचन करेंगे ।

1- दशरूपकम- 2/53 विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः
संलापोत्थापकावस्यां साङ्घात्यः परिवर्तकः ।।

2- दशरूपकम-2/56 मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।।
संक्षिप्तिका स्यात्संफेटो वस्तूत्थानावपातने ।

3- दशरूपकम् 3/5 भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः
भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः ।

4- दशरूपकम्- 2/62 श्रृंगारे कैशिकी, वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः ।
रसे रौद्रे च वीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती ।।

5- साहित्यदर्पण- 6/122

उत्तररामचरितम् - इस नाटक में भारती सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति का प्रयोग हुआ है । कवि ने नियमानुसार वीर रस में सात्त्वती वृत्ति का रौद्र रस में आरभटी वृत्ति का तथा सभी रसों में प्रयुक्त होने के कारण भारती वृत्ति का इस नाटक में प्रयोग किया है । भारती वृत्ति के तीन अंग - प्ररोचना, आमुख और वीथी का प्रयोग हुआ है । प्रहसन नामक अंग का प्रयोग नहीं हुआ है ।

प्ररोचना- प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं को उन्मुख करना, अर्थात् प्रस्तुत काव्यार्थ की प्रशंसा करके श्रोताओं की प्रवृत्ति उसकी ओर करा देना ही प्ररोचना है ।[1]

उत्तररामचरितम् की "प्ररोचना" में कवि ने देश-काल तथा प्रयोज्य-वस्तु का सूत्रधार द्वारा निर्देश कर दिया है । नान्दी के अनन्तर सूत्रधार कहता है कि आज ही भगवान कालप्रियानाथ की यात्रा निकलते समय सम्माननीय आर्यों को विज्ञापित किये दे रहा हूं । आप लोग ऐसा जान लें कि कश्यप गोत्रीय श्रीकण्ठ पद की उपाधि वाले भवभूति नामक एक परम आदरणीय व्यक्ति हैं - जिस ब्रह्मा-रूप विप्र का अनुवर्तन यह वाग्देवता एक वशवर्तिनी की तरह करती आ रही है, उसी के द्वारा विरचित उत्तररामचरितम् का अभिनय किया जायेगा ।[2]

आमुख- जहां सूत्रधार, नटी या विदूषक के साथ बात करते हुए विचित्र उक्ति के द्वारा प्रस्तुत अर्थ का आक्षेप कर अपने कार्य का वर्णन करें, उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं ।[3] कथोद्घात, प्रवृत्तक, प्रयोगातिशय और वीथी में होने वाले तेरह अङ्ग प्रस्तावना या आमुख में होते हैं ।[4]

1- दशरूपकम् - 3/6 उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ।
2- उ०च० - 1/2 - पृ० 9
3- दशरूपकम - 3/6 सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाडथ विदूषकम ।।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।
प्रस्तावना वा ।
4- दशरूपकम् - 3/8 तत्र स्युः कथोद्घातः प्रवृत्तकम् ।।
प्रयोगातिशयश्चाथ वीथ्यङ्गानि त्रयोदश ।

उत्तररामचरितम् में " प्रयोगातिशय" प्रस्तावना है ।
प्रयोगातिशय उसे कहते हैं जहाँ सूत्रधार नटी से किसी प्रसंग की चर्चा
करते हुए अभिनेय व्यक्ति का नाम लेकर संकेत करे कि " अरे ! ये तो वे
ही है" और उस कथन के साथ ही उस व्यक्ति के अभिनय करने वाले
पात्र का प्रवेश हो जाये, उसे "प्रयोगातिशय" कहते हैं।[1]

महाकवि भवभूति ने प्रस्तावना में महत्त्वपूर्ण कथ्यों को उद्घाटित
किया है । प्रस्तावना में जो सूचनाएँ दी गई है वे निम्न हैं-

"राम के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने वाले सभी महर्षि
राजर्षि तथा मित्र आदि अपने घर लौट गये हैं तथा वसिष्ठ के साथ
अरून्धती तथा राम की माताएँ अपने जमाता ऋष्यश्रृंग के द्वादश-वर्षीय यज्ञ
में सम्मिलित होने के लिए चली गई है" । नाटक के कथानक के लिए कवि
ने अभीष्ट वातावरण का निर्माण यहीं से आरम्भ कर दिया है । सीता
निर्वासन में किसी प्रकार की कोई बाधा न पड़े इसलिए कवि ने गुरूजनों
को राम के पास से हटा दिया है । यज्ञ की अवधि द्वादश वर्षीय
बताकर जल्दी लौटने की कोई आशा नहीं रखी है । " सीता कठोरगर्भा
हैं "- यह संकेत भी प्रस्तावना द्वारा ही दे दिया है ।

"सीता का लंका विषयक अपवाद जनता में फैल रहा है, राक्षस
के गृह में निवास उसका मूल है और अग्नि परीक्षा के विषय में कोई विश्वास
नहीं कर रहा है"। यहीं किंवदन्ती आगे चलकर सत्य होती है । "सूत्रधार

1- दशरूपकम - 3/11 एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगतः ।
पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः ।।

कहता है कि यदि यह बात महाराज तक पहुँच गई तो बहुत बुरा होगा" । सूत्रधार के इस कथन को सुनकर नट कहता है कि "ऋषि और देवगण सब प्रकार से कल्याण करेंगे" । इस प्रकार भवभूति ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से आरम्भ में ही सुखान्त की सूचना दे दी है । प्रस्तावना में दी गई जनक के चले जाने की अन्तिम सूचना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

महाकवि ने इस संक्षिप्त प्रस्तावना में केवल नाट्य शास्त्र के आदेशों का ही पालन नहीं किया है वरन् सभी मुख्य मुख्य भावी घटनाओं की ओर भी संकेत कर दिया है । प्रस्तावना के अन्त में सूत्रधार के कथन के पश्चात् ही राम और सीता का प्रवेश होता है, अतः यह "प्रयोगातिशय" प्रस्तावना है ।

वीथी - वीथी का अर्थ है - मार्ग अथवा अंगों की पंक्ति । इसमें पूर्ण वर्णन न होने के कारण श्रृंगार रस को ही बहुशः सूचित करना होता है तथा अन्य रसों का भी अल्पमात्रा में स्पर्श किया जाता है । श्रृंगार रस के अनुकूल होने से ही यहां कौशिकी वृत्ति होती है ।[1]

वीथी के तेरह अंग होते हैं - उद्घात्यक, अवगलित, प्रपञ्च, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार और मृदव ।।[2]

1- दशरूपकम्- 3/68, 69 वीथी तु कैशिकीवृत्तौ सन्ध्यङ्गाङ्कैस्तु भाणवत् ।।
रसः सूच्यस्तु श्रृंगारः स्पृशेदपि रसान्तरम् ।
युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरङ्गैरुद्घात्यकादिभिः ।।
एवं वीथी विधातव्या द्वये कपात्रप्रयोजिता ।

2- दशरूपकम्- 3/12, 13

वीथी के कुछ अंगों का प्रयोग इस नाटक में हुआ है। "अवगलित" में एक के समावेश से अन्य कार्य की सिद्धि हो जाती है[1]। उत्तररामचरितम् में अवगलित का प्रयोग हुआ है, जैसे-दोहद-पूर्ति के लिए सीता को वन में भेजकर निष्कासन का कार्य भी सिद्ध हो जाता है। आरम्भ किये हुए वाक्य को रोक लेने से अथवा दो तीन बार की उक्ति-प्रत्युक्ति से वाक्केली हुआ करती है[2]। उत्तररामचरितम् में वाक्केली का प्रयोग भी हुआ है -

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥[3]

यहाँ वाक्केली नामक वीथ्यङ्ग है। "गण्ड" उसे कहते हैं जहाँ भिन्न अर्थ वाला होने पर भी प्रस्तुत अर्थ से सम्बन्ध हो सकने वाला वाक्य अकस्मात् ही कह दिया जाता है। वहाँ गण्ड होता है[4]। उत्तररामचरितम् में राम कहते हैं-

रामः - किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।
(प्रविश्य) प्रतीहारी-देव, उपस्थितः।
रामः- अयि कः।
प्रतीहारी- देवस्यासन्नपरिचारको दुर्मुखः[5]।

1- दशरूपकम् - 3/14 यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ॥
प्रस्तुतेऽन्यत्र वाऽन्यत्स्यात्तच्चावलगितं।
2- दशरूपकम् 3/17 विनिवृत्त्यास्य वाक्केली द्विस्त्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा
3- उ०च० - 3/26
4- दशरूपकम- 3/18 गण्डः प्रस्तुतसम्बन्धि भिन्नार्थं सहसोदितम्।
5- उ०च० - 1/38

यहाँ राम के "परमसह्यस्तु विरह:" इस कथन का "उपस्थित:" से सम्बन्ध जुड़ जाता है अर्थात् विरह: उपस्थित: । अत: यहाँ गण्ड नामक वीथ्यङ्ग है ।

प्रहसन का प्रयोग नहीं हुआ है ।

सात्त्वती वृत्ति के संलापक, उत्थापक, नामक दो अंगों का इस नाटक में प्रयोग हुआ है ।

संलापक- अनेक प्रकार के भावों तथा रसों से युक्त पात्रों की पारस्परिक उक्ति में संलापक होता है[1] । उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक में सैनिकों के उत्तेजनात्मक वाणी के प्रयोग में तथा पंचम अंक के अन्त में लव और चन्द्रकेतु के वार्तालाप में "संलापक" नामक सात्त्वती वृत्ति है । यहाँ पर सैनिकों तथा लव और चन्द्रकेतु के अनेक प्रकार के भावों तथा रसों से युक्त पारस्पतिक उक्ति का वर्णन हुआ है ।

उत्थापक- जहाँ एक पात्र दूसरे को पहले-पहल युद्ध के लिए उत्तेजित करे वहाँ उत्थापक नामक सात्त्वती वृत्ति का अंग होता है[2] । पंचम अंक में चन्द्रकेतु के कथन में "उत्थापक" नामक अंग का प्रयोग हुआ है । चन्द्रकेतु लव से कहता है कि - हे कुमार तुम्हारे अभिनाम की कसौटी तो यह चन्द्रकेतु है इसलिए मुझसे युद्ध करो ।

तत् किन्निजे परिजने कदनं करोषि,
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतु: ॥[3]

आरभटी वृत्ति के संफेट तथा वस्तूत्थान नामक दो ही अंगों का प्रयोग हुआ है ।

1- दशरूपकम् 2/53 संलापको गभीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथ:
2- दशरूपकम् 2/53 उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम् ॥
3- उ०च०- 5/10

सम्फेट- क्रुद्ध तथा उत्तेजित दो व्यक्तियों का एक दूसरे पर प्रहार करना सम्फेट नामक आरभटी वृत्ति का अंग है[1]। क्रुद्ध चन्द्रकेतु और लव उत्तेजित होकर युद्ध करते हैं अत: दोनों के युद्ध में सम्फेट का प्रयोग हुआ है ।

वस्तूत्थापनम् - माया आदि के द्वारा वस्तु को उपस्थित कर देना "वस्तूत्थापन" नामक आरभटी वृत्ति का अंग है[2]। उत्तररामचरितम् नाटक में "वस्तूत्थापन" का प्रयोग सप्तम अंक के गर्भांक नाटक में किया गया है क्यों कि गर्भांक नाटक वाल्मीकि के प्रभाव से ही सम्पन्न होता है ।

कुन्दमाला- श्रृंगार रस प्रधान होने के कारण इस नाटक में कैशिकी वृत्ति है । कैशिकी वृत्ति के नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ ये चार अंग होते हैं । नर्म तथा नर्मगर्भ नामक अंगों का इस नाटक में प्रयोग नहीं हुआ है तथा नर्मस्फिञ्ज और नर्मस्फोट अंगों का केवल संकेत मिलता है ।

नर्मस्फिञ्ज- यदि नायिका को प्रथम समागम के समय आरम्भ से सुख होता है और अन्त में भय तो वह नर्मस्फिञ्ज कहलाता है[3]। नायक राम और नायिका सीता प्रौढ़ दम्पती है इसलिए इस नाटक में प्रथम समागम का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है । श्री राम ने अपनी पत्नी सीता को लोकापवाद सुनकर निर्वासित कर दिया है । निर्वासित सीता को वाल्मीकि आश्रय देते हैं । इतने सुदीर्घ अन्तराल के पश्चात् सीता को राम तथा लक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम के समीप दिखाई देते हैं । सीता राम को बहुत दिनों के पश्चात् देखती है और उनका यह प्रथम समागम नहीं है लेकिन

1- दशरूपकम - 2/58 सम्फेटस्तु समाघात: क्रुद्धसंरब्धयोर्द्वयो: ।।
2- दशरूपकम् - 2/59 मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तूत्थापनमिष्यते ।
3- दशरूपकम् - 2/51 नर्मस्फिञ्ज: सुखारम्भो भयान्तो नवसङ्गमे ।

राम के दर्शन से उनकी अवस्था प्रथम समागम जैसी ही हो जाती है अत: हम इसे नर्मस्फिञ्ज का उदाहरण मान सकते हैं । राम को देखकर उन्हें आत्मसंतोष होता है और वे कहती हैं कि आज उनके दर्शन से न जाने मेरी कैसी अवस्था हो गई है[1] किन्तु तभी उन्हें लोकापवाद का ध्यान आने पर भय उत्पन्न होता है और वे वहाँ से चली जाती हैं । इसलिए इसे "नर्मस्फिञ्ज" का उदाहरण कह सकते हैं ।

नर्मस्फोट- जहाँ पर भावों के कुछ अंशों द्वारा अल्प रस सूचित होता है, वह नर्मस्फोट कहलाता है[2] । श्री राम को देखकर सीता के मन में अनेक भाव उत्पन्न होते हैं । वे कहती हैं- "स्वामी है, आदरणीय है, कुश और लव के पिता हैं इसलिए पारिवारिक प्रेम भावना उद्बुद्ध हो रही है । पता नहीं आर्य पुत्र के दर्शन से मेरी कैसी स्थिति हो गई है[3] । यहाँ कुछ अंशों के द्वारा अल्प सा अनुराग सूचित होता है । अत: इसे "नर्मस्फोट" का उदाहरण मान सकते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति भारती, सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति का प्रयोग करने में सफल हुए है जब कि दिङ्नाग ने केवल कैशिकी वृत्ति का ही प्रयोग किया है और वे भी स्पष्ट परिलक्षित नहीं होती है ।

सूक्तियों का प्रयोग - किसी भी रचना में सूक्तियों का सम्यक् सन्निवेश अर्थगौरव का मापदण्ड माना जाता है । कवि अपनी प्रौढ़ अनुभूति, कल्पना एवं परिपक्व ज्ञान से ही अपने काव्य को अर्थगाम्भीर्य से सुशोभित कर सकता

1- कुन्दमाला- पृ0 101 से 109

2- दशरूपकम् - 2/51- नर्मस्फोटस्तु भावानां सूचितोऽल्परसो लवैः।।

3- कुन्दमाला- पृ0 101

है । एक प्रसिद्ध उक्ति है- "गागर में सागर भरना" जिसका अर्थ है कि एक ही वाक्य में अनेक अर्थों को व्यक्त करने की क्षमता का होना । सूक्तियाँ भी गागर में सागर की भाँति एक ही वाक्य द्वारा धार्मिक, नैतिक व्यवहारिक सभी प्रकार के उपदेशों की विस्तृत भूमिका एवं उसके अवर्णनीय प्रभाव को सुगमता से व्यक्त करती हैं । जिस कवि में जितनी ही अधिक प्रतिभा, ज्ञान, विद्वता, स्वच्छन्द कल्पना व व्यवहारिक अनुभूति होगी उसकी रचना में उतनी ही अधिक सूक्तियों की निष्पत्ति होगी । सूक्तियाँ भावों की सघनता के साथ साथ उदात्तता, नैतिकता तथा मानव जीवन के लिए नाना प्रकार के आदर्श संदेश एवं प्रेरणाएं व्यक्त करती हैं ।

नाटक ही नहीं अपितु काव्य रचना उद्देश्य युक्त होनी चाहिए । कवि या नाटककार मानवता के हित के लिए ही साहित्य का सृजन करता है । मानवहित के लिए ही कवि अनेक प्रकार के सूक्ष्म अनुभवों एवं उदात्त आदर्शों का अपनी कृति में समन्वय करता है और इन सदुपदेशों को वह सूक्तियों के माध्यम से व्यक्त करता है । सूक्ति का तात्पर्य है सुन्दर उक्ति अर्थात् सम्यक कथन । ऋषि मुनियों महापुरूषों तथा मनीषियों के अनुभवों और अन्तर्दृष्टि से उत्पन्न समस्याओं के समाधान ही सूक्तियों में संचित होते हैं । महापुरूषों के ये उद्गार ही अन्तर्द्वन्द में पड़े जनसमुदाय का आलोक स्तम्भ की तरह मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला दोनों ही नाटकों में सूक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है । नाटककारों की मौलिक सूझ बूझ एवं प्रतिभा ने ही इन सूक्तियों को जन्म दिया है । कवियों की ये सूक्तियाँ जहाँ एक ओर उनके अर्थ गाम्भीर्य का परिचायक हैं वहीं दूसरी ओर इनके नीतिज्ञता व्यवहार कुशलता तथा स्वाभाविकता का भी परिचय मिलता है ।

अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सहारा लेकर लिखी गई ये सूक्तियां, राजनीतिक रहस्यों, सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों तथा स्वाभाविक मानवीय चेष्टाओं एवं उनके आचार-विचारों को प्रकाशित करने वाली है, साथ ही साथ ये सूक्तियां सहनशीलता, कर्तव्यपरायणता आदि को भी प्रकाशित करती है तथा मानव कल्याणपरक हैं ।

सर्वप्रथम उत्तररामचरितम् तत्पश्चात् कुन्दमाला में प्रयुक्त सूक्तियों का वर्णन करेंगे ।

<u>उत्तररामचरितम्</u> - सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं को आधार बनाकर कवि ने अनेक सूक्तियां लिखी हैं जैसे-

"सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति"[1] अर्थात् सज्जनों का सज्जनों से संसर्ग बहुत ही कठिनाई और पुण्य के कारण होता है । शम्बूक भी वध के पश्चात् दिव्य रूप धारण करके कहता है-

"सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति"[2] अर्थात् सज्जन पुरूषों के द्वारा प्राप्त हुयी मृत्यु मोक्षदायनी होती है ।

आत्रेयी कहती है कि गुरू बुद्धिमान तथा बुद्धिहीन दोनों प्रकार के विद्यार्थियों को समान रूप से विद्या वितरित करता है किन्तु फल की दृष्टि से दोनों में बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है ।

वितरति गुरूः प्राज्ञे विद्यां यथा तथैव जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः ।।[3]

1- उ0च0-पृ0 85 2- उ0च0 पृ0 104 3- उ0च0- 2/4

राम सीता की पवित्रता की तुलना तीर्थ के जल और अग्नि से करते हैं "तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यत: शुद्धिमर्हत:"[1]। यह पंक्ति प्रत्येक स्त्री की पवित्रता के लिए सार्थक है ।

भवभूति ने स्वाभाविक मानवीय चेष्टाओं एवं उनके आचार विचारों से सम्बन्धित सूक्तियों का भी वर्णन किया है । उदाहरणार्थ - "सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति"[2] अर्थात् परिवार जनों के लोगों का वियोग कष्टकारी होता है । यह एक व्यवहारिक सत्य है कि मनुष्य को सुख और दु:ख अपने समीपस्थ लोगों से ही प्राप्त होता है और आत्मीय जनों का वियोग तो असह्य होता है ।
"स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत्"[3]। अर्थात् स्नेह का कारण सापेक्ष होता है ।
श्री राम सीता के साथ पूर्व परिचित स्थलों का स्मरण कर कहते हैं- "पुराभूत: शोको विकलयति मां नूतनइव"[4]। यह सत्य है कि जब व्यक्ति अपनी प्राणों से प्रिय किसी वस्तु को खो देता है तो उसका स्मरण करने पर या उन स्थलों को देखकर उसकी पीड़ा जो अभी तक अन्दर तक ही सीमित थी, नया रूप धारण कर दु:ख पहुँचाती है ।

कवि ने प्रकृति को उपमान बनाकर भी कुछ सूक्तियों की रचना की है । उनमें से कुछ द्रष्टव्य हैं-
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति[5]। अर्थात् जिस तरह धूप फूल को झुलसा देता है उसी तरह प्रियतमा का शोक जीवन को सुखाये दे रहा है ।

1- उ0च0- पृ0 28 2- उ0च0-पृ0 19 3- उ0च0-पृ0 303
4- उ0च0- पृ0 120 5- उ0च0- 176

कवि ने स्त्रियों के हृदय की तुलना फूल से की है जिसप्रकार फूल अत्यन्त कोमल होता है उसी प्रकार स्त्रियों का हृदय भी कोमल होता है " पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति "[1]।

इसके अतिरिक्त नाटक में अन्य सूक्तियों का भी प्रयोग हुआ है ।

कुन्दमाला नाटक में भी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों से सम्बन्धित सूक्तियां दिखाई देती हैं । विदूषक कहता है कि राजा के प्रसन्न मुख होने पर भी सेवक को राजा से कुछ निवेदन करना कठिन होता है और जब राजा क्रोधित हो तब तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता - "प्रसाद-सुमुखोऽपि राजा दुर्विज्ञाप्यः सेवकैः"[2] । "लोको निरङ्कुशः"[3]। अर्थात् संसार उच्छंखल है । यह एक सामाजिक तथ्य है कि यदि व्यक्ति सामाजिक मान्याओं से भिन्न कोई कार्य करता है या न भी करता हो लेकिन समाज वास्तविक स्थिति को जानने का प्रयास नहीं करता है और यों ही जिस किसी के विषय में जो चाहे वो कहने लगता है । दिङ्नाग ने इसी सत्य को यहां उजागर किया है । गृहणी के बिना घर-घर नहीं होता है । गृहणी ही घर की लक्ष्मी है । इसी विषय पर दिङ्नाग कहते हैं कि श्री राम ने घर से गृहलक्ष्मी को ही निकाल दिया। घर से ही नहीं वरन देश से भी निकाल दिया । ये तो महान आश्चर्य है- "कथं गृहाद् गृहं नाम"[4] ।
"प्रमादः संपदं हन्ति प्रश्रयं हन्ति विस्मयः ।
व्यसनं विनयं हन्ति, हन्ति शोकश्च धीरताम्[5] ।। दिङ्नाग की यह पंक्तियां उनकी गहरी लोकानुभूति को दर्शाती है ।

1- उ0च0- पृ0 227 2- कुन्दमाला- पृ0 183 3- कुन्दमाला-पृ0 25
4- कुन्दमाला-पृ0 33 5- कुन्दमाला- 3/2

" न च गुरूनियोगाः विचारम् अर्हन्ति"[1]। अर्थात् गुरूजनों की आज्ञा विचारणीय नहीं होती है ।

कहीं कहीं कवि ने प्रकृति का भी सहारा लिया है । जैसे
"भुवनम् अभितपन् सहस्ररश्मिर्
जल गुरूभिर् व्यवधीयते हि मेघैः[2]।।" कवि का यह तात्पर्य है कि गुणों की रक्षा करने में तत्पर मन्त्रियों के लिए यही उचित होता है कि वे अत्यन्त क्रोधित एवं उग्र शासन वाले राजा को रोकें क्यों कि सूर्य प्रचण्ड धूप से संसार को जब सन्तप्त करता है तब जल के भार से आक्रान्त मेघ सूर्य की प्रचण्डता में कुछ क्षण के लिए व्यवधान ला ही देता है ।
"अन्तरिता अनुरागाभावा मम कर्कशस्य बाह्येन[3]।" अर्थात् जिस प्रकार कमल नाल में बाहर से कठोर और अन्दर कोमल तन्तु छिपे होते हैं, उसीप्रकार बाहर से कठोर मेरे अन्दर प्रेम भाव छिपे हुए हैं ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सूक्तियां भी देखी जाती हैं । जैसे बिम्बेन च विना प्रतिबिम्बम् इत्यसंभाव्यम् एतत्[4]। अर्थात् बिम्ब के बिना परछाईं का होना सर्वथा असम्भव है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला दोनों ही नाटकों में अनेक सुन्दर पद्य तथा पंक्तियां उपलब्ध हैं, जो सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गये हैं । ये सभी सूक्तियां नीति, लोक व्यवहार और जीवन की विविधताओं से सम्बन्ध रखती हैं । इन सभी सूक्तियों से ये पता चलता है कि कवियों ने लोक जीवन से कितना गहरा अनुभव प्राप्त किया है । इन्हीं सूक्तियों के कारण उनकी रचनाएं अधिक

1- कुन्दमाला- पृ० 196
2- कुन्दमाला- 5/7
3- कुन्दमाला- 5/6
4- कुन्दमाला- पृ० 145

रोचक तथा प्रभावोत्पादक हो गई हैं ।

संवाद सौन्दर्य- संवाद सौष्ठव भी शैली का ही गुण है । जिस नाटक में संवाद जितने चुटीले, मार्मिक सुसंगठित और श्लिष्ट होंगे, उसका कथ्य उतना ही रोचक और ग्राह्य होगा । नाटक में संवादों का महत्वपूर्ण स्थान है, इससे ही घटनाओं और चरित्रों का विकास होता है । इसीलिए संवादों की योजना पात्र की प्रवृत्ति एवं परिस्थिति के अनुकूल सरल, सुबोध भाषा में होनी चाहिए । उसमें जटिलता तथा गूढ़ता नहीं होनी चाहिए । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संवाद चमत्कार और सौन्दर्यबोध कराने की क्षमता से रहित हो । सरलता और स्पष्टता के साथ साथ उन्हें कौतूहल-पूर्ण तथा नाटकीय भी होना चाहिए । अतः संवाद पात्रों के अनुरूप होने चाहिए । संवाद ही नाटक में चरित्र-चित्रण और भाव-संप्रेषण के माध्यम होते हैं ।

उत्तररामचरितम्- भवभूति के संवादों में वे सभी गुण उपलब्ध हैं, जो अच्छे संवाद के लिए आवश्यक है । उनके पात्रों के कथोपकथन स्थिति के अनुकूल है । जनक, कौशल्या, लव, दण्डायन, सौधातिक, अरून्धती आदि सभी पात्रों की उक्तियां प्रत्येक दृष्टि से सर्वथा उचित हैं । वे अवसर एवं भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं । दण्डायन और सौधातिक दोनों महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं । दण्डायन संस्कृत का प्रयोग करता है जबकि सौधातिक प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है । इन दोनों की भाषा का यह अन्तर उचित ही है क्यों कि दण्डायन सौधातिक से आयु में बड़ा तथा विचारों में प्रौढ़ है । इसीप्रकार विद्याधर द्वारा भवभूति ने संस्कृत का प्रयोग करवाया है और विद्याधरी द्वारा प्राकृत भाषा का, जो सर्वथा उचित है । शम्बूक भी एक दिव्य पुरूष होने के कारण संस्कृत भाषा

का प्रयोग करता है । भवभूति युद्ध वर्णन एवं प्रकृति के भयंकर रूप का वर्णन करने में लम्बे-लम्बे समास वाले ओज युक्त गुण क्लिष्ट पद्य लिखते हैं और ललित एवं सुकुमार भावों का वर्णन करते समय समास रहित सरस, मधुर पदावली का प्रयोग करते हैं । दो तीन पात्रों द्वारा प्रयुक्त छोटे छोटे वाक्य अतीव मनोरम, चमत्कारपूर्ण, भावप्रवण तथा रसानुभूति कराने में समर्थ हैं । संवादों में सर्वत्र स्वभाविकता है जिससे कथानक की गति में प्रवाह आ गया है, क्यों कि संवाद ही वह कड़ी है जो घटनाओं के पौर्वापर्य भाव तथा पात्रों को एक दूसरे से जोड़ते हैं ।

संक्षिप्त संवाद- नाटक में कहीं कहीं छोटे छोटे वाक्य बड़े बड़े अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं । सीता का "वत्स ! इयमपरा का", पूछना तथा लक्ष्मण का "आर्ये ! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्"[1] यह कहना सारगर्भित कथोपकथन के उदाहरण है ।

चरित्र प्रधान संवाद- संवाद नाटक में चरित्र-चित्रण का प्रधान साधन होता है । राम और कञ्चुकी के संवाद द्वारा राजा के चरित्र का एक पहलु स्पष्ट होता है । प्रथम अंक में कञ्चुकी के प्रति राम की उक्ति- "आर्य ! ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य"[2] । वृद्धजनों के प्रति उनकी श्रद्धा को तथा उदाराशयता को व्यक्त करता है । कहीं कहीं एक पात्र का कथन दूसरे पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालता है । अष्टावक्र के मुख से देवी अरून्धती आदि का सन्देश सुनकर राम कहते हैं- "क्रियते यद्येषा कथयति"[3] यह वाक्य राम के चरित्र की अपेक्षा सीता के

1- उ0च0 पृ0 36

2- उ0च0 पृ0 20

3- उ0च0 पृ0 23

चरित्र से अधिक सम्बन्धित है । तृतीय अंक में राम के प्रति वासन्ती के उपालम्भ[1] को सुनकर सीता का कथन उनकी पति परायणता को व्यक्त करता है ।

स्वभावानुकूल संवाद- स्वाभाविकता अच्छे संवाद का अनिवार्य गुण है । तृतीय अंक में राम तथा वासन्ती के संवाद[2] और सीता तथा तमसा के कथोपकथन[3] अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं । चतुर्थ अंक में अरून्धती, जनक, कौशल्या तथा लव के संवाद[4] भी अत्यन्त मनोहर हैं । विभिन्न पात्रों बटु, लव और सैनिकों की उक्तियां परस्पर भिन्न होते हुए भी अत्यन्त स्वाभाविक है । भवभूति भावानुकूल संवाद लेखन प्रवृत्ति में अत्यन्त सफल हुए हैं । ये संवाद अत्यन्त रोचक तथा हृदयस्पर्शी हैं ।

सूक्ति युक्त संवाद- भवभूति ने नाटक में अपने पात्रों द्वारा अनेक स्थलों पर सूक्तियों का प्रयोग करवाया है, जिससे पात्रों में सजीवता आ गई है । श्री राम कहते हैं- "संकटा ह्याहिताग्नीनाम् प्रत्यवायैर्गृहस्थता" । इसके उत्तर में सीता भी सूक्ति का ही प्रयोग करती हैं- " जानामि आर्य पुत्र जानामि । किन्तु सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति"[5]। इस प्रकार सूक्तियों ने कथनों को प्रभावोत्पादक बना दिया है ।

इसके अतिरिक्त नाटक में अन्य प्रकार के भी संवाद देखे जाते हैं जैसे- षष्ठ अंक में लव और कुश के संवाद द्वारा कवि ने बाल-सुलभ स्वभाव का अत्यन्त मनोहारी रूप प्रस्तुत किया है । कुश के पूछने

1- उ०च० पृ० 173- सखि वासन्ती, त्वमेव दारूणा कठोरा च । यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि

2- उ०च०- पृ० 170, 171, 172

3- उ०च०- पृ० 175

4- उ०च०- पृ० 241

5- उ०च०-1/8 पृ० 19

पर कि श्री राम के पास कैसे जाना चाहिए तो लव कहता है कि जिस तरह गुरू जी के पास जाते हैं उसी प्रकार उनकी सेना में भी जाना चाहिए क्यों कि उर्मिलापुत्र चन्द्रकेतु "प्रियमित्र" कहकर मुझसे मैत्री का व्यवहार करता है[1]। बाल सुलभ बुद्धि का जैसा स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि बालमनोविज्ञान से भली भाँति परिचित है। बटु और लव के संवाद[2] अपने चुटीलेपन से हास्य की सर्जना करने में सहायक हुए हैं। सामान्यतया नाटक में संवाद बहुत संतुलित, सहज और पात्रों के अनुरूप है।

कुन्दमाला- संवादों की दृष्टि से कुन्दमाला भी अत्यन्त समृद्ध नाटक है। दिङ्नाग के संवाद अत्यन्त मनोरम, चमत्कारपूर्ण, भावप्रवण तथा रसानुभूति कराने में समर्थ हैं। संवादों की भाषा सरल और दीर्घकाय समासों के आडम्बर से रहित है। संवाद कला का उत्कर्ष उन अवसरों पर देखने को मिलता है जब अदृश्य पात्र अन्य दृश्य पात्र का प्रतिवचन देता हैं। नाटक में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है। नाटककार ने पात्रों के भावों का अत्यन्त सफलता पूर्वक चित्रण किया है। कहीं कहीं बात को आधा कहकर भी दिङ्नाग ने भावों की सफल अभिव्यंजना की है। कहीं कहीं सरस तथा सरल पद शय्या भास का स्मरण कराती है। इनकी संवाद शैली भास से प्रभावित लगती है।

कौतूहल-पूर्ण संवाद - दिङ्नाग के संवाद कहीं कहीं कौतूहल उत्पन्न करते हैं। यथा प्रथम अंक में सीता तथा लक्ष्मण के संवाद अत्यन्त मनोरम तथा कौतूहल उत्पन्न करने वाले हैं। लक्ष्मण का प्रत्येक वाक्य सीता के मन

1- उ०च०- पृ० 312 2- उ०च०- पृ० 248

में जिज्ञासा उत्पन्न करता है कि वनवास की आज्ञा किसको दी है, क्यों दी है। क्या माता कैकयी ने फिर से वनवास की आज्ञा दे दी है[1]। वाक्य विन्यास सुसंगठित है। षष्ठ अंक में, राम उनके पिता हैं, इस सम्बन्ध से अनभिज्ञ लव और कुश कथा द्वारा राम के पुत्रों का जन्म जानकर उन्हें बधाई देते हैं[2]। जो विचित्र संवार को जन्म देता है।

चरित्र प्रधान संवाद- कुन्दमाला नाटक में भी पात्रों द्वारा कुछ ऐसी उक्तियों का प्रयोग कराया है जिससे किसी अन्य पात्र के चरित्र की विशेषता प्रकट हो सके। परित्यक्त स्त्री को देखकर वाल्मीकि कहते हैं- " यदि त्वं वर्णाश्रम-व्यवस्था-भूतेनमहाराजेन निर्वासिताऽसि, तत् स्वस्ति भवत्यै गच्छाम्यहम्"[3]। इससे राम की श्रेष्ठता तथा उनके सुव्यवस्थित शासन का पता चलता है।

भावानुकूल संवाद- भावों की अभिव्यक्ति करने में दिङ्नाग अत्यन्त सफल हुए हैं। श्री राम के मूर्छित हो जाने पर अदृश्य सीता उन्हें चेतना प्राप्त कराना चाहती हैं किन्तु उनके मन में अनेक विचार उत्पन्न होते हैं कि यदि आर्य पुत्र ने पहचान लिया तो क्रोध करेंगे। तब मुनि लोग मुझे "अविनीत समझेगें। इसलिए अब मुझे आश्रम वापस जाना चाहिए लेकिन वह फिर सोचती हैं कि यह समय उचित और अनुचित सोचने का नहीं है। मुझे आर्य पुत्र की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए वरन् रक्षा करनी

1- कुन्दमाला- पृ० 16 - सीता-अपि कुशलम् आर्यपुत्रस्य,
लक्ष्मण:- एवं गते कीदृशं कुशलम् आर्यस्य?
सीता- श्वश्रुवा कैकेय्या पुनरपि समदिष्टो वनवास:?
लक्ष्मण- समादिष्टो वनवास:, न पुनर् अम्बया।
सीता- केन पुन: समादिष्ट:,

2- कुन्दमाला- पृ० 249 3- कुन्दमाला- पृ० 52

चाहिए[1]। सीता का यह संवाद अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है। यह संवाद मनोवैज्ञानिक सत्य पर भी आधारित है। जब भी मनुष्य कोई ऐसा कार्य करता है जो सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं के अनुकूल न हो तो वह स्वयं ही उसके परिणाम की आशंका से भयभीत होने लगता है। नानाप्रकार की शंकाओं के मध्य उसका मन दोलायमान रहता है। यह संवाद सीता की इसी मनः स्थिति को सूचित करता है।

सामान्यतया दोनों ही नाटकों के संवाद बहुत ही संतुलित और सहज है। किसी भी पात्र के कथोपकथन इतने लम्बे और उलझे हुए नहीं हैं जिससे रस चवर्णा अथवा कथानक की गति में कोई बाधा उत्पन्न हो। संवादों में गूढ़ तथा जटिल भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है, जिसके कारण उनमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं आई है।

प्रकृति वर्णन- साहित्य में प्रकृति वर्णन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है अनादि काल से कवि ने हरी भरी शस्यश्यामला प्रकृति, कलकल कर बहती हुई नदियों, घुमड़, घुमड़ कर गरजते बादलों को देखकर उनसे आकृष्ट होकर उसके नाना रूपों का चित्र प्रस्तुत किया है। विश्व साहित्य के आदि ग्रन्थ वेदों में भी प्रकृति और मानव का सुन्दर सम्बन्ध परिलक्षित होता है। वेदों में एक ओर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, मेघ, पवन, सरिता, पशु, पक्षी तथा लताओं का भावमय चित्रण है तो दूसरी ओर इनसे व्याप्त अग्नि, इन्द्र, वरूण, उषा आदि दैवी शक्तियों की कल्पना भी है। यह भावना उत्तरवर्ती साहित्य में निरन्तर पुष्ट होती चली गयी। उत्तरवर्ती कवियों ने कहीं प्रकृति को आलम्बन के रूप में ग्रहण किया है तो कहीं उद्दीपन के रूप में, कहीं प्रकृति साध्य हैं तो कहीं साधन। जिसने जिस

1- कुन्दमाला- पृ० 147, 148

रूप में प्रकृति के दर्शन किये उसी रूप में उसके साथ तादात्म्य स्थापित किया । इस प्रकार कवि और प्रकृति का सम्बन्ध अटूट एवं शाश्वत है ।

कवि अपने पात्रों के वर्णन के लिए प्रकृति से ही उपमानों का चयन करता है, कवि के लिए प्रकृति अचेतन न होकर चेतन स्वरूपा है । उसमें भी उसी तरह क्रियाएं होती है जैसे चेतन प्राणी में । संवेदनशील प्राणी ही प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसके सौन्दर्य में मानवीय सौन्दर्य एवं मानव के क्रिया कलापों को प्रतिबिम्बित कर सकता है । कवि की इसी प्रतिभा के सहारे जब प्रकृति अपने अचेतन रूप को त्याग कर चेतन रूप में हमारे सम्मुख आती है तब उसमें निहित सौन्दर्य अधिक उदात्त और आकर्षक हो उठता है ।

प्रकृति प्रेमी कवि भाव विह्वल होकर प्रकृति के नाना रूपों का निरीक्षण करके, प्रकृति के सौन्दर्य का अनुभव करके कविता का रूप देता है । कवियों ने प्रकृति चित्रण दो रूपों में किया है । पहला आलम्बन या साध्य रूप में जहां प्रकृति के सौन्दर्य की अनुभूति कराना ही लक्ष्य हो, दूसरा उद्दीपन या साधन रूप में जहां प्रकृति के माध्यम से किन्हीं विशिष्ट मनोभावों की सर्जना या दिग्दर्शन कराने के लिए वातावरण तैयार किया जाये ।

उत्तररामचरितम् में प्रकृति वर्णन- यद्यपि कवि को नाटक में प्रकृति वर्णन की इतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती है, जितनी महाकाव्य अथवा खंडकाव्य में रहती है, लेकिन फिर भी महाकवि भवभूति ने प्रचुरता से प्रकृति का प्रसंगानुकूल चित्रण किया है । प्रकृति से उन्हें असीम प्रेम है । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने प्रकृति को निकट से देखा है और उसके साथ उनकी

गहरी आत्मीयता है । यही कारण है कि उन्हों ने प्रकृति के कोमल और रम्य दृश्यों के वर्णन के साथ साथ भीषण रूपों का बड़ा ही हृदयग्राही एवं सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है ।

उत्तररामचरितम् नाटक का आरम्भ तो राजभवन से ही हुआ है परन्तु सम्पूर्ण कथानक प्रकृति की गोद में ही विकसित होता है । कवि ने प्रकृति को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है ।

प्रकृति का रमणीय रूप - भवभूति को प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण है । चित्रदर्शन के समय तपोवन में दृश्यों का स्मरण करते हुए श्री राम कहते हैं कि वानप्रस्थों द्वारा आश्रित वृक्षों वाले ये वही तपोवन हैं जहां गृहस्थ लोग रहते हैं-

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणी तटेषु
वैखानसाश्रित तरूणि तपोवनानि ।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि [1] ।।

पम्पा सरोवर के सुन्दर दृश्य का वर्णन करते हुए श्री राम कहते हैं-

एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्ष -
व्याधूतस्फुरदुरूदण्डपुण्डरीकाः ।
वाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले
सन्दृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः [2] ।।

इसके अतिरिक्त कवि ने माल्यावान् पर्वत[3] तथा प्रस्रवण पर्वत[4] का भी

1- उत्तररामचरितम् - 1/25
2- उ०च० - 1/31
3- उ०च०- 1/33
4- उ०च०" पृ० 47

अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है । द्वितीय अंक में दण्डकारण्य को देखकर श्री राम कहते हैं कि तीर्थों, आश्रमों, पर्वतों, नदियों गड्ढों और दुर्गम रास्तों से भरे हुए दण्डकारण्य के प्रदेश जाने पहचाने लग रहे हैं-

> स्निग्धश्यामा: क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षा:
> स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम् ।
> एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्रा:
> सन्दृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागा: [1] ।।

द्वितीय अंक की समाप्ति पर कवि ने नदियों के संगम का अत्यन्त मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है[2]।

प्रकृति का भयावह रूप - द्वितीय अंक में तो कवि ने प्रकृति के कोमल तथा भयावह दोनों ही रूपों का चित्रण अत्यन्त मनोहारी किया है । श्री राम अपने पूर्व परिचित स्थलों का दर्शन करते हैं । शम्बूक उनके पूर्व परिचित स्थानों को दिखाकर कहता है -

> निष्कूजस्तिमिता: क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वना:
> स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय: ।
> सीमान: प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
> तृष्यद्भि: प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रव: पीयते [3] ।।

अर्थात् कहीं पर तो भयंकर जीवों की दहाड़वाली और कहीं अपनी इच्छा से सो गये हुए भारी कुण्डली वाले सर्पों की सांस से धौंक दी गई हुई आगवाली और गड्ढों में दूर दूर पर थोड़े थोड़े जल वाली सीमायें हैं,

---

1- उ0च0- 2/14
2- उ0च0- 2/30
3- उ0च0- 2/16

जिनमें कि प्यासे गिरगिटों को अजगर का पसीना पीना पड़ रहा है ।

क्रौञ्च के स्वाभाविक पक्ष में प्रकृति के भीषण रूप का चित्रण किया गया है । शम्बूक कहता है कि गूँजती हुई कुञ्ज रूपी छोटी कुटी के उल्लुओं के झुंडो के घू-घू की आवाज से भर उठे हुए पोले बांसों की पोरों के भारी रोब से शान्त कौओं के झुण्डवाला यह क्रौञ्च नामक पर्वत है । इसके अन्दर दौड़ते हुए मोरों की केका से परेशान हो उठे हुए क्रूर सर्प पुराने चन्दन के पेड़ की शाखों पर चढ़े चले जा रहे हैं ।[1]

सूक्ष्म -निरीक्षण- भवभूति ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है । उनके प्रकृति-वर्णन में सूक्ष्म-निरीक्षण एवं सौन्दर्य-दृष्टि का सुन्दर विनियोग है । बहुत अन्तराल के बाद राम पुन: पंचवटी के दर्शन करते हैं । कई वर्षों के पश्चात् प्रकृति में परिवर्तन होना स्वाभाविक है और कवि ने इन प्राकृतिक परिवर्तनों का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया है । श्री राम कहते हैं कि पञ्चभूतों का स्थिति प्रकार बदल गया है । बहुत दिनों के बाद इसके परिवर्तनों को देखकर मैं इसे कोई दूसरा ही वन मान लेता किन्तु पर्वतों की स्थिति के कारण यह निश्चित हो गया है कि यह वही वन है -

> पुरा यत्र स्रोत: पुलिनमधुना तत्र सरितां
> विपर्यासं यातो घनविरलभाव: क्षितिरूहाम् ।
> बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
> निवेश: शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ।।[2]

प्रकृति और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध - उत्तररामचरितम् में मानव का

1- उ०च०- 2/29 2- उ०च० - 2/27

प्रकृति के साथ जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है, वो कालिदास की ही परम्परा में है । प्रकृति स्वयं मानवीय रूप धारण कर अवतरित होती है तथा पात्रों की हर प्रकार से सहायता करती है और उनके सुख दुःख में समान रूप से भाग लेती है । वनदेवी वासन्ती, तमसा और मुरला, पृथ्वी, भागीरथी और गोदावरी इन सभी का मानवीय रूप में चित्रण किया गया है । तृतीय अंक के प्रकृति चित्रण में कवि की अनुपम कला का निदर्शन है । प्रकृति और मानव में कोई अन्तर नहीं रह गया है । सीता गंगा की गोद में ही पुत्रों को जन्म देती है । पृथ्वी और गंगा उन्हें सुरक्षित स्थान में पहुँचाकर कुछ बड़े होने के पश्चात् वाल्मीकि जी को समर्पित करती हैं[1] । ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भवभूति की लेखनी से स्पर्श पाकर जड़ प्रकृति चेतन हो उठी है और करूणा तथा सहानुभूति से प्रेरित होकर उनके पात्रों की सहायता में तत्पर हो गई है ।

करिकलभ को सीता अपना पुत्र मानती हैं तथा उसपर आपत्ति आने पर उसकी रक्षा के लिए आर्य पुत्र को पुकारने लगती हैं । पशु, लतिका, वन्य पशुओं की मित्रता का असाधारण चित्र प्रस्तुत किया गया है । सभी उनके सखा-बान्धव हैं -

> यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
> यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
> एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि
> गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ।।[2]

1- उ०च० - पृ० 133 2- उ०च० - 3/8

सघन और घने कैलों के बीच वन में जिस शिलातल पर बैठकर विचरण करने वाले मृगों को सीता नन्हीं नन्हीं घास खिलाया करती थी, आज वह शिलातल उन्हें इतने प्रिय हो गये है कि वे उसे नहीं छोड़ पाते । यहां प्रकृति के माध्यम से करूणा की सृष्टि हो रही है । यहां तक कि राम के पुन: वन में प्रवेश करने से वन देवी वासन्ती स्वयं उनका अभिनन्दन करती है -

ददतु तरव: पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युत:
स्फुटितकमलामोदप्राया: प्रवान्तु वनानिला: ।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठा: क्वणन्तु शकुन्तय:
पुनरिदमयं देवो राम: स्वयं वनमागत: ।।[2]

प्रकृति साध्य तथा साधन रूप में - भवभूति ने साध्य तथा साधन अर्थात् आलम्बन तथा उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण किया है । कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य रूपों का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र उपस्थित किया है । बहते हुए पहाड़ी झरनों का बिम्बग्राही चित्र खींचा है -

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त -
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज -
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्य: ।।[3]

पहाड़ी झरनों के स्वच्छ शीतल जल को तटवर्ती लताओं के फूल झरकर अपने प्रकृत गन्ध से वासित कर रहे हैं और साथ ही उनमें काले पके जामुनों

1- उ0च0 - 3/21   2- उ0च0 - 3/24
3- उ0च0 2/20

के गिरने से टप-टप ध्वनि का सुखद संगीत भी दृष्टिगोचर हो रहा है ।

आलम्बन रूप के साथ साथ कवि ने उद्दीपन रूप का भी चित्रण किया है, जहाँ प्रकृति मानवीय एवं मानवेतर प्राणियों की भावनाओं को उद्दीप्त करती हुई देखी जाती है । द्वितीय और तृतीय अंक में सर्वत्र प्रकृति के मनोरम तथा भयावह वातावरण को देखकर श्रीराम के हृदय में प्रिया के सुख-दुःख की स्मृति जागृत होती है । अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा मुरला द्वारा गोदावरी के पास संदेश भेजती हैं, उस संदेश में प्रकृति द्वारा पुरूष के सहानुभूति की अपेक्षा की गई है ।[1]

उद्दीपन के रूप में कवि ने प्रकृति को प्रस्तुत कर नायक - नायिका के श्रृंगार का वर्णन किया है । गोदावरी के दोनों तटों पर घने वृक्षों से आच्छादित वन हैं । प्रस्रवण पर्वत की गुहाओं में गोदावरी की लहरों का कलकल निनाद प्रतिध्वनित हो रहा है । आकाश में मेघ घुमड़ रहे हैं, वर्षा हो रही है और चारों ओर स्निग्धता और नीलिमा छा गई है - "अयम- विरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनील परिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखरकन्दरः सततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमाजनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम ।"[2]

सप्तम अंक में राम और सीता का मिलन भी प्रकृति के मनोरम-वातावरण में सम्पन्न होता है । भवभूति का प्रकृति वर्णन यथार्थ होने के कारण सर्वथा स्वाभाविक है । ऐसा अनुमान होता है कि प्रकृति के इतने सुन्दर रूप को प्रस्तुत करने की प्रेरणा सम्भवतः उन्हें अपने जन्म-स्थान विदर्भ के वनों से ही मिली होगी । प्रकृति के कोमल

1- कुन्दमाला- 3/2 2- कुन्दमाला- पृ0 47

पक्ष का चित्रण उनकी वैयक्तिक अभिरूचि का परिचायक है । उन्हों ने जैसा देखा, अनुभव किया उसी को अपनी लेखनी द्वारा शब्दों में अंकित कर दिया है । उनके प्रकृति वर्णन में मौलिकता है, नवीनता है तथा सौन्दर्य है ।

कुन्दमाला में प्रकृति वर्णन- प्रकृति प्रेमी कवि भाव-विह्वल होकर प्रकृति के नाना-रूपों का निरीक्षण करता है और अपने भावों की लेखनी से अंकित कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है ।

कुन्दमाला में चतुर्थ अंक तक की कथा प्राकृतिक कथा के मध्य ही घूमती रहती है ।

प्रकृति का रमणीय रूप- आरम्भ में ही सूत्रधार अप्राकृतिक वातावरण से प्राकृतिक वातावरण में प्रवेश की सूचना देता है- लक्ष्मण रामाज्ञा से सीता को वन में छोड़ने जा रहे हैं[1] । जैसे जैसे उनका रथ आगे बढ़ता जाता है प्राकृतिक सौन्दर्य अपनी छटा बिखेरता जाता है । आगे विकसित कमलों वाली गङ्गा और गोमती, ऊँचे ऊँचे वृक्षों वाला नैमिषारण्य सभी आकर्षित करते हैं । गायन एवं वादन से प्रेम करने वाले घोड़े कलहंसों की मधुर ध्वनि सुनकर अत्यन्त वेग से भाग रहे हैं-

> अमी पतद्भिः श्रवणेष्व मन्द्रं विकृष्यमाणाः कलहंस-नादैः
> अनाश्रवाः प्रगह-संयमस्य तुरंगमास् तूर्णतरं प्रयान्ति ।।[2]

गंगा की पावन शीतल पवन का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है

1- कुन्दमाला- 1/3 2- कुन्दमाला- 1/4

तरङ्गा वीजन्ते स-जल कणिकान् शीत-मरुतस्
तथैते सङ्गीतं दधति कलहंसा: कल-गिर: ।
सखी-वच्छायेयं रमयति परिष्वज्य हृदयं,
वनें शून्येऽप्यअस्मिन् परिजन-वतीवाऽत्रभवती ।।[1]

तपोवन में प्रकृति का निखिल सौन्दर्य राम के हृदय को बरबस आनन्दित कर रहा है । तपोवन की प्राकृतिक शोभा का सुन्दर, आकर्षक तथा मनोहर चित्रण किया गया है ।

सुरभि-कुसुम गन्धैर्वासिताशा-मुखानां
फल-भर-नमितानां पादपानां सहस्रै: ।
विरचित-परिवेष-श्यामलोपान्त-रेखो
रमयति हृदयं ते हन्त कच्चिद् वनान्त: ।।[2]

<u>प्रकृति का भयावह रूप</u> - दिङ्नाग ने प्रकृति के कोमल, मधुर एवं सरस भव्य रूप का ही विशेषतया चित्रण किया है । कहीं कहीं भवभूति के प्रकृति चित्रण के समान उन्होंने प्रकृति के भयावह रूप का भी चित्र अंकित किया है किन्तु वह अधिक प्रभावित नहीं करता । दोपहर के समय सूर्य आकाश के मध्य पहुंच जाता है तो वृक्षों की छाया केवल वृक्षों के जड़ में ही रह जाती है किन्तु श्री राम के प्रताप के कारण छाया जड़ों में प्रविष्ट नहीं हो रही है । ग्रीष्मकाल में सूर्य की धूप तेज नहीं है । इस समय हरिणियां भी शंका रहित होकर सिंहों के साथ चर रही हैं । ग्रीष्म काल की मध्याह्न का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है -

मध्याह्नेऽपि न याति गुल्म-निकटं छाया तदध्यासिता ।
व्यक्तं सोऽयम् उपागतो वनम् इदं रामाऽभिधानो हरि: ।[3]

1- कुन्दमाला - 1/7   2- कुन्दमाला- 4/3   3- कुन्दमाला- 3/14

कुन्दमाला में प्रकृति के भयावह रूप का चित्रण तो हुआ है किन्तु सरलता तथा सरसता के कारण वे सभी वर्णन मनोहर लगते हैं। एक अन्य स्थल पर राम कहते हैं-

मध्याह्नार्क-मयूख-तापमधिकं तोयाऽवगाहादयं
नीत्वा वारि-कणार्द्र-कर्णं पवनैर् आह्लादधानाननः ।
मन्दं मन्दमुपैति कूलमधुना वक्षः प्रणुन्नैर् जलैर्
आक्रान्तं कर-घात-झाङ्कृति-सरित्-कल्लोल चक्रः करी[1] ।।

प्रकृति साध्य तथा साधन रूप में - कवि ने आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों में प्रकृति चित्रण किया है । प्रकृति के दर्शन से मानव को आह्लादमयी अनुभूति होती है । तपोवन के प्रति स्नेह व्यक्त करते हुए श्री राम कहते हैं कि नैमिषारण्य में वनों की आग को यज्ञ की आग समझकर, वृक्षों को यज्ञ के यूथ समझकर, पक्षियों की अस्पष्ट ध्वनि को ऋषियों के द्वारा गाये हुए सामवेद के मन्त्रों की ध्वनि समझकर वन में उत्पन्न एवं रहने वाले जंगली मृगादि पशुओं को तपस्वी समझकर आदर कर रहा हूं[2] । वाल्मीकि आश्रम में वाल्मीकि के प्रभाव से जो आकर्षक छवि दिखाई देती है, उस प्रकृति की छवि का दिङ्नाग ने अत्यन्त मनोहारी चित्र अंकित किया है । इस तपोवन में रहते हुए शंकर के सिर में स्थित चन्द्रमा की चांदनी से मिलकर गर्मी की तेज धूप कम गर्म होकर वृक्षों के नवीन पत्तों को मलिन नहीं करती, जलाशयों के जल को नहीं सुखाती और लोगों को कष्ट नहीं देती वरन् लोगों के नेत्रों को प्रकाश

1- कुन्दमाला- 3/17

2- कुन्दमाला- 4/4

ही देती हैं -

> अस्मिन् संनिवसन् महेश्वर-शिरस्ताराऽधिप-ज्योत्स्नया,
> मिश्रीभूय कवोष्णताम् उपगतस् तिग्मो निदाघातपः ।
> न म्लानिं तरुपल्लवेषु सरसां तोयेषु नैव क्षयं ,
> संतापं न जनस्य किन्तु जनयत्यालोक-मात्रं दृशाम् ।।[1]

कुन्द नामक पुष्पों की माला लहरों के मध्य में पड़ी हुई साँपिन के समान लहराती हुई प्रतीत होती हैं । कुन्द पुष्पों[2] की माला को देखकर राम की विरहावस्था उद्दीप्त होती है । श्री राम चित्रकूट के[3] सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अपने श्रृंगारिक दिनों का स्मरण करते हैं । इस प्रकार कवि ने प्रकृति का आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रण किया है ।

कवि ने पशु पक्षियों का मनुष्यों के साथ आत्मीय सम्बन्ध चित्रित किया है ।

> एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य
> हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति ।
> नृत्तं त्यजन्ति शिखिनोऽपि विलोक्य देवीं ।[4]
> तिर्यग्गता वरम् अमी न परं मनुष्याः ।।

मानव के सुख दुःख में प्रकृति सहचरी बनकर पूर्ण योगदान देती है । मनुष्य के दुःख से दुःखित पशु पक्षियों की विरहावस्था का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

<u>तुलनात्मक समीक्षा</u>- उत्तररामचरितम् में प्रथम अंक को छोड़कर अन्य अंकों

1- कुन्दमाला-4/6 2- कुन्दमाला-3/7 3- कुन्दमाला - 4/21
4- कुन्दमाला- 1/18

की कथा प्रकृति के प्रांगण में सम्पन्न होती है, जबकि कुन्दमाला में प्रथम चार अंकों में ही प्रकृति का वर्णन किया गया है । उत्तररामचरितम् में प्रथम अंक का आरम्भ राजभवन से होता है किन्तु चित्रवीथिका के माध्यम से कवि ने प्रथम अंक में भी प्रकृति का सुन्दर तथा मनोहर वर्णन किया है ।

उत्तररामचरितम् में मानव का प्रकृति के साथ जैसा घनिष्ट सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है वैसा कुन्दमाला में नहीं मिलता है । भवभूति ने प्रकृति का मानवीय-करण कर उसे रंगमंच पर अवतरित किया है । पृथ्वी, भागीरथी, तमसा, मुरला, गोदावरी और वनदेवी वासन्ती सभी मानवीय रूप धारण कर नाटक के पात्रों के सुख दुःख में सहायता प्रदान करती है किन्तु दिङ्नाग ने प्रकृति का मानवीय रूप में वर्णन नहीं किया है ।

दोनों ही नाटककारों ने प्रकृति के कोमल और भयावह दोनों ही रूपों का चित्रण किया है । दिङ्नाग की अपेक्षा भवभूति का प्रकृति वर्णन अत्यन्त चित्ताकर्षक है । कुन्दमाला में कथा-चक्र प्रकृति में घूमने पर भी प्रकृति का वर्णन बहुत कम मिलता है और वर्णन सामान्य होने के कारण अधिक प्रभावित भी नहीं कर पाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटकों में प्रकृति का आलम्बन या साध्य रूप में तथा उद्दीपन या साधन, दोनों ही रूपों में वर्णन किया गया है । दोनों ही नाटकों में प्रकृति का मनोरम चित्रण हुआ है, जो सौन्दर्यानुभूति के साथ साथ रसानुभूति कराने में भी सहायक है । यह कहा जा सकता है कि दिङ्नाग के प्रकृति-चित्रण से भवभूति का प्रकृति-चित्रण अधिक प्रभावशाली है ।

अलंकार- "अलंकरोति इति अलंकार:" इस व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार का अर्थ है अलंकृत करने का साधन । जिस प्रकार विविध, आभूषणों से सुसज्जित होकर कामिनी अपने सौन्दर्य को उत्कर्ष प्रदान करती है उसी प्रकार कविता-कामिनी का सौन्दर्य भी अलंकारों द्वारा प्रस्फुटित होता है । अलंकार काव्य के आत्मभूत रस भावादि के उपकारक अर्थात् उसकी उत्कृष्टता के द्योतक है । ये काव्य के अस्थिर धर्म है । आचार्य मम्मट का कथन है- "क्वचित् स्फुरालंकारविरहेऽपि न काव्यत्वहानि:" अर्थात् क्वचित् अलङ्कारों के आभाव में भी काव्य की सत्ता विद्यमान रहती है । क्वचित् का तात्पर्य है कि यूं तो सर्वत्र अलंकार सहित शब्द समूह का काव्य होता है कहीं यदि अलंकार स्पष्ट रूप से प्रतीत न हो और रस की सत्ता विद्यमान हो तो भी काव्यत्व की हानि नहीं होती । इसीलिए रस की भांति अलंकारों को काव्य का स्थिर धर्म नहीं माना गया है ।

रस से रहित अलंकार का काव्य में कोई महत्त्व नहीं होता क्यों कि ये अलंकार रसादि के ही सौन्दर्य के साधन हैं । रस से रहित स्थल में इन्हें अलंकार न मानकर केवल विचित्रता मात्र माना जाता है । आनन्दवर्धन का कथन है कि रस से हीन अलंकार उसी प्रकार काव्य के सौन्दर्य-वर्धन न होकर उक्ति वैचित्र्य मात्र है जिस प्रकार कुरूप स्त्री द्वारा धारण किये गये आभूषण, परन्तु अलंकारवादी कवियों ने अलंकार रहित काव्य की तुलना उष्णता विहीन अग्नि से की है ।

विश्वनाथ ने अलंकार की परिभाषा करते हुए कहा है - शोभा को अतिशय बढ़ाने वाले रसभावादि के उपकारक जो शब्द और अर्थ के

1- काव्यप्रकाश - पृ0 ।।

अस्थिर धर्म है वे बाजुबन्द आदि की तरह अलंकार कहलाते हैं । जैसे- अगंद आदि अलंकार शरीर की शोभा को बढ़ाते हुए शरीरधारी के उपकारक होते हैं, अर्थात् उसकी आत्मा की उत्कृष्टता के बोधक है उसी प्रकार अनुप्रास, उपमा आदि काव्यालंकार काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ की शोभा को बढ़ाते हुए आत्मभूत रस की उत्कृष्टता के सूचक होते हैं ।[1]

काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ के आधार पर ही अलंकारो का विभाजन किया गया है । शब्दपरिवृत्ति असहत्त्व को शब्दालंकार कहते है अर्थात् जहां शब्द विशेष का परिवर्तन करके उसके स्थान पर उसी का पर्यायवाची शब्द रखने से अलंकार की सत्ता नष्ट हो जाती है वह शब्दालंकार कहलाता है जैसे- अनुप्रास, यमक आदि । शब्द परिवृत्ति सहत्त्व को अर्थालंकार कहते हैं अर्थात् जहां शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्यायवाची रखने से भी अलंकार की हानि नहीं होती वहां अर्थालंकार होता है । जैसे उपमा रूपक इत्यादि । जिस अलंकार में कुछ चमत्कार शब्द में और कुछ अर्थ में होता है उसे उभयालंकार कहते हैं जैसे पुनरुक्तवदाभास तथा वक्रोक्ति ।

<u>उत्तररामचरितम्</u>- नाटक में अर्थालंकारो की छटा दर्शनीय है । नाटक में अलंकार सहज व स्वाभाविक ढ़ंग से आविर्भूत हुए हैं । उनकी रचना में उतने ही अलंकारो का प्रयोग है जो स्वत: उनकी रचना के प्रवाह में आ गये है, कवि ने कहीं भी उनको बलात् लाने का प्रयास नहीं किया

1- साहित्यदर्पण- 10/1

शब्दार्थ-योरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन: ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।

है अर्थात् उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक है, कृत्रिम नहीं है । अलंकारों का वैचित्र्य होते हुए भी ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि कवि ने अमुक अलंकार के लिए अमुक घटना या पात्र का सहारा लिया हो । नाटक में कुल अड़तालिस अलंकारों का प्रयोग हुआ है । शब्दालंकारों में उन्होंने अनुप्रास तथा श्लेष अलंकारों का प्रयोग किया है । अर्थालंकारों में उपमा अलंकार उनका सर्वाधिक प्रिय अलंकार है । लगभग चतुर्थांश पद्यों में उपमा अलंकार प्रयुक्त हुआ है । इसके अतिरिक्त गद्य में भी उपमा का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है । भवभूति की यह विशेषता है कि उन्होंने अनेक स्थलों पर मूर्त की तुलना अमूर्त से की है । "उपमासम्राट" कवि कालिदास की रचनाओं में भी यह वैशिष्ट्य अल्प मात्रा में मिलता है । उन्हों ने मूर्त की तुलना मूर्त से की है, जिसमें वे सफल हुए हैं । उपमा अलंकार के पश्चात् कवि ने उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग किया है।

<u>उपमा</u>- एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित वाच्य सादृश्य को "उपमा" अलंकार कहते हैं[1] । भवभूति ने अपने नाटक में उपमाएं सामाजिक जीवन, वनस्पति जीवन, पशु जीवन और भावजगत आदि से ग्रहण की है । नाटक में अनेक स्थलों पर मूर्त की तुलना अमूर्त से की है । मूर्त पृथ्वी और सीता के लिए क्रमशः अमूर्त वाणी और विधा को उपमान बनाया है[2] । उपमा के प्रयोग में भवभूति कुशल दिखाई देते हैं । दुर्मुख के मुख से वाग्वज्र के समान लोकापवाद की बात सुनकर श्री राम सीता के लिए "परगृहवासदूषणं" इस अमूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग करते हैं -

---

1- साहित्यदर्पण- 10/14

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।।

2- उ0च0 4/5

हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।
एतत्तत् पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्[1] ।।

जिसप्रकार पागल कुत्ते के काटने का घाव कुछ उपायों द्वारा ठीक किया जा सकता है, परन्तु अनजाने में ही उसका विष शरीर में फैलता रहता है और अन्त में उसका परिणाम अत्यन्त भयंकर होता है उसीप्रकार सीता का लोकापवाद कुल में फैलता जा रहा है ।

उपमा को अधिक उत्कृष्ट तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने अमूर्त उपमेय की तुलना अनेक स्थलों पर मूर्त उपमान से की है । यथा-तृतीय अंक में राम अपने आन्तरिक दुःख की तुलना आग के धूँए के बादल से करते हैं-

उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम्[2] ।।

सीता के वर्णन में तमसा ने भी इसीप्रकार की सुन्दर उपमा का प्रयोग किया है[3] ।राम कहते हैं कि जिसप्रकार धूप की प्रचण्ड गर्मी फूल को झुलसा देती है उसी प्रकार प्रियतमा का शोक जीवन को सुखा रहा है -

प्रिया-शोको जीवं कुसुमिव घर्मो ग्लपयन्ति[4] ।

कुछ स्थलों पर कवि ने मूर्त उपमेय के लिए मूर्त पदार्थ को ही उपमान बनाया है । सीता लोकापवाद सुनकर उनके परित्याग का निश्चय कर लेने पर श्री राम कहते है-

---

1- उ0च0- 1/40
2- उ0च0- 3/9
3- उ0च0- 3/23
4- उ0च0- 3/30

शैशवात् प्रभृति पोषितां प्रियाम्
सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ।।[1]

यहां राम अपनी तुलना सौनिक से तथा सीता की तुलना गृहशकुन्तिका से करते हैं । तमसा भी राम के स्पर्श से रोमाञ्चित सीता के वर्णन में अत्यन्त सुन्दर उपमा का प्रयोग करती है-

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा ।
मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ।।[2]

भरतवाक्य में भवभूति ने अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान प्रस्तुत किया है । उपमा को अत्यन्त प्रभावोत्पादक और हृदयङ्गम बनाने के लिए कवि ने प्रकृति का भी सहारा लिया है । जैसे- पूर्व परिचित स्थलों को देखकर राम के अन्तःकरण का दुःख उसीप्रकार प्रकट होने लगता है जिसप्रकार बालू के बांध को भीतर ही भीतर काटकर अत्यधिक वेगवाली जलराशि फैलने लगती है[3] । अरून्धती भी लव के मुख की तुलना नीलकमल की पंखुडियों से करते हुए कहती हैं-

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो[4] ।

अन्य भी अनेक सुन्दर उपमाएं नाटक में हैं । इसप्रकार कवि ने मूर्त की अमूर्त से, मूर्त की मूर्त से, अमूर्त की मूर्त से तुलना अनेक स्थलों पर की है ।

1- उ0च0- 1/45
2- उ0च0- 3/42
3- उ0च0 - 3/36
4- उ0च0- 4/19

उत्प्रेक्षा- किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रूप में सम्भावना करने को "उत्प्रेक्षा" अलंकार कहते हैं।[1]

उत्तररामचरितम् में अनेक सुन्दर सुन्दर उत्प्रेक्षाओं की प्रचुरता है। ये उत्प्रेक्षायें कवि की प्रतिभा को द्योतित करती है। द्वितीय अंक में वासन्ती ने द्रुमों के कुसुमावपात से गोदावरी की अर्चना की उत्प्रेक्षा की है।

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभि-
र्घर्मस्रंसितवन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः ॥[2]

अनेक स्थलों पर राम अपने सुख-दुख की अभिव्यक्ति के लिए उत्प्रेक्षा का ही आश्रय लेते हैं। सीता के स्पर्श से उत्पन्न आनन्द के वर्णन में उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हुए श्री राम कहते हैं-

आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै-
रन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून् ।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मा-
दानन्दादपरमिवादधाति मोहम् ॥[3]

सीता के असह्य विरह में व्याकुल राम की दशा अत्यन्त दयनीय प्रतीत होती है। उत्प्रेक्षा द्वारा ही राम अपने विरह व्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं-

---

1- साहित्यदर्पण - 10/40.
भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।

2- उ०च०- 2/9

3- उ०च०- 3/39

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरल-ज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ।।[1]

एक अन्य स्थल पर भी राम अपनी हृदय की मार्मिक वेदना को व्यक्त करते हैं कि पत्नी के न रह जाने पर संसार एक सूखा जंगल बन गया है -

जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रेऽप्युपरते ।
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ।।[2]

लव को देखकर राम को उसके रूप में अदम्य तेज दिखायी देता है[3]। लव को देखकर अरून्धती को ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उनके नयनों में अमृताञ्जन लगा दिया हो[4]।

उत्प्रेक्षा तथा उपमाओं के प्रयोग में भवभूति महारथी हैं। वे अपनी इच्छानुसार एक ही पद्य में एक अथवा अनेक उत्प्रेक्षाओं का सफल प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। प्रसंग के अनुसार ही भवभूति की उत्प्रेक्षा कहीं अत्यन्त करूण तो कहीं अत्यन्त भयंकर हो जाती है। जहाँ एक ओर तमसा अत्यन्त कारूण्य पूर्ण उत्प्रेक्षा कहती है-" करूणस्य मूर्तिरथवा शरीरणी विरह-व्यथैव वनमेति जानकी[5] "। वहीं दूसरी ओर अत्यन्त भयंकर उत्प्रेक्षा का प्रयोग चन्द्रकेतु द्वारा करवाया है कि प्रत्यञ्चा की ध्वनि को दुन्दुभि के गम्भीर शब्द से दोगुना बढ़ाते हुए यह वीर पुरूष लुढ़कते

1- उ0च0 3/38 2- उ0च0- 6/38 3- उ0च0- 6/9
4- उ0च0- 4/19 5- उ0च0- 3/4

हुए डरावने रूण्डों के समूहों से मानों पृथ्वी को प्यासे काल के भीषण मुख से गिरी जूठन से पाटे दे रहा है -

वेल्लद्भैरवरूण्डखण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं ।
तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव ।।[1]

<u>अर्थान्तरन्यास</u>- जहां विशेष से सामान्य या सामान्य से विशेष अथवा कारण से कार्य या कार्य से कारण साधर्म्य या वैधर्म्य के द्वारा समर्थित होता है उसे "अर्थान्तरन्यास"अलंकार कहते हैं । यह उक्त रीति से चार प्रकार के तथा साधर्म्य और वैधर्म्य के भेद से आठ प्रकार का होता है ।[2]

नाटक में अर्थान्तरन्यास अत्यन्त सुन्दर तथा लोकप्रिय है । लोकप्रियता के कारण ही उनके अर्थान्तरन्यासों के अनेक अंश सूक्तियों के रूप में प्रचलित हो गये हैं-

" सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति"- उ०च० 2/11
" पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति" । उ०च० 4/12

जनक के विदा से खिन्न सीता को राम आश्वस्त करते हुए कहते हैं-

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनाम् प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।।[3]

धार्मिक अनुष्ठानों की अनिवार्यता स्वतन्त्रता को दूर कर देती है इसी से अग्न्याधान करने वालों को गृहस्थी विघ्नों के कारण कष्टमयी हो उठती है । यहां पूर्वार्द्ध की बात का उत्तरार्द्ध की पंक्ति से समर्थन किया

1- उ०च०- 5/6
2- साहित्यदर्पण- 10/61,62
सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि ।
कार्यञ्च कारणेनेदं, कार्येण च समर्थ्यते ।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः ।।"
3- उ०च० - 1/8

गया है ।

राम अपने पूर्व दिनों का स्मरण करके अर्थान्तरन्यास का प्रयोग करते हुए कहते है -

न किञ्चिदपि कुर्वाण: सौख्यैर्दु:खान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जन: ।।[1]

लव भी सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन करते हुए कहता है -

विना सीतादेव्या किमिव हि न दुखं रघुपते: ।
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ।।[2]

रूपक- निषेधरहित विषय उपमेय में रूपित उपमान के आरोप को "रूपक" अलंकार कहते हैं । यह परम्परित, सांग और निरंग तीन प्रकार का होता है ।[3]

चित्रदर्शन से परिश्रान्त जब सीता अपने पति की गोद में सिर रखकर सो जाती है तब राम निर्निमेष दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए एक ही पद्य में चार रूपकों का प्रयोग करते हैं -

इयं गेहे लक्ष्मी रियममृतवर्तिर्नयनयो -
रसावस्या: स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस: ।
अयं बाहु: कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसर:
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरह: ।।[4]

1- उ0च0- 2/19 2- उ0च0 - 6/30
3- रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे ।
तत्परम्परितं सांगं निरंगमिति च त्रिधा ।। साहित्यदर्पण- 10/28
4- उ0च0 - 1/38

प्रकृति के कठोर दृश्यों में भी कवि ने रूपक का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है[1]।

तृतीय अंक में वासन्ती के उपालम्भ में तो कवि ने एक पद्य के दो चरणों में ही चार रूपकों का प्रयोग कर दिया है -

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे[2] ।।

तुम ही मेरा जीवन हो, तुम दूसरा हृदय हो, तुम आँखों के लिए चाँदनी हो, तुम ही अङ्ग पर सुधा हो ।

" क्षत्रस्य शस्त्रशिखिन: शममद्य यान्तु " ।।

अर्थात् क्षत्रियों की शस्त्राग्नि आज ठण्डी पड़ जाय । इसके अतिरिक्त अनेक पद्यों में कवि ने रूपक का सुन्दर प्रयोग किया है ।

<u>स्वभावोक्ति</u> - बच्चों की चेष्टाएं या स्वरूप के वर्णन को "स्वभावोक्ति" अलंकार कहते हैं[3]। प्रथम अंक में ही राम कहते हैं-

जनकानां रघूणाञ्च सम्बन्ध: कस्य न प्रिय: ।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दन:[4] ।।

आश्रम बालक अश्व का स्वभाविक वर्णन करते हुए कहते हैं-

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीव: स भवति खुरास्तस्य चत्वारएव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान् ।[5]
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि याम: ।।

1- उ0च0 - 1/29 2- उ0च0 - 3/26
3- साहित्यदर्पण - 10/93
स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।
4- उ0च0 - 1/17 5- उ0च0-4/26

जनक जानकी की बाल्यावस्था का स्मरण कर उनके वदन-कमल का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक रूप से करते हैं-

> अनियतरुदितस्मितं विराज-
> त्कतिपयकोमल-दन्तकुड्मलाग्रम ।
> वदनकमलकं शिशोः स्मरामि
> स्खलदसमञ्जसमञ्जु जल्पितं ते ।।[1]

तुल्योगिता- केवल प्रस्तुत (प्रकरण) अथवा अप्रस्तुत पदार्थों में एक धर्म का आरोप यदि हो तो तुल्योगिता अलंकार होता है[2]। लव को देखकर जनक कहते हैं कि इस बच्चे में बेटी जानकी तथा रघुकुलधुरन्धर का सम्बन्ध प्रतिबिम्बित सा हो उठा है ।

> वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते
> संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः ।
> सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ
> हा हा देवि किमुत्पथैर्मम मनः परिप्लवं धावति ।।[3]

राम के प्रति पृथ्वी के इस उपालम्भ में भी तुल्योगिता का प्रयोग द्रष्टव्य है -

> न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
> नाहं न जनको नाग्निर्न तु वृत्तिर्न सन्ततिः ।।[4]

1- उ०च० 4/4

2- साहित्य-दर्पण - 10/48

> पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत् ।
> एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्योगिता ।।

3- उ०च० - 4/22

4- उ०च० - 7/5

व्यतिरेक- जहाँ उपमान से उपमेय का आधिक्य अथवा उपमान से उपमेय की न्यूनता प्रदर्शित हो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है ।[1]

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।।[2]

सांसारिक सज्जनों की वाणी अर्थ के पीछे पीछे लगी रहती है परन्तु आदिकालीन ऋषियों की वाणी के पीछे पीछे अर्थ ही भागा करता है । यहाँ उपमान सज्जनों की वाणी से उपमेय ऋषियों की वाणी के आधिक्य का वर्णन है ।

इसके अतिरिक्त कवि ने अर्थालंकारों में श्लेष, उदात्त, दीपक, यमक, दृष्टान्त, विभावना, सन्देह, प्रतिवस्तूपमा, आक्षेप, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । शब्दालंकारों में कवि ने अनुप्रास का प्रयोग अधिक किया है । श्लेष का प्रयोग भवभूति ने बहुत कम स्थानों पर किया है, परन्तु श्लेष के वे स्थल बहुत चमत्कार पूर्ण है । यमक का प्रयोग कवि ने नहीं किया है ।

अनुप्रास- स्वर की विषमता रहने पर शब्द अर्थात् पद, पदांश के सादृश्य को "अनुप्रास" कहते हैं । स्वरों की समानता न होने पर भी जहाँ एक से अनेक व्यंजन मिल जाते हैं वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है ।[3]

कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुला: कूले कुलायद्रुमा: ।।[4]

यहाँ "क" शब्द की आवृति बार बार हुयी है । इसके अतिरिक्त नाटक में अन्य स्थानों पर भी अनुप्रास की तथा अन्य अलंकारों की छटा दृष्टिगोचर

1- साहित्यदर्पण- 10/52 आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा व्यतिरेक:
2- उ0च0- 1/10
3- साहित्यदर्पण- 10/3 अनुप्रास: शब्द साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।।
4- उ0च0- 2/9

होती है ।

कुन्दमाला- कुन्दमाला नाटक में भी शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । कवि ने उनके लिए किसी प्रकार का प्रयास नहीं किया है, इसलिए कहीं पर भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती । नाटक में अलंकारों का प्रयोग सहज व स्वाभाविक है । दिङ्नाग ने कुन्दमाला में प्रायः प्रसिद्ध अलंकारों का ही प्रयोग किया है । अनेक रचनाओं के समान कुन्दमाला में भी अनुप्रास, उपमा एवं रूपक की छटा पग-पग पर दिखाई देती है । शब्दालंकारों में दिङ्नाग ने केवल अनुप्रास का ही प्रयोग किया है । अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, दीपक, अर्थान्तरन्यास, विभावना, विषम, उल्लेख, स्मरण, भ्रान्तिमान, सन्देह आदि अलंकार कुन्दमाला नाटक की शोभा बढ़ा रहे हैं । दिङ्नाग का भी प्रिय अलंकार उपमा है इसीलिए इसका नाटक में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है ।

उपमा- भवभूति ने अपने नाटक में उपमाएं प्रकृति-जगत तथा सामाजिक जीवन से ग्रहण की है । जबकि दिङ्नाग ने केवल प्रकृति को उपमान बनाया है । कवि ने सुन्दर-सुन्दर उपमाओं से अपने काव्य को सुशोभित किया है । जैसे -

तरङ्गा वीजन्ते स-जल-कणिकान् शीत-मरुतस्,
तथैते संगीतं दधति कलहंसाः कल-गिरः ।
सखी-वच्छायेयं रमयति परिष्वज्य हृदयं,
वने शून्येऽप्यस्मिन् परिजन-वतीवाऽत्रभवती ।।[1]

वृक्ष लता आदि की छाया हृदय को स्पर्श करती हुई सखियों के समान आपको आनन्दित कर रही है ।

1- कुन्दमाला- 1/7

इयम् अपि कुरुते तरङ्ग-मध्ये,
भुजग-वधु-ललितानि कुन्द-माला ।।[1]

कुन्दनामक पुष्पों की माला लहरों के मध्य में पड़ी हुई सांपिन के समान लहराती हुई प्रतीत हो रही है ।

श्री राम सीता के विरह में अत्यन्त दुःखी हैं । कवि ने उनके विरह की तुलना ओस की बूंद से की है । जिसप्रकार ओस की बूंद वन को आग से सूख जाती है उसी प्रकार मैं सीता के विरह में सूखा जा रहा हूँ ।[2]

ज्योतिः सद् आभ्यान्तरम् आप्त-पादैर्
अदीपितं नाऽर्थगतं व्यनक्ति ।
नाऽलं हि तेजोऽप्यू अनलाऽभिधानं
स्व - कर्मणो मारुतम् अन्तरेण ।।[3]

जिस प्रकार ज्ञान रूपी ज्योति श्रेष्ठ पुरुष की प्रेरणा के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रकट नहीं करती है उसी प्रकार अग्नि वायु की सहायता के बिना ठीक से प्रज्ज्वलित नहीं होती । इसके अतिरिक्त नाटक में अन्य सुन्दर उपमाएं भी हैं ।

उत्प्रेक्षा- आर्य लक्ष्मण को सीता परित्याग के विषय में ज्ञात होने पर इतना कष्ट होता है कि मानो किसी ने घाव पर नमक छिड़क दिया हो-

इदं संदेशम् आकर्ण्य क्षते क्षारम् इवाहितम् ।[4]

1- कुन्दमाला- 3/7
2- कुन्दमाला- पृ0 183
3- कुन्दमाला- 5/8
4- कुन्दमाला- 1/16

नाद: पाताल-मूलात् प्रभवति तुमुलं पूरयन् व्योम-रन्ध्रं
पातक्लिष्टा इवैते दिशि गिरयो मन्द-मन्दाशु चरन्ति ।
बद्धाऽऽनन्दा: समन्तात् लवण-जलधयो मथ्यमाना इवासन्
सीमाल्लङ्घ्य वेगादुद-निधि-सलिलै: स्वानि वेला-वनानि [1] ।।

पृथ्वी के प्रकट होते समय ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो लवण सागर चारों ओर से मथे जाते हुए समुद्र के जलों से अपने किनारे रत्नों को छोड़कर सीमा का अतिक्रमण करके आनन्दित हो रहा है । इसी प्रकार अन्य उपमाएं भी दर्शनीय है ।

अर्थान्तरन्यास- नरपतिर् अधिक-प्रवृद्ध-तेजा
गुण-निहितै: सचिवैर् निवारणीय: ।
भुवनम् अभिपतन् सहस्र -रश्मिर्
जल गुरुभिर् व्यवधीयते हि मेघै: [2] ।।

उक्त पद्य में पूर्वार्ध समर्थ्य वाक्य का उत्तरार्ध वाक्य के द्वारा समर्थन किया गया है । अत: यहां अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

दृष्टान्त- दो वाक्यों में धर्मसहित,"वस्तु" अर्थात् उपमानोपमेय के प्रतिबिम्बन को दृष्टान्त अलंकार कहते हैं [3] ।

आपात-मात्रेण कयाऽपि युक्त्या
संबन्धिन: संनमयन्ति चेत: ।
विमृश्य किं दोष-गुणाऽनभिज्ञश्
चन्द्रोदये श्च्योतति चन्द्रकान्त: [4] ।।

1- कुन्दमाला- 6/24 2- कुन्दमाला- 5/7
3- साहित्यदर्पण- 10/50
दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन: प्रतिबिम्बनम् ।
4- कुन्दमाला- 5/10

लव और कुश को देखकर स्वभावतः ही श्री राम का हृदय स्नेह से द्रवीभूत हो जाता है और वे कहते हैं कि इसमें आश्चर्य ही क्या है, चन्द्रोदय होने पर दोषगुण से अनभिज्ञ चन्द्रकान्त मणि द्रवित हो ही जाती है। यहाँ पर पूर्वार्ध में "संनमयन्ति" तथा उत्तरार्ध में "श्च्योतति" के द्वारा द्रवित होने की बात कही गयी है। अतः पूर्वार्ध बिम्ब रूप में है और उत्तरार्ध प्रतिबिम्ब रूप में। निम्न प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण उक्त स्थल पर दृष्टान्त अलंकार है।

दीपक- जहाँ अप्रस्तुत और प्रस्तुत पदार्थों में एक धर्म का सम्बन्ध हो अथवा अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो वहाँ दीपक अलंकार होता है।[1]

बहुत अन्तराल के पश्चात् सीता राम को देखती है। कवि ने उनके मन में उत्पन्न अनेक भावों को दीपक अलंकार के माध्यम से ही व्यक्त किया है - "हहो दृष्ट इति परितोषः, चिरप्रवास इति मन्युः, परिश्राम इत्य् उद्वेग, निरनुक्रोशः इत्य् अभिमानः, चिरपरिचित इति अनुरागः, दर्शनीय इत्य् उत्कण्ठा, स्वामी इति बहुमानः, कुश लवयोस् तात इति कुटुम्बिनी-सद्भावः, अपराधं प्रवेशिताऽस्मि इति लज्जा। न जानामि आर्यपुत्र-दर्शनेन कीदृशीम् अवस्थाम् अनुभवामीति[2]"

इसके अतिरिक्त कवि ने सन्देह, भ्रान्तिमान्, उल्लेख, विषम, विभावना आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में केवल अनुप्रास अलंकार ही कहीं कहीं प्रयुक्त हुआ है।

1- साहित्यदर्पण- 10/49
   अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
   अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्॥

2- कुन्दमाला- पृ0 101

अनुप्रास- नाटक में यत्र तत्र अनुप्रास अलंकारों की छटा अत्यन्त मनोरम है ।

जम्भारि-मौलि-मन्दार-मालिका-मधु-चुम्बिन: ।
पिबेयुर् अन्तरायाब्धिं हेरम्ब-पद-पांसव: ।।[1]

उक्त पद्य में प्रथम तथा द्वितीय चरण में "मकार" की अनेक बार आवृत्ति हुई है । इसलिए यहाँ अनुप्रास अलंकार है । इसके अतिरिक्त अनेक स्थल अनुप्रास की दृष्टि से रमणीय है ।

इसके अतिरिक्त दिङ्नाग ने विभावना, विषम, उल्लेख, सहोक्ति, स्मरण, भ्रान्तिमान सन्देह आदि अर्थालंकारों का भी प्रयोग किया है । शब्दालंकारों का तो प्रयोग नहीं के बराबर है, केवल अनुप्रास की छटा ही यत्र तत्र देखी जाती है । दोनों ही नाटककारों ने उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है किन्तु दिङ्नाग की अपेक्षा भवभूति के अलंकार अत्यन्त उत्कृष्ट और सुन्दर है । दोनों ही नाटकों में अलंकारों का समुचित एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

अतएव यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि भवभूति तथा दिङ्नाग दोनों ने ही अलंकारों का समुचित प्रयोग अपनी अपनी रचनाओं में किया है । अलंकार प्रयोग रस निर्वाह में बाधक नहीं अपितु साधक है । अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग ने उनकी रचनाओं को अलंकृत कर दिया है, बोझिल नहीं होने दिया है । अलंकारों के अनावश्यक बोझ से कहीं भी कथा प्रवाह में अस्वाभाविकता के दर्शन नहीं होते हैं ।

बिम्ब विधान- जिसप्रकार छन्द, अलंकार काव्य के आवश्यक तत्त्व है

1- कुन्दमाला- 1/1

उसी प्रकार बिम्ब या मूर्त विधान भी काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। साधारणत: बिम्ब शब्द का प्रयोग अनुकृति, छाया, प्रतिबिम्ब, प्रतिच्छाया आदि अर्थों में किया जाता है। बिम्ब के द्वारा ही कवि अपने मन की सुप्त या अमूर्त भावनाओं या विचारों को मूर्त रूप देकर प्रेषणीयता प्रदान करता है। सहृदय संवेदन-शील व्यक्ति काव्य के माध्यम से ही अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचाता है। वे अपनी कल्पनाओं से अमूर्त विचारों को प्रेषणीय बनाने के लिए प्रभावोत्पादक एवं सौन्दर्यमय बिम्बों का चयन करता है। उन कल्पनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने की शक्ति कुछ ही प्रतिभावान् व्यक्तियों में होती है।

बिम्ब काव्य का एक ऐसा गुण है जो देश काल की सीमाओं से रहित है[1]। कवि अपने जीवन एवं जगत के जिन अनुभवों एवं प्राकृतिक सुषमाओं का कल्पना के माध्यम से अपने मानसपटल पर अंकन करता है, उन्हीं अनुभूतियों को अपनी प्रतिभा से एक नवीन आकार एवं नये रूप में परिवर्तित कर देता है और अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों द्वारा अभिव्यक्त करता है। कल्पना से उद्भूत प्रतिभा से सौन्दर्यप्रदत्त एवं भाषा से प्रेषणीय बने चित्र ही "बिम्ब" कहलाते हैं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि बिम्ब मानव मन की पूर्वानुभूतियों के आधार पर कल्पना शक्ति द्वारा निर्मित नवीन रूप योजना है, जिसमें ऐन्द्रियता की प्रधानता होती है। आवेग, संवेदना, अनुभूति, कल्पना, भावना एवं सौन्दर्य बोध आदि इसके मूलभूत प्राणतत्त्व है[2]। बिम्ब को रूपायित करने के लिए शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों-उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा

1- काव्यबिम्ब- स्वरूप और संरचना- पृ0 6
2- काव्यबिम्ब- स्वरूप और संरचना- पृ0 24

आदि की आवश्यकता पड़ती है ।

बिम्बों में यथार्थता, संवेदनशीलता, प्रभावोत्पादकता आदि अनेक गुण पाये जाते हैं । जिनके परिप्रेक्ष्य में हम उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला में प्राप्त बिम्बों को प्रस्तुत करेगें ।

उत्तररामचरितम्- संवेदन शीलता काव्य का प्रधान गुण है ।[1] बिम्ब ही कवि के हृदयगत भावों को बुद्ध एवं उद्दीप्त कर उन्हें संवेदनीय बनाते हैं । प्रस्तुत बिम्ब में कवि ने उपमा के माध्यम से स्त्रियों के "परगृहवास" का अत्यन्त सटीक वर्णन किया है । सीता के परगृहवास का दोष आज पागल कुत्ते के जहर की तरह कुल में फैल रहा है ।

हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्
वैदेह्या: प्रशमितमद्भुतैरुपायै: ।
एतत्तत् पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्वत: प्रसक्तम् ।।

पागल कुत्ता जब किसी व्यक्ति को काटता है तो उसके घाव को कुछ उपायों द्वारा ठीक किया जा सकता है, किन्तु अनजाने ही उसका विष शरीर में फैलता रहता है और कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् उसका परिणाम अत्यन्त भयंकर हो जाता है । यह बिम्ब भावपूर्ण और संवेदनीय है

कवि ने मणि तथा मिट्टी के माध्यम से एक बुद्धिमान तथा बुद्धिहीन विद्यार्थी का वर्णन किया है । यह बिम्ब सजीव तथा चित्ताकर्षक है और यथार्थ का बोध कराने में सक्षम है ।

1- उ0च0 1/40

वितरति गुरू: प्राज्ञे विद्यां यथा तथैव जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति हि पुनर्भूयान्भेद: फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादय: ।।[1]

यह सत्य है कि शिक्षक सभी विद्यार्थियों को समान रूप से विद्या वितरित करता है । कवि ने बुद्धिमान विद्यार्थी की तुलना स्वच्छमणि से तथा बुद्धिहीन विद्यार्थी की तुलना मिट्टी से की है । दोनों के स्वभाव में साम्य है क्यों कि स्वच्छमणि प्रतिबिम्ब को तथा बुद्धिमान विद्यार्थी विद्या को ग्रहण करने में समर्थ होता है और मिट्टी और बुद्धिहीन व्यक्ति क्रमश: प्रतिबिम्ब और विद्या को ग्रहण करने में सक्षम नहीं होते । इस प्रकार कवि ने यथार्थ जीवन का स्पष्ट चित्र पाठक के सामने बिम्ब द्वारा अंकित किया है ।

बिम्बों की अभिव्यंजना में मौलिकता एवं नवीनता का होना आवश्यक है । नवीनता के साथ साथ बिम्बों का परिचित होना भी आवश्यक होता है क्यों कि वे ही बिम्ब अधिक हृदयसंवेद्य और बोध्य होते है । भवभूति ने अपने नाटक में प्रयुक्त बिम्बों को अपनी कल्पना द्वारा नवीनता एवं मौलिकता प्रदान की है । संसार में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि दु:ख में रो लेने से मन हल्का हो जाता है ।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाह: प्रतिक्रिया ।[2]
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरवधार्यते ।।

1- उ0च0- 2/4
2- उ0च0- 3/29

अर्थात् जिसप्रकार तालाब में बाढ़ के आ जाने से उस जल को निकाल देना ही अच्छा होता है उसी प्रकार शोक के कारण क्षुब्ध होने पर क्रन्दन से ही हृदय शान्त होता है ।

उपर्युक्त बिम्ब योजना को देखने से यह प्रतीत होता है कि इनके बिम्ब मानवीय जगत तथा प्रकृति जगत से अधिक सम्बन्धित है ।

<u>कुन्दमाला</u>- प्रस्तुत बिम्ब में कवि ने अर्थान्तरन्यास के माध्यम से मंत्रियों के लिए क्या उचित है और क्या अनुचित है - इसका सटीक वर्णन किया है । राजा की हर प्रकार से रक्षा करना मंत्रियों का धर्म होता है । यदि राजा क्रोधी हो तब भी मंत्रियों को उसे सन्मार्ग ही दिखाना चाहिए

नरपतिर् अधिक-प्रवृद्ध-तेजा
गुण-निहितैः सचिवैर् निवारणीयः ।
भुवनम् अभितपन् सहस्र -रश्मिर्
जल गुरुभिर् व्यवधीयते हि मेघैः ।।[1]

अर्थात् गुणों की रक्षा करने में तत्पर मन्त्रियों के लिए यही उचित होता है कि वे अत्यन्त क्रोधी एवं उग्र शासन करने वाले राजा को रोके क्यों कि लोक की रक्षा करने के लिए मेघ सूर्य की प्रचण्डता में कुछ क्षण के लिए व्यवधान ला ही देता है ।

प्रकृति-जगत से सम्बन्धित बिम्ब ही कुन्दमाला में देखे जाते हैं । कवि ने प्रकृति के माध्यम से विरहिणी स्त्रियों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है । सूर्य के अस्त होने के साथ-साथ जैसे कमल की पंखुड़िया

1- कुन्दमाला- 5/7

संकुचित होने लगती है वैसे ही विरहिणी स्त्रियाँ अपने प्रियतम के लौटने के अवधि के दिनों की गणना में लगी हुई है ।

प्रिय-जन-रहितानामङ्गुलीभिर् वधूनाम्,
अवधि-दिवस-संख्या-व्यापृताभिः सहैव ।
व्रजति किरण-मालिन्यस्तम् एकैकशोऽस्मिन्
सरस-कमल-पत्र-श्रेण्यः संकुचन्ति[1] ।।

बिम्बों में अभिव्यंजना की नवीनता का होना आवश्यक है । दिङ्नाग ने प्रकृति को आधार बनाकर ही अपनी भावाभिव्यक्ति नये रूपों में प्रकट की है । सीता की शुद्धता प्रमाणित हो जाने के पश्चात् सभी प्रजाजन कहते हैं कि सीता लोकनिन्दारूपी मेघों से ढक गई थी । स्वभाव से पवित्र सीता उसी प्रकार शुद्ध हो गई है जिस प्रकार बादलों से आच्छादित चाँदनी शरद ऋतु के द्वारा साफ कर दी जाती है ।

या स्वयं प्रकृति-निर्मला सती
छाद्यतेऽन्य-जनवाद-वारिदैः ।
जानकी भगवति त्वयाऽद्य सा
चन्द्रिकेव शरदा विशोधिता[2] ।।

उपर्युक्त बिम्ब योजना को देखने से यह प्रतीत होता है कि दिङ्नाग के बिम्ब मानवीय जगत के न होकर प्रकृति जगत से अधिक सम्बद्ध हैं जब कि भवभूति के बिम्ब प्रकृति जगत के अतिरिक्त मानवीय जगत से भी सम्बन्ध रखते हैं । दोनों ही नाटककारों के ये बिम्ब बड़ी

1- कुन्दमाला- 4/24
2- कुन्दमाला- 6/37

कुशलता के साथ कवि के अभीष्ट कथ्य को व्यंजित करते हैं, साथ ही मानवीय अनुभूतियों के सटीक और स्वाभाविक चित्रण के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करते हैं ।

छन्द- पद्य काव्यों की रचना मात्रा, वर्ण, यति, गति, चरण और गण के नियमों से बँधी रहती है, काव्य का यही बन्धन "छन्द" कहलाता है । साहित्यशास्त्र में छन्दों का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, और ज्योतिष छः वेदांगों में छन्द को वेद का पाद या चरण "छन्दः पादौ तु वेदस्य" कहा गया है । वेद के अध्ययन के लिए छन्दों का ज्ञान होना आवश्यक है । छन्द के बिना वेद का सौन्दर्य उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सर्वगुण सम्पन्न पंगु व्यक्ति का । वेद में छन्दों की सत्ता अनिवार्य है परन्तु लौकिक साहित्य में भी छन्दों का प्रयोग बहुलता से किया गया है । वहीं रचना सुन्दर मानी जाती है जो छन्दोबद्ध हो ।

यह अत्यन्त रोचक बात है कि प्रत्येक छन्द का अपना एक मनोविज्ञान होता है, कुछ विशिष्ट छन्द कुछ विशिष्ट मनः स्थितियों को द्योतित करने में विशेष समर्थ होते हैं । छन्दों की लय तथा गति, यति उनकी विभिन्न भावों की व्यंजना में सहायिका होती है तथा उस विशिष्ट लय, गति और यति के साथ प्रयुक्त शब्द भी विशिष्ट मनः स्थितियों को द्योतित करने में अधिक सक्षम होते हैं । उदाहरण के लिए मन्दाक्रान्ता और वसन्ततिलका जैसे छन्द श्रृंगारिक मनोभावों को बड़ी ही सुन्दरता के साथ प्रकट करते हैं, मालिनी छन्द की ध्वनि ही विशेष रूप से विप्रलम्भ श्रृंगार और करूण रस की मनः स्थितियों को व्यक्त करती है, इसीप्रकार शिखरणी शान्त रस के अत्यन्त अनुकूल है, शार्दूलविक्रीडित

एवं स्रग्धरा अपनी गरिमा और सहज ओजमयी ध्वनि के कारण ओजो गुणमयी स्थितियों को अभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है, द्रुतविलम्बित अपनी आन्दोलित गति के कारण एक अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि विभिन्न छन्द अपनी लय और ध्वनि के कारण विशिष्ट मन: स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए अधिक और कम उपयोगी हुआ करते हैं । इसीलिए उनका प्रयोग करने वाले की कुशलता इस बात में निहित है कि वह छन्दों की प्रकृति को पहचानकर अवसरानुकूल और भावानुकूल छन्दों का प्रयोग करे ।

उत्तररामचरितम् में भवभूति ने उन्नीस छन्दों का प्रयोग किया है । उत्तररामचरितम् में नब्बे पद्यों की रचना अनुष्टुप छन्द में की गई है । नाटक में कुल 256 पद्य है जिसमें तृतीयांश की रचना अनुष्टुप छन्द में हुई है । अनुष्टुप के पश्चात् सबसे अधिक संख्या शिखरणी की है ।शिखरणी करूण, वीर तथा श्रृंगार के लिए उपयुक्त है अत: महाकवि भवभूति ने इन तीनों रसों में शिखरणी की छटा बिखेरी है । शर्दूलविक्रीडित भी वीर रस के लिए उचित माना गया है इसलिए नाटक में शिखरणी के बाद शार्दूलविक्रीडित का ही प्रयोग किया गया है । मन्दाक्रान्ता का प्रयोग करूण तथा विप्रलम्भ श्रृंगार में उचित माना गया है इसलिए नाटक के तृतीय अंक में तृतीयांश पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द के है । वसन्ततिलका की उपयुक्तता नायिका-वर्णन में मानी गई है । उत्तररामचरितम् में प्रथम तथा तृतीय अंकों के अधिकांश पद्य वसन्ततिलका छन्द में रचित है क्यों कि इन अंकों में सीता उपस्थित है । इस प्रकार भवभूति ने छन्दों के चयन में नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं का विशेष ध्यान रखा है । नाटकों में छन्दों का विवरण इस प्रकार है ।

अनुष्टुप- अनुष्टूप के प्रत्येक चरण में छठा वर्ण गुरू और पाँचवा लघु होता है, दूसरे और चौथे पाद में सातवा वर्ण लघु होता है पहले और तीसरे पाद में गुरू हो परन्तु अनुष्टुप के सभी भेदों में दूसरे और चौथे चरण में सातवा वर्ण लघु रहे और शेष चरणों में चाहे गुरू रहे या लघु यह आवश्यक नहीं है किन्तु यह आवश्यक है कि सभी भेदों में पाँचवा वर्ण लघु और छठा वर्ण गुरू हो[1]।

स्नेहं दयां च, सौख्यं च यदि वा जानकीमपि
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।। 1/12

अनुष्टुप छन्द में कवि ने नब्बे (90) पद्यों की रचना की है।[2]

शिखरणी- जिस पद्य में प्रत्येक चरण में क्रम से यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरू हो, उसे "शिखरणी" छन्द कहते हैं। इसके छः और ग्यारह वर्णों में यति होती है[3]।

1- वृत्तरत्नाकरम् - 2/21

श्लोके षष्ठं गुरू ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्हस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।

2- उ0च0- 1/1, 2, 3, 4, 5, 6, 8, 10, 12, 13, 16, 17, 19, 21, 22, 32, 41, 43, 46, 47, 48, 50, 51, 2/5, 7, 8, 12, 15, 17, 18, 19, 24, 3/1, 3, 7, 9, 10, 14, 17, 29, 33, 34, 46, 4/2, 7, 9, 24, 27, 29, 5/7, 15, 17, 20, 21, 22, 23, 25, 29, 31, 6/2, 3, 5, 6, 10, 20, 21, 23, 29, 31, 32, 34, 36, 42, 7/1, 2, 3, 5, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 18, 19, 22,

3- वृत्तरत्नाकरम् - 3/91 रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरणी ।

इयं गेहे लक्ष्मी रियममृतवर्तिर्नयनयो -
रसावस्या: स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस: ।
अयम्बाहु: कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसर:
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरह: । 1/38

तीस पद्यों में इसका प्रयोग हुआ है[1]।

शार्दूलविक्रीडित- जिस पद्य के प्रतिचरण में क्रम से मगण, सगण, जगण, सगण दो तगण और एक गुरू हो, उसे "शार्दूलविक्रिडित" छन्द कहते हैं । इसमें यति बारह और सात वर्णों पर होती है[2]।

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढ घनव्यथ: ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करूणो रस: । 3/1

पच्चीस पद्यों में शार्दूलविक्रीडित छन्द है[3]।

1- उ0च0 - 1/28, 29, 35, 38, 2/1, 2, 26, 27, 3/13, 30, 40, 44, 4/3, 10, 11, 12, 13, 14, 21, 5/9, 16, 26, 6/11, 14, 28, 30, 33, 35, 38, 39,

2- वृत्तरत्नाकरम्- 3/99

सूर्याश्ववैर्यसजस्तता: सगुरव: शार्दूलविक्रीडितम्।"

3- उ0च0 - 1/39, 2/9, 16, 28, 29, 30, 3/1, 37, 43, 45, 4/1, 5, 17, 20, 22, 24, 5/6, 4, 19, 27, 34, 35, 6/18, 40, 7/20

वसन्ततिलका- वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरू होते हैं तथा पादान्त में यति होती है।[1]

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरूर्वयं च ।। 1/9

छब्बीस पद्यों में इस छन्द का प्रयोग हुआ है।[2] यह छन्द माधुर्य गुण प्रधान तथा सुकोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी एवं श्रृंगार-परक भावों को अभिव्यक्त करने में अधिक समर्थ होता है।

मालिनी- जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से दो नगण, एक मगण और दो यगण हो, उसे "मालिनी" छन्द कहते हैं। इसमें यति आठ और सात वर्णों पर होती है।[3]

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं,
हृदयकमलशोषी दारूणो दीर्घशोकः ।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ।। 3/5

1- वृत्तरत्नाकरम् - 3/78
उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

2- उ0च0 - 1/7, 9, 14, 25, 36, 2/10, 11, 22, 33, 3/8, 11, 12
21, 26, 28, 47, 4/6, 23, 29, 5/10, 11, 24, 33,
6/7, 16, 19,

3- वृत्तरत्नाकरम्- 3/83
ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

कवि ने इसका प्रयोग करूण मन: स्थितियों को व्यक्त करने के लिए किया है। सोलह पद्यों की मालिनी छन्द में रचना हुई है[1]।

मन्दाक्रान्ता- इसके प्रत्येक चरण में क्रम से यगण, मगण, नगण, दो तगण और दो गुरू होते हैं। चार छ: और सात वर्णों पर यति होती है[2]। इसकी लय अत्यन्त सुन्दर होती है। यह श्रृङ्गार-परक भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी है।

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथ: शरण्यो
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।
क्रान्त्वा प्राप्त: स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा तु,
क्वायोध्याया: पुनरूपगमो दण्डकायां वने व: ॥ 2/13

मन्द्राक्रान्ता में अन्य पद्य भी दर्शनीय है[3]।

हरिणी- जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से नगण, सगण, मगण, रगण, सगण लघु और गुरू हो उसे "हरिणी" छन्द कहते हैं, यति छ: और सात वर्णों पर होती है[4]।

1- उ०च०- 1/24, 26, 27, 2/20, 21, 3/5, 19, 23, 25, 48, 5/2, 3, 13, 6/2, 24, 26,

2- वृत्तरत्नाकरम् - 3/95
"मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौगयुग्मम्।"

3- उ०च०- 1/33, 2/13, 14, 25, 3/6, 15, 36, 38, 4/26, 5/12 6/9, 22, 7/6

4- वृत्तरत्नाकरम् - 3/94
" रसयुगहयैन्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा "

पतनविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै
दंशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम् ।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै
रकृत मधुरैरङ्गानाम्मे कुतूहलमङ्गकैः ।। 1/20

अन्य पद्यों में भी हरिणी छन्द है ।[1]

इन्द्रवज्रा- इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दो तगण एक जगण और अन्त में एक रगण होता है ।[2]

एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ प्राप्तप्राचेतसावुभौ ।
आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ ।। 7/16

अन्य उदाहरण भी दर्शनीय है ।[3]

उपजाति- यह मिश्रित छन्द है । जिस पद्य में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा मिश्रित हो, उनमे "उपजाति" छन्द होता है । यह मिश्रण कई प्रकार का होता है - 1- एक चरण इन्द्रवज्रा का शेष उपेन्द्रवज्रा के । 2- एक चरण उपेन्द्रवज्रा का शेष इन्द्रवज्रा का । 3- दो दो चरण दोनों के ।[4]

1- उ0च0- 1/20, 23, 2/4, 3/22, 24, 31, 32, 4/19 5/28

2- वृत्तरत्नाकरम् - 3/58

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

3- उ0च0- 1/14, 44, 2/3, 4/8, 7/4, 16

4- वृत्तरत्नाकरम् - 3/32

अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा
पर:सहस्रं शरदां तपांसि ।
एतान्यदर्शन्गुरव: पुराणा:
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ।। 1/15

अन्य पद्यों में भी इसका प्रयोग हुआ है ।[1]

पुष्पिताग्रा- जिस पद्य के विषम चरणों में क्रम से दो नगण एक रगण और एक यगण हो तथा सम चरणों में एक नगण, दो जगण, रगण और एक गुरू हो, उसे "पुष्पिताग्रा" छन्द कहते हैं ।[2]

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम् ।
मणिमुकुट इवोच्छ्रित: कदम्बे
नदति स एष वधूसख: शिखण्डी ।। 3/18

इसके अतिरिक्त चार पद्यों में पुष्पिताग्रा छन्द है ।[3]

इसके अतिरिक्त नाटक में द्रुतविलम्बित[4] पृथ्वी,[5] प्रहर्षिणी[6] मञ्जुभाषिणी,[7] मालभारिणी,[8] रथोद्धता,[9] शालिनी,[10] वंशस्थ[11] और आर्या[12] छन्दों का भी प्रयोग हुआ है । इस प्रकार नाटक में कुल उन्नीस छन्द

1- उ0च0- 1/15, 2/6 3/35 4/42/5/16, 6/15, 27
2- वृत्तरत्नाकरम् - 4/10
अयुजि न युगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा
3- उ0च0- 3/20, 4/4, 5/4, 6/8
4- उ0च0- 1/27, 4/15
5- उ0च0 - 5/5, 6/1, 37
6- उ0च0- 1/30, 31, 40, 49, 2/39, 3/1, 18
7- उ0च0- 1/18, 3/4, 6/4, 17, 4
8- उ0च0- 5/8
9- उ0च0- 1/34, 37, 45,
10- उ0च0- 1/42, 3/2, 4/18, 5/30, 32
11- उ0च0- 6/25
12- उ0च0- 3/41, 6/13

प्रयुक्त हुए है ।

छन्द- कुन्दमाला नाटक में 138 पद्य 15 छन्दों में निबद्ध है । नाटक में अनुष्टुप छन्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । अनुष्टुप छन्दों की संख्या 51 है । अनुष्टुप छन्द के पश्चात् नाटक में वसन्त तिलका छन्द का प्रयोग हुआ है ।

अनुष्टुप- नाटक में 51 पद्यों में अनुष्टुप छन्दों की रचना हुई है -

सीता-विरह-वाष्पेण क्षरता नित्यदु:खिते ।
बाढम् आयासिते भूयो धूमेन मम लोचने ।। 4/12

अन्य श्लोकों में भी अनुष्टुप छन्द है ।[1]

वसन्ततिलका- नाटक में वसन्ततिलका के भी अनेक उदाहरण दिखाई देते है ।[2]

तुल्याऽन्वयेत्नु-गुणेति गुणोन्नतेति
दु:खे सुखे च सुचिरं सह वासिनीति ।
जानामि केवलम् अहं जन-वाद-भीत्या,
सीते त्यजामि भवतीं न तु भाव-दोषात् ।। 1/12

1- कुन्दमाला- 1/8, 10, 13, 15, 16, 20, 28, 31, 3/2, 15, 16, 4/2, 10, 12, 14, 17, 5/9, 14, 6/1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 27, 28, 34, 29, 32, 33, 39, 41, 42, 43,

2- कुन्दमाला- 1/3, 5, 12, 14, 18, 21, 22, 23, 24, 27, 29, 2/2 4/5, 9, 11, 13, 20, 22, 23, 5/3, 4, 15, 16, 6/31, 35, 44

पुष्पिताग्रा- ग्यारह पद्यों में पुष्पिताग्रा छन्द है ।[1]

भवति शिशु-जनो वयोऽनुरोधाद्
गुण-महतामपि लालनीय एव ।
व्रजति हिमकरोऽपि बालभावात्
पशुपति-मस्तक-केतकच्छदत्वम् ।। 5/12

उपजाति-

प्रकाम-भुक्ते स्वगृहाऽभिमानात्
सुहृज् जनेनाहित-याग-वह्नौ ।
आर्यस्य रम्ये भवनेऽपि वासस्
तव प्रवासे वनवास एव ।। 1/9

अन्य पद्यों में भी उपजाति छन्द की छटा दर्शनीय है ।[2]

शार्दूलविक्रीडित-

दावाग्नि क्रतु-होम-पावक-धिया यूपास्थया पादपान्
अव्यक्तं मुनि-गीत-साम-गतया भक्त्या शकुन्त-स्वनम् ।
वन्यास् तापस्-गौरवेण हरिणान् संभावयन् नैमिषे ।
सोऽहं यन्त्रणया कथं कथम् अपि न्यस्यामि पादौ भुवि ।। 4/4

अन्य स्थानों में भी शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है ।[3]

1- कुन्दमाला- 3/7, 4/1, 8, 18, 21, 5/1, 7, 12, 6/21, 22, 36

2- कुन्दमाला- 1/6, 9, 17, 3/9, 5/2, 8

3- कुन्दमाला- 1/30, 3/8, 14, 17, ; 4/4, 6, 7, 6/25, 26

मालिनी-

मरकत-हरितानामम्भसामेक-योनिर्
मद-कल-कलहंसी-गीत-रम्योपकण्ठा ।
नलिन-वन-विकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्
नरवर ! पुरतस् ते दृश्यते गोमतीयम् ।। 3/5

कतिपय अन्य पद्यों में भी मालिनी छन्द है ।[1]

आर्या- जिसके प्रथम और तृतीय चरण में बारह, द्वितीय में अठ्ठारह और चतुर्थ में पन्द्रह मात्रायें होती है, वह "आर्या" छन्द कहलाता है ।[2]

पूर्वं वन-प्रवासः पश्चाल्लङ्का ततः प्रवासोऽयम् ।
आसाद्य माम् अधन्यं दुःखाद् दुःखं गता सीता ।। 3/13

कुल पांच पद्यों में यह छन्द दर्शनीय है ।[3]

शिखरणी -

तरङ्गा वीजन्ते स- जल-कणिकान् शीत-मरूतम्
तथैते सङ्गीतं दधति कलहंसाः कल-गिरः ।
सखी-वच्छायेयं रमयति परिष्वज्य हृदयं,
वने शून्येऽप्यस्मिन् परिजन- वतीवाऽत्रभवती ।। 1/7

चार पद्यों में शिखरणी छन्द है ।[4]

1- कुन्दमाला- 3/1,5,12, 4/3,24
2- वृत्तरत्नाकरम्- पृ0 27
यस्याः पादे प्रथमे, द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।
3- कुन्दमाला- 2/1,3/4,13, 4/19, 5/6
4- कुन्दमाला- 1/7, 3/11, 6/23

स्रग्धरा- जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण हों और यति सात सात वर्णों पर हो, उसे "स्रग्धरा" छन्द कहते हैं।[1] यह छन्द ओजपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति के अनुकूल है।

नाद: पाताल-मूलात् प्रभवति तुमुलं पूरयन् व्योम-रन्ध्रं
पातक्लिष्टा इवैते दिशि गिरयो मन्द-मन्दाश्रु चरन्ति।
बद्धाऽऽनन्दा: समन्ताल् लवण-जलधयो मथ्यमाना इवासन्
सीमाल्लङ्घ्य वेगादुद-निधि-सलिलै: स्वानि वेला-वनानि ।। 6/2

चार श्लोकों में यह छन्द द्रष्टव्य है।[2]

इन्द्रवज्रा-

दु:खे सुखेष्व् अप्य् अपरिच्छदत्वाद्
आसूच्यम् आसीच् चिरम् आत्मनीव।
तस्यां स्थितो दोष-गुणाऽनपेक्षो
निर्व्याज-सिद्धो मम भाव-बन्ध: ।। 5/5

कुल तीन पद्यों में इन्द्रवज्रा छन्द है।[3]

इसके अतिरिक्त नाटक में मेरूरूपा,[4] मन्दाक्रान्ता,[5] रथोद्धता,[6]

1- वृत्तरत्नाकरम् - 3/103
म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।।

2- कुन्दमाला- 4/25, 6/24, 30, 45,

3- कुन्दमाला- 1/11, 5/5, 10, 13

4- कुन्दमाला- 1/19, 25, 26

5- कुन्दमाला- 3/3, 6 6/40

6- कुन्दमाला- 6/37

उपेन्द्रवज्रा[1] और वंशस्थ[2] छन्द का प्रयोग हुआ है । नाटक में कुल पन्द्रह छन्द प्रयुक्त हुए है ।

इसप्रकार भवभूति ने अपने नाटक उत्तररामचरितम् में उन्नीस छन्दों का तथा दिङ्नाग ने कुन्दमाला नाटक में पन्द्रह छन्दों का प्रयोग किया है । दोनों ही नाटककारों का पिङ्गल शास्त्र पर पूर्ण अधिकार है ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुण, रीति, छन्द, अलंकार आदि का दोनों ही नाटकों में यथास्थान आकर्षक प्रयोग हुआ है । दोनों की रचनाओं में उदात्त कल्पनाओं का सामंजस्य, प्रौढ़ शब्द चयन और सरसता आदि समग्र गुणों का सम्मिश्रण मिलता है किन्तु यदि दोनों की शैली और कलात्मक सौष्ठव पर दृष्टिपात करें तो दोनों में पर्याप्त अन्तर है ।

वैदर्भी रीति प्रधान उत्तररामचरितम् के रचियता/भवभूति का तीनों प्रकार के गुण-प्रसाद, माधुर्य तथा ओज पर समान अधिकार है, जबकि कुन्दमाला में कहीं भी ओजस्विता के दर्शन नहीं होते हैं । दिङ्नाग केवल प्रसाद तथा माधुर्य गुणों के प्रयोग में ही सिद्धहस्त है । भवभूति न केवल वैदर्भी के प्रयोग में कुशल है अपितु उन्हों ने आवश्यकता अनुसार गौडी रीति का भी प्रयोग किया है । दिङ्नाग केवल वैदर्भी के प्रयोग में ही कुशल है । वृत्तियों के प्रयोग में भी दिङ्नाग की अपेक्षा भवभूति अधिक सफल हुए है । दोनों नाटककारों की नादात्मक भाषा है । भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार है इसीलिए वे सरल भाषा का भी प्रयोग कर

1- कुन्दमाला- 1/4, 5/11, 6/38

2- कुन्दमाला- 3/10

सकते है और क्लिष्ट भाषा के प्रयोग में भी सिद्धहस्त हैं। वीर, रौद्र तथा वीभत्स रसों की अभिव्यंजना करते समय उनकी भाषा स्वत: ही क्लिष्ट हो जाती है और आवश्यकतानुसार उन्होंने कोमल-कान्त पदावली का भी प्रयोग किया है। इसके विपरीत दिङ्नाग की भाषा में कहीं भी क्लिष्टता के दर्शन नहीं होते हैं। उन्हों ने अपने नाटक में सरल, सरस तथा समास के आडम्बरों से रहित पदावली का प्रयोग किया है।

छन्द तथा अलंकार विवेचन से यह स्पष्ट है कि दोनों नाटकों में छन्द तथा अलंकार रस चर्वणा में कहीं भी बाधा-रूपेण दृष्टिगत नहीं होते हैं। दोनों ही नाटककार जहां रस की दृष्टि से सफल दिखाई देते हैं वहीं छन्द और अलंकार के प्रयोग में भी अपनी कुशलता के दर्शन कराते हैं। दोनों नाटककारों का प्रिय अलंकार "उपमा" है। भवभूति की उपमाएं प्रकृति-जगत, भाव-जगत तथा सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है जबकि दिङ्नाग ने अपने नाटक में सर्वत्र प्रकृति को ही उपमान बनाया है

संवादों की दृष्टि से दोनों समृद्ध नाटक हैं। भवभूति तथा दिङ्नाग दोनों ही नाटककारों के संवाद अत्यन्त मनोरम, चमत्कारपूर्ण, भावप्रवण तथा रसानुभूति कराने में समर्थ हैं। भवभूति की भाषा पात्रों तथा वातावरण के अनुकूल स्वभावत: कहीं कहीं क्लिष्ट और समास बहुल हो गई है इसके विपरीत दिङ्नाग ने भाषा को उत्तररामचरितम् के समान जटिल तथा दीर्घकाय समासों से बोझिल नहीं होने दिया है। चाहे भाषा जटिल हो या सरल किन्तु दोनों ही नाटककारों के संवाद पर्याप्त मंजे हुए, भाववाही तथा विभिन्न मनोभावों को व्यक्त करने वाले हैं।

प्रकृति के क्षेत्र में दिङ्नाग की अपेक्षा भवभूति का प्रकृति-चित्रण अधिक स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक है । दिङ्नाग ने प्रकृति के कोमल पक्ष के चित्रण में ही अधिक रूचि दिखाई है, परन्तु कहीं कहीं भवभूति के समान प्रकृति के भयावह रूप का भी वर्णन किया है, ये स्थल किन्तु अधिक चित्ताकर्षक नहीं बन सके हैं । अतएव यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि प्रकृति के घोर तथा प्रचण्ड स्थलों के वर्णन करने में, युद्ध क्षेत्र की भयंकरता के वर्णन करने में तथा मानवीय मनोविकारों और मन की भावनाओं के वर्णन करने में भवभूति दिङ्नाग से श्रेष्ठ है । इस प्रकार अभिनेयता को छोड़कर समस्त दृष्टियों से उत्तररामचरितम् नाटक कुन्दमाला से उत्तमहै । नाट्य सौन्दर्य की दृष्टि से कुन्दमाला और काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उत्तररामचरितम् अधिक सुन्दर है ।

सप्तम परिच्छेद

उपसंहार

गत छः परिच्छेदों में विभिन्न दृष्टियों से भवभूति कृत उत्तररामचरितम् तथा दिङ्नाग रचित कुन्दमाला के तुलनात्मक अनुशीलन का प्रयत्न किया गया है ।

प्रथम परिच्छेद में वाल्मीकि-रामायण तथा राम सम्बन्धी नाटकों पर प्रकाश डाला गया है । वाल्मीकि-रामायण हमारी संस्कृति का मूल-आधार है । इसमें भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन के विभिन्न उच्च आदर्शों का सम्यक् समावेश हुआ है । जैसे जैसे भारतीय संस्कृति का विकास हुआ वैसे वैसे संवेदना के स्तर पर कवियों और लेखकों के समक्ष रामकथा के नये पक्ष व नये आयाम उद्घाटित होते चले गये । रामकथा वाल्मीकि रामायण तक ही सीमित नहीं रही अपितु इसने भारत के अतिरिक्त अन्य देशों के लोगों को भी प्रेरित और प्रभावित किया है । यही कारण है कि रामकथा किसी एक देश भाषा या प्रदेश की सम्पत्ति होकर नहीं रही वरन् विविध प्रादेशिक भाषाओं में इसका प्रसार हुआ । उदाहरणार्थ -तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, कश्मीरी, पंजाबी असमिया, बंगला, गुजराती, मराठी तथा उड़िया आदि भाषाओं में अनेक रामायण लिखी गयी । हिन्दी भाषा में तुलसीदास कृत " रामचरित-मानस" न केवल धार्मिक ग्रन्थ है अपितु एक अत्यन्त साहित्यिक कृति के रूप में भी प्रख्यात है । इसने हिन्दुओं के अतिरिक्त बौद्धों, जैनियों तथा मुसलमानों को भी प्रभावित किया है । यह रामायण अनेक विदेशी विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र रही है और आज भी वाल्मीकि-रामायण पर अनेक शोध कार्य हो रहे हैं । अतः रामायण और रामकथा की इस व्यापकता के आधार पर यह कह सकते हैं कि उसमें अवश्य ही ऐसी कोई विलक्षण शक्ति निहित है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । इस प्रकार इस कथा को आधार बनाकर बहुत बड़ा मौलिक और

व्याख्यात्मक साहित्य रचा गया तथा मूल कथा और मूल संवेदनाओं को सुरक्षित रखते हुए इसके अनेक रूपान्तरण भी किये गये है ।

सरस, भावात्मक, करूणोत्पादक होने के कारण रामकथा तथा वाल्मीकि-रामायण को अपना उपजीव्य बनाकर गीर्वाणवाणी प्रणेता अनेक काव्य-शिल्पियों ने महाकाव्य, चम्पूकाव्य, संदेश-काव्य, रूपक और कथा काव्य आदि के माध्यम से अपनी काव्यमन्दाकिनी को प्रवाहित किया है । भवभूति तथा दिङ्नाग ने भी वाल्मीकीय-रामायण की रामकथा से प्रेरित होकर अपने नाटकों का प्रणयन किया । इनके पूर्व तथा पश्चात् भी रामकथा को आश्रय बनाकर अनेक नाटक लिखे गए जिनमें भासरचित प्रतिमा-नाटकम् तथा अभिषेक नाटकम्, भवभूति रचित महावीर चरितम् तथा उत्तररामचरितम्, दिङ्नाग रचित कुन्दमाला, शक्तिभद्र प्रणीत आश्चर्यचूड़ामणि, मुरारि कृत अनर्घराघवम्, राजशेखर रचित बालरामायणम्, जयदेव कृत प्रसन्नराघवम्, दामोदर मिश्र कृत हनुमन्नाटकम् और राजचूड़ामणि विरचित आनन्दराघवम् प्रसिद्ध नाटक हैं । इसके अतिरिक्त रामकथा विषयक कतिपय अन्य नाटक भी लिखे गये हैं । कुछ तो अप्रकाशित हैं और कुछ का केवल उल्लेख काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है । इसप्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि के समय से लेकर अनेक रामकथा-विषयक नाटक लिखे जा चुके हैं और सभी नाटकों का आधार मुख्य रूप से वाल्मीकि द्वारा वर्णित रामकथा ही रही है ।

इन सभी रामकथाश्रयी नाटकों की कथा का विश्लेषण करने से विदित होता है कि सभी नाटककारों ने चमत्कार सृष्टि और रस परिपाक की दृष्टि से अनेक परिवर्तन किये हैं, क्यों कि इन्हों ने उन्हीं प्रसंगों

को मूल आधार बनाया है, जो नाटकीय, मार्मिक, हृदयस्पर्शी तथा अभिनेय हैं । इनमें से कुछ नाटक श्रृंगारिक संरचना विधान पर आधारित है तथा कुछ अद्भुत रस सम्पन्न हैं । भवभूति तथा दिङ्नाग ने भी वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड से प्रेरित होकर अपने नाटक की रचना की है । इन दोनों नाटककारों ने अपने नाटकों में जो सबसे बड़ा परिवर्तन किया है वह है वाल्मीकीय रामायण की दु:खान्त कथा को राम और सीता का मिलन कराकर सुखान्त बनाना । वाल्मीकि-रामायण का प्रधान रस करूण है किन्तु नाटकों को सुखान्त बनाकर दोनों नाटककारों ने श्रृंगार को ही अंगी रस स्वीकार किया है । जो बहुत बड़े साहस का कार्य है । नाटकों में परिवर्तन का एक यह भी कारण विदित होता है कि वे सारे पात्र जो राम से सम्बन्धित रहे हैं उन्हें नाटककारों ने निरपराध सिद्ध करने का प्रयास किया है ।

नाटककारों ने अपने नाटकों में चाहे जिस रूप में भी परिवर्तन किये हो किन्तु उनके नाटकों में राम और सीता का वही उदात्त चरित्र देखा जाता है जो वाल्मीकि-रामायण में स्थापित है । युगों से राम और सीता कम से कम इस देश के लिए केवल चरित्र विशेष नहीं रह गये हैं अपितु एक विशिष्ट चारित्रिक आदर्श और सांस्कृतिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं ।

सभी राम-कथा पर आश्रित नाटकों में से उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला अपने भाव-सौन्दर्य तथा कला सौष्ठव के कारण अत्यन्त विशिष्ट है । दोनों ही नाटक अपने उपजीव्य ग्रन्थ वाल्मीकि-रामायण के अत्यन्त निकट है ।

द्वितीय परिच्छेद भवभूति तथा दिङ्नाग के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा जीवनवृत्त से सम्बन्धित है, प्राय: संस्कृत कवियों ने अपने विषय में मौन का ही अवलम्बन लिया है । संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति को सर्वाधिक सम्मानित स्थान मिला है । महाकवि भवभूति ने अपनी तीनों रचनाओं में अपना थोड़ा बहुत परिचय दिया है जिससे उनके व्यक्तित्व और जीवन-वृत्त के विषय में ज्ञान होता है । भवभूति के विषय में बहुत कुछ तथ्य ज्ञात होने के कारण विद्वानों ने उनका समय लगभग 680 ई0 से 750 ई0 उचित माना है । कल्हण ने राजतरंगिणी में भवभूति तथा वाक्पतिराज दोनों को ही यशोवर्मा का आश्रित कवि बताया है । राजतरंगिणी के अनुसार ललितादित्य का शासन-काल 693 ई0 से 736 ई0 था । इसके अतिरिक्त राजशेखर ने बालरामायणम् में एक श्लोक लिखा है और उसमें कहा है कि पहले वाल्मीकि कवि हुए, तत्पश्चात् वहीं भर्तृमेण्ठ हुए, वहीं भवभूति हुए और अब वहीं राजशेखर है । इस प्रकार राजशेखर अपने आपको भवभूति का अवतार मानते हैं । इनका समय 880 ई0 से 920 ई0 है । राजशेखर को अपने आपको भवभूति का अवतार बताना विशेष महत्त्वपूर्ण बात है । अत: भवभूति का समय 650 ई0 के बाद मानना चाहिए । इसका विस्तृत विवेचन इस अध्याय के गत पृष्ठों में किया गया है ।अत: उनका समय सप्तम शती का उत्तरार्ध तथा अष्टम् शताब्दी का पूर्वार्ध मानना चाहिए ।

भवभूति के जन्म-स्थान के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है किन्तु इस विषय में समुचित सामग्री उनके तीनों नाटकों में उपलब्ध होती है । जिनके आधार पर विद्वानों ने उनका जन्म स्थान विदर्भ प्रान्त में पद्मपुर नामक नगर बताया है किन्तु पद्मपुर की वास्तविक

स्थिति कहाँ है इस विषय में विद्वानों में अब भी अनेक मत हैं ।

भवभूति के पूर्वज कश्यप गोत्र के ब्राह्मण थे । वे वैदिक नियमानुसार पंचाग्नियाँ, हवन करते थे तथा व्रतों का अनुष्ठान करते थे । इसी कुल में महाकवि नाम के एक प्रख्यात महानुभाव उत्पन्न हुए । जिनकी सॉतवी पीढ़ी में भवभूति उत्पन्न हुए । भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था । श्रीकण्ठ इनकी उपाधि थी । भवभूति नाम के सम्बन्ध में वीरराघव ने अपने विचार व्यक्त किये हैं कि इन्हें भगवान शंकर ॥भव॥ ने स्वयं भिक्षुरूप में आकर विभूति अथवा ऐश्वर्य प्रदान किया । इसीलिए इनका नाम भवभूति पड़ा ।

भवभूति की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं - 1- महावीरचरितम् 2- मालतीमाधवम् 3- उत्तररामचरितम् यह तीनों ही नाटक हैं । महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् वाल्मीकि-रामायण की राम-कथा पर आधारित है । मालतीमाधवम् एक प्रेम कथानक है ।

संस्कृत के विद्वानों एवं कवियों में प्राचीन काल से अपना परिचय देने की प्रवृत्ति न होने के कारण दिङ्नाग का समय और व्यक्तित्व विवाद का विषय बन गया है । संस्कृत जगत में दिङ्नाग नाम के एक से अधिक व्यक्ति हैं और किस दिङ्नाग ने कुन्दमाला नाटक की रचना की यह भी विवाद का विषय है । बौद्ध दर्शन में भी दिङ्नाग नाम के एक आचार्य हुए । जिनको बौद्ध-न्याय का पिता कहा गया है । इसका विस्तृत रूप से विवेचन इस अध्याय के गत पृष्ठों में किया गया है । साम्प्रदायिक दृष्टि से विचार करने पर कुन्दमाला के प्रणेता बौद्ध दिङ्नाग से भिन्न दिङ्नाग प्रतीत होते हैं । क्यों कि कुन्दमाला में वर्णित कथावस्तु बौद्ध सम्प्रदाय से सम्बन्धित न होकर वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित है । बौद्ध दिङ्नाग

रामायण की कथा से सम्बन्धित रचना क्यों करेगा । अत: बौद्ध दिङ्नाग के अतिरिक्त कोई अन्य दिङ्नाग कुन्दमाला के प्रणेता है । कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि कुन्दमाला उत्तररामचरितम् से पूर्ववर्ती रचना है । विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि दिङ्नाग भवभूति से परवर्ती कवि है । भवभूति का समय लगभग 688 ई0 से 750 ई0 तक निश्चित किया जा चुका है । इसप्रकार भवभूति का समय निर्धारित कर लेने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 733 ई0 में यशोवर्मा के आश्रित कवि वाक्पतिराज ने भवभूति का उल्लेख किया है । पर दिङ्नाग या कुन्दमाला की कहीं भी चर्चा नहीं की है । यदि उस समय दिङ्नाग रहे होते तो उनका भी उल्लेख किया गया होता अत: यह निश्चित हो जाता है कि 733 तक कुन्दमाला के प्रणेता दिङ्नाग से यह भारत भूमि अनलंकृत रही होगी । इसके अतिरिक्त रामचन्द्र-गुणचन्द्र कृत नाट्य-दर्पण में तथा विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण में भी कुन्दमाला का उल्लेख मिलता है । किसी भी ग्रन्थ की प्रसिद्धि में लगभग एक शताब्दी का समय अवश्य लग जाता है । उक्त साक्ष्यों के आधार पर 7वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 10वीं शताब्दी के मध्य ही दिङ्नाग का समय निश्चित किया जा सकता है । कुछ विद्वान दिङ्नाग को चतुर्थ शताब्दी का स्वीकार करते हैं । जो उचित प्रतीत नहीं होता है । अत: दिङ्नाग का समय दसवीं शताब्दी मानना उचित है ।

कवि ने कुन्दमाला नाटक की भूमिका में स्वयं को अरालपुर का निवासी बताया है । यह बहुत सम्भव है कि यह अरालपुर प्रयाग में विद्यमान वर्तमान युग का अरैल रहा हो जो गंगा यमुना के दक्षिणी तट पर स्थित है । उनकी कृति के माध्यम से हमें उनके अन्तर्जगत का परिचय तो मिलता है किन्तु किसी जानकारी के आभाव में उनका वाह्य व्यक्तित्व

अनिश्चित और अपरिचय के अन्धकार में डूबा है । आचार्य दिङ्नाग की केवल एक ही कृति "कुन्दमाला" उपलब्ध है । यह भी राम-कथा पर आधारित है ।

इसप्रकार महाकवि भवभूति आचार्य दिङ्नाग से पूर्ववर्ती है और भवभूति का समय अष्टम शताब्दी तथा दिङ्नाग का समय दशम शताब्दी है। दोनों नाटककार शैवमतावलम्बी हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही नाटक वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित है । वाल्मीकि-रामायण को उपजीव्य बनाकर भी नाटककारों ने उसके निषेधात्मक अन्त को स्वीकार नहीं किया है । भवभूति और दिङ्नाग दोनों ही अपने नाटकों को श्री राम और सीता के मिलन पर समाप्त करते हैं और इस तरह नाट्य शास्त्र में स्वीकृत सुखान्त नाटकों की धारणा की पुष्टि करते हैं । इस प्रकार दोनों ही कवियों का अन्तर्जगत एक दूसरे से बहुत मिलता है ।

तृतीय परिच्छेद में नाटकों के वस्तु-विन्यास पर विचार किया गया है ।भवभूति तथा दिङ्नाग ने शास्त्रीय परम्पराओं का पूर्णतया पालन किया है तथा उन सभी तत्त्वों का सन्निवेश अपने इस नाटक में किया है, जो "वस्तु तत्त्व" का आवश्यक अंग है ।

उत्तररामचरितम् सात अंकों का तथा कुन्दमाला छ अंकों का नाटक है ।वस्तुसिद्धान्त की दृष्टि से उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला की कथावस्तु प्रख्यात कोटि की है । इसका मूल स्रोत वाल्मीकि-रामायण का उत्तरकाण्ड है, जिसमें राम और सीता की करूण कहानी वर्णित है किन्तु अपने नाटकों में नाटकीयता लाने के लिए नाटककारों ने कुछ परिवर्तन किये हैं, जो मुख्य परिवर्तन है, वह है राम और सीता का मिलन ।

इसके आधार पर इन नाटकों को "मिश्र कोटि" में रक्खा जा सकता है किन्तु अधिकांश विद्वानों ने प्रख्यात कोटि में ही रक्खा है ।

दोनों नाटक शास्त्रनिर्दिष्ट अर्थप्रकृतियों, पंच अवस्थाओं तथा सन्धियों से समन्वित हैं । दोनों नाटकों में अर्थप्रकृतियों का सार्थक प्रयोग हुआ है । उत्तररामचरितम् में पाँचों अर्थप्रकृतियां प्रयुक्त हुई हैं किन्तु कुन्दमाला में "पताका" तथा "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृतियों का आभाव है । नाटकों में सन्धियों का सन्निवेश बड़ा ही सुन्दर तथा स्पष्ट हुआ है । सूच्य कथांशों के अन्तर्गत अर्थोपक्षेपकों का प्रचुर प्रयोग नाटककारों ने किया है । उत्तररामचरितम् में विष्कम्भक, प्रवेशक तथा चूलिका का और कुन्दमाला में प्रवेशक तथा चूलिका का प्रयोग हुआ है । अवस्थाओं का प्रयोग भी नाटकों में सम्यक्रूपेण हुआ है । इसप्रकार उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला का इतिवृत्त सुख-दुख आदि अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव से युक्त होते हुए अन्त में सुखात्मक स्थिति में ही समाप्त होता है । उत्तररामचरितम् का आरम्भ द्वादशपदा नान्दी से तथा कुन्दमाला का आरम्भ नमस्कारात्मक नान्दी से होता है । दोनों ही नाटकों में नान्दी तथा भरतवाक्य का प्रयोग हुआ है । कुन्दमाला में पताकास्थानक का प्रयोग नहीं हुआ है जबकि उत्तररामचरितम् में पताका-स्थानक सुन्दर तथा स्पष्ट है ।

दोनों नाटकों की शास्त्रीय समीक्षा करने पर यह निश्चित हो जाता है कि दिङ्नाग ने कुन्दमाला नाटक की कथावस्तु का आधार उत्तररामचरितम् को ही बनाया है । अतः दोनों का उपजीव्य-उपजीवक सम्बन्ध है । वाल्मीकि-रामायण की रामकथा पर आधारित इन नाटकों में स्वरूप तथा विषय आदि की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है । मुख्य घटनाएं

भी प्राय: एक सी है । कथावस्तु सम्बन्धित शास्त्रीय विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शास्त्रोक्त लक्षणों की कसौटी पर दोनों नाटक खरे उतरते हैं । भवभूति तथा दिङ्नाग ने यथासंभव शास्त्रीय परम्पराओं तथा मर्यादाओं का पालन किया है ।

नाटकों में अनेक घटनाओं को नाटकीय रूप देने के लिए कवियों ने मूलकथा में अनेक परिवर्तन किये हैं । अपने कथानक की प्रेरणा वाल्मीकि-रामायण से ग्रहण करते हुए भी अपने नाटक की परिकल्पना में भवभूति तथा दिङ्नाग दोनों ने ही स्थान स्थान पर अपनी मौलिक कल्पना शक्ति और नाटकीय अन्तर-दृष्टि का परिचय दिया है । दोनों ने ही ऐसे अनेक प्रसंगों और परिस्थितियों की परिभावना की है जो न केवल नाटकीय कौतूहल की सृष्टि करती है अपितु रस की निष्पत्ति में भी सहायक होती है । उत्तररामचरितम् में लव का युद्ध लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु के साथ दिखाकर औचित्य का निर्वाह किया है । दोनों नाटकों में छाया सीता की कल्पना की गई है जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं मिलती है । दोनों नाटकों में राम तथा सीता के पुनर्मिलन द्वारा निश्चल और उदात्त दाम्पत्य-प्रेम की परिणति को सुखमय बनाकर उच्च आदर्श की स्थापना की गई है । दिङ्नाग ने वाल्मीकि-आश्रम गोमती नदी के समीप बतलाया है । सीता आरम्भ में भगवती गंगा से कुन्द-पुष्पों की माला अर्पण करने की प्रार्थना करती है किन्तु श्री राम को यह माला गोमती नदी के समीप दिखाई देती है, जो अनुचित सा प्रतीत होता है ।

भवभूति की नाट्यकला पर कुछ-कुछ कालिदास का प्रभाव दिखाई देता है किन्तु भवभूति की अपेक्षा दिङ्नाग में अनेक पूर्ववर्ती कवियों (कालिदास तथा भास) का प्रभाव अधिक दिखाई देता है । दोनों कथानकों

की संकल्पना तथा संरचना की तुलनात्मक समीक्षा करने पर यह निश्चित हो जाता है कि दोनों की शैली की अपनी निजी विशेषताएं हैं । यद्यपि दोनों ही नाटक है किन्तु जहां भवभूति अपने नाटक में गम्भीर और संयमित भावक-प्रवणता की सृष्टि करते हैं, वहीं दिङ्नाग छोटी-छोटी अनेक बातों के द्वारा भावनाओं के उच्छलन पर अधिक बल देते हैं । यह अन्तर बहुत बड़ा न होते हुए भी दोनों नाटकों के भाव-जगत और वातावरण को परस्पर भिन्न कर देता है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि दोनों ही नाटकों में अपना कथानक सम्बन्धी वैशिष्ट्य है । उत्तररामचरितम् की अपेक्षा कुन्दमाला नाटक सरस, सरल तथा अभिनेय है ।

चतुर्थ परिच्छेद में पात्रों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला के नायक राम धीरोदात्त नायक है । शास्त्रों में उल्लिखित उनमें लगभग सभी गुण विद्यमान है । दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ इन चारों प्रकार के नायकों में से श्री राम अनुकूल नायक हैं क्यों कि उनका एक ही स्त्री अर्थात् अपनी पत्नी सीता के प्रति ही अनुराग देखा जाता है, यहां तक कि सीता निर्वासन के पश्चात् सीता की स्वर्ण-प्रतिमा को अर्धांगिनी मानकर उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया । उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला दोनों ही नाटकों में श्री राम को दो विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है - राजा और पति । इस प्रकार नाटककारों ने श्री राम को आदर्श पति तथा राजा के रूप में चित्रित किया है ।

उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला नाटक की नायिका सीता

स्वकीया नायिका है । नारी जनोचित सभी गुण उनमें पूर्ण रूप से विद्यमान है । नाटककारों ने सीता के चरित्र का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया है । सीता राम से अनन्य प्रेम करती हैं । मानवेतर प्राणियों के प्रति भी सीता का वात्सल्य देखा जाता है किन्तु उत्तररामचरितम् में सीता के सौम्य शील में प्रकृति प्रेम अधिक देखा जाता है ।

नाटकों में लक्ष्मण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है । दोनों ही आलोच्य नाटक सीता के निर्वासन को केन्द्र बिन्दु बनाकर चलते हैं और वे लक्ष्मण ही हैं जिन्हें श्री राम सीता को वन में निर्वासित करने का उत्तरदायित्व सौंपते हैं । भवभूति ने लक्ष्मण के चरित्र का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है किन्तु कुन्दमालाकार ने लक्ष्मण के चरित्र को पूर्ण विकसित किया है । अटूट भ्रातृ-प्रेम, अनन्य आत्म समर्पण, श्रद्धा, भक्ति और नि:स्वार्थ सेवा के लक्ष्मण अनुपम आदर्श है । इसके अतिरिक्त उत्तररामचरितम् में जनक, कौशल्या और भगवती गंगा आदि भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । दोनों ही नाटकों में वाल्मीकि महत्त्वपूर्ण पात्र है । सभी फलित कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुए हैं । वाल्मीकि आर्ष-दृष्टि सम्पन्न रामायण के प्रणेता है । वे नि:स्पृह, उदारता की प्रतिमूर्ति हैं ।

बाल-स्वभाव का जैसा प्रभावोत्पादक चरित्र भवभूति ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है वैसा दिङ्नाग नहीं कर सके हैं । लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का नाटक में अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण हुआ है । उत्तररामचरितम् में लव और कुश बारह वर्षीय बालक हैं जब कि कुन्दमाला में उनकी आयु दस वर्ष बताई गई है । दोनों नाटकों में कुश लव की अपेक्षा स्वाभिमान प्रकृति का बालक है । लव और कुश दोनों के सौन्दर्य में अपनी ओर आकृष्ट करने की अद्भुत शक्ति है । भवभूति ने लव और कुश के चरित्र का

अत्यन्त विशद एवं विस्तृत चित्रण किया है, जब कि दिङ्नाग की कृति में उनके चरित्र का रेखांकन मात्र है ।

संस्कृत नाटकों में विदूषक का महत्त्वपूर्ण स्थान है । भवभूति की आदर्श और गम्भीर प्रकृति के अनुकूल तथा करूणा से ओतप्रोत उत्तररामचरितम में विदूषक तथा प्रतिनायक का सर्वथा आभाव है । कुन्दमाला में विदूषक राम का अतरङ्ग मित्र है । आरम्भ से अन्त तक विदूषक राम का कल्याण चाहने वाला, दयालु, उदार तथा विश्वासी मित्र के रूप में दिखाई देता है । वह कहीं कहीं अपनी मूर्खता से सामाजिकों को हँसा देता है ।

उत्तररामचरितम् में मुरला तथा तमसा सखी के रूप में सदा साथ रहती है तथा वासन्ती दण्डकारण्य की प्रिय सखी है । कुन्दमाला में वेदवती, यज्ञवती तथा प्रथमा सीता की सखियां हैं । ये सभी विषम-परिस्थितियां आने पर सीता को सान्त्वना देती हैं ।

दोनों नाटकों में दिव्य पात्रों की कल्पना की गई है । उत्तररामचरितम् में तमसा, मुरला, गोदावरी, पृथ्वी, गंगा, वासन्ती आदि दिव्य पात्रों की कल्पना की है इसके विपरीत कुन्दमाला में पृथ्वी को ही दिव्य पात्र के रूप में चित्रित किया है । उत्तररामचरितम् में लगभग तीस पात्रों का और कुन्दमाला में लगभग बीस पात्रों की सृष्टि हुई है । दोनों नाटकों में पुरूष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों की संख्या कम है । उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला में नारी-पात्रों की रचना में भवभूति तथा दिङ्नाग ने उत्तम नाट्यकौशल का परिचय दिया है । कल्पना तथा अनुभूति द्वारा कवियों ने सीता के प्रेम-भाव की मार्मिक एवं अभूतपूर्व अभिव्यंजना

की है - कहीं माता के, कहीं पत्नी के, कहीं सखी के तो कहीं बेटी के रूप में । इसप्रकार भवभूति तथा दिङ्नाग ने कोमल और उदार भावों से प्रेरित होकर चरित्रों का अंकन नहीं किया है अपितु भावनाओं की गम्भीरता को समझकर उसे प्रभावशाली बनाया है । भावों की गहनतम अनुभूति को परख लेने में भवभूति दिङ्नाग से अधिक सफल हुए हैं ।

पंचम परिच्छेद में उत्तररामचरितम् तथा कुन्दमाला की रस-परिपाक की दृष्टि से विवेचना की गई है । दोनों नाटकों का मूल-स्रोत वाल्मीकि-रामायण है । वाल्मीकीय रामायण का अन्त करूण रस में होता है किन्तु दोनों ही नाटककारों ने इसके विपरीत अपने अपने नाटकों में "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" को अंगी रस स्वीकार किया है । इस परिच्छेद में इसका शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया है ।

उत्तररामचरितम् का अंगी रस कौन सा है? इस विषय में बहुत अधिक मतभेद है । कुछ विद्वान करूण रस को नाटक का प्रधान रस मानते हैं और कुछ विद्वान विप्रलम्भ श्रृंगार को नाटक का अंगी रस स्वीकार करते हैं । उत्तररामचरितम् में वास्तव में मृत्यु होती नहीं है वरन् परिस्थितिवश समझ ली जाती है इसलिए ये करूण विप्रलम्भ के ही क्षेत्र में आता है । राम के आदेश से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आते हैं किन्तु राम यह समझ लेते हैं कि हिंस्र पशुओं द्वारा सीता का भक्षण कर लिया गया होगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि सीता की मृत्यु होती नहीं है, वह छाया रूप में विद्यमान है और सामाजिक भी तृतीय अंक में छाया रूप में सीता के दर्शन कर लेते हैं । इसप्रकार राम और सीता

का वियोग आत्यन्तिक नहीं है, राम केवल भ्रमवश ही इसे आत्यन्तिक समझ लेते हैं । अन्त में वाल्मीकि आदि के आशीर्वाद से राम का सीता, लव और कुश से मिलन होता है और उनके आत्यन्तिक वियोग का कोई अवसर नहीं रह जाता । अत: नाटक में करूण रस न मानकर "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" को अंगी रस मानना चाहिए । कुछ विद्वान " एको रस: करूण एव निमित्तभेदाद्" आदि के आधार पर नाटक में करूण रस मानते हैं किन्तु मेरे विचार से यह श्लोक सम्पूर्ण नाटक के लिए नहीं अपितु तृतीय अंक की कुछ घटनाओं के लिए कहा गया है ।

उत्तररामचरितम् के अनुसार कुन्दमाला में भी "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" को ही अंगी रस मानना चाहिए क्यों कि दोनों ही नाटकों का कथानक तथा प्रमुख घटनाएं आरम्भ से अन्त तक एक समान है । कुन्दमाला में स्पष्ट रूप से "करूण विप्रलम्भ श्रृंगार" कहा जा सकता है क्यों कि राम को पूर्ण विश्वास है कि सीता जीवित हैं । एक स्थल पर तो राम स्वयं कहते हैं कि मेरा मनोरथ अब शीघ्र ही पूरा होने वाला है । इसप्रकार जहां कुन्दमाला में आरम्भ से विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन किया गया है वहां उत्तररामचरितम् में आरम्भ से अन्त तक करूण भाव देखा जाता है । दोनों ही नाटकों में विप्रलम्भ श्रृंगार की लगभग दसों अवस्थाओं का चित्रण हुआ है ।

अंग रसों के दृष्टिकोण से उत्तररामचरितम् में वीर, संयोग श्रृंगार हास्य, अद्भुत, रौद्र तथा वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है । लव तथा चन्द्रकेतु के युद्ध में वीर रस का चित्रण हुआ है किन्तु कुन्दमाला में वीर रस का नितान्त आभाव है । उत्तररामचरितम् में अन्य रसों की समुचित अभिव्यंजना करते हुए श्रृंगार तथा करूण की दो विशाल धाराओं का अपूर्व संगम करने में महाकवि भवभूति ने असाधारण कुशलता का परिचय दिया है ।

दिङ्नाग केवल अद्भुत और वात्सल्य की निष्पत्ति में ही सफल हुए हैं ।

यद्यपि दोनों ही नाटकों का अंगी रस "विप्रलम्भ श्रृंगार" ही है तथापि दोनों नाटकों की रस संयोजना में एक सूक्ष्म अन्तर भी है । उत्तररामचरितम् में करूणा अधिक है जब कि कुन्दमाला में श्रृंगार तत्त्व की प्रधानता है । इसप्रकार दोनों नाटकों में अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण आदि विरह की लगभग सभी दशाओं का चित्रण हुआ है ।अतएव यह कहना सर्वथा उचित है कि रस निष्पत्ति की दृष्टि से दोनों ही नाटक उत्तमकोटि के हैं तथा सामाजिकों को रस का पूर्ण आस्वादन कराने में समर्थ हैं ।

षष्ठ परिच्छेद में नाटकों का मूल्यांकन उसके कला-सौन्दर्य और शैली-शिल्प के आधार पर किया गया है ।गुण, रीति, संवाद, अलंकार, छन्द बिम्ब-विधान और प्रकृति-चित्रण जैसे आवश्यक तत्त्वों के अनुशीलन पर उनकी शैली की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है ।

वैदर्भी रीति प्रिय कवि कालिदास के पश्चात् भवभूति संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । उनकी सर्वप्रियता का कारण उनकी परिष्कृत और प्रसाद-गुण युक्त शैली है । भवभूति तथा दिङ्नाग दोनों वैदर्भी रीति प्रिय कवि हैं । श्रृंगार और करूण दोनों रसों के लिए वैदर्भी उपयुक्त रीति है । अत: उत्तररामचरितम् में वैदर्भी का ही प्रयोग हुआ है परन्तु लव और चन्द्रकेतु के युद्ध के प्रसंग में तथा प्रकृति के भयावह चित्रण में गौडी रीति का प्रयोग हुआ है । नाटक में प्रसाद, माधुर्य तथा ओज तीनों गुणों की ही प्रधानता है । कुन्दमाला नाटक की भाषा प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी रीति है किन्तु कहीं कहीं माधुर्य गुण की भी छटा दिखाई देती है ।

कुन्दमाला नाटक की भाषा सरल, सरस और दीर्घ समासों से रहित है किन्तु कहीं कहीं दीर्घ समास रचना में भी दिङ्नाग ने अपना

कौशल दिखाया है । अत: दिङ्नाग की शैली सुगम एवं परिमार्जित है। इनकी शैली भास से प्रभावित लगती है । नाटक में क्लिष्ट शब्द-योजना नहीं की गई है इसलिए छोटे-छोटे वाक्यों से परिपूर्ण शैली स्वत: ही परिस्थिति के अनुकूल भावों को व्यक्त करती है । भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार है क्यों कि इनकी भाषा पात्रों की परिस्थिति एवं मन: स्थिति के अनुरूप कहीं जटिल तो कहीं सरल, स्पष्ट तथा हृदयग्राही हो जाती है । संस्कृत नाटकों की परम्परा के अनुसार ये दोनों नाटक भी गद्य-पद्य मिश्रित है । नाटकों में गद्य का प्रयोग कथानक को आगे बढ़ाने के लिए किया गया है तथा पद्य भाग का प्रयोग पात्रों के मनाभावों को अभिव्यक्त करने के लिए हुआ है । दोनों ही नाटकों के पद्यांश अत्यन्त मधुर तथा कल्पनापूर्ण है, उनमें अनेक सुन्दर उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया गया है ।

उत्तररामचरितम् में वृत्तियों का सार्थक प्रयोग हुआ है । कवि ने नियमानुसार वीर रस में सात्त्वती वृत्ति का, रौद्र रस में आरभटी वृत्ति का तथा सभी रसों में प्रयुक्त होने के कारण भारती वृत्ति का इस नाटक में प्रयोग किया है । कुन्दमाला में कैशिकी वृत्ति का प्रयोग हुआ है किन्तु उसका स्पष्ट उल्लेख नाटक में नहीं मिलता है । नाटकों में अनेक सुन्दर सूक्तियाँ उपलब्ध हैं जिनसे उनकी रचनाएं अधिक रोचक तथा प्रभावोत्पादक बन गई है ।

नाटक में छन्दों का प्रयोग छन्दों की अपनी प्रकृति के अनुरूप हुआ है । अनुष्टुप छन्दों का नाटककारों ने सर्वाधिक प्रयोग किया है । अलंकारों का प्रयोग भी नाटकों में उत्कृष्ट तथा सुन्दर है ।

दोनों ही नाटकों में उपमा अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है ।

भवभूति की यह विशेषता है कि उन्हों ने अनेक स्थलों पर मूर्त की तुलना अमूर्त से की है । "उपमा सम्राट", कवि कालिदास की रचनाओं में भी यह वैशिष्ट्य अल्प-मात्रा में मिलता है । उपमा अलंकार के पश्चात् उत्तररामचरितम् में उत्प्रेक्षा तथा रूपक का प्रयोग हुआ है । इसप्रकार नाटकों में अलंकारों का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक है । कुछ छन्दों तथा अलंकारों का प्रयोग नाटकों में समान रूप से हुआ है । बिम्ब-विधान आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक है । दिङ्नाग के बिम्ब प्रकृति से गृहीत है जब कि भवभूति के बिम्बों में मानवीय जगत, प्रकृति जगत के अधिक दर्शन होते हैं ।

दोनों ही नाटकों में प्रकृति का आलम्बन तथा उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है । भवभूति के लिए प्रकृति निर्जीव न होकर सजीव है। जैसा कि कालिदास की कृतियों में प्राप्त होता है । उसमें भी हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख की वैसी ही प्रतिक्रिया और अभिव्यक्ति होती है जैसी चेतन मानव में । प्रकृति मानवीय रूप धारण कर पात्रों की हर प्रकार से सहायता करती है । भवभूति ने प्रकृति के कोमल तथा भयावह दोनों ही रूपों का रोचक चित्रण किया है । यद्यपि दिङ्नाग के प्रकृति चित्रण में भवभूति जैसी रोचकता और आत्मीयता तो नहीं है फिर भी वह पर्याप्त स्वाभाविक और प्रभावशाली है । दिङ्नाग ने भी भवभूति के समान प्रकृति के कोमल रूप के चित्रण के साथ साथ अल्प स्थलों पर भयावह रूप को भी चित्रित किया है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि कथावस्तु के अतिरिक्त कुछ कल्पनाएं, संवाद, वर्णन आदि में दोनों नाटकों में बहुत समानता है । नि:सन्देह ही दोनों का उपजीव्य उपजीवक सम्बन्ध है । दोनों में ही प्रथम से द्वितीय अंक में अनेक वर्षों का अन्तर है । कल्पनाओं में छाया-सीता-कल्पना का

साम्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है । दोनों रचनाओं के अधिक साम्य से यह प्रकट होता है कि कुन्दमाला उत्तररामचरितम् से प्रभावित नाटक है ।

अनेक विद्वानों तथा आलोचकों ने उत्तररामचरितम् को भवभूति का कीर्ति-स्तम्भ माना है । इस नाटक का संस्कृत नाट्य साहित्य में एवं संस्कृत काव्यों में विशिष्ट स्थान है । इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए कुछ साहित्य समीक्षकों ने कहा है कि -

"उत्तरे रामचरिते, तु भवभूतिर्विशिष्यते ।"

भवभूति की विशेषताओं पर मुग्ध होकर किसी भावुक आलोचक ने कह दिया है-

कवय: कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकवि: ।

कुन्दमाला नाटक का अधिक प्रचार व प्रसार न होने के कारण इसे लोगों द्वारा उतना स्नेह नहीं प्राप्त हुआ है लेकिन फिर भी दिङ्नाग एक कुशल नाटककार, एक सफल संवादलेखक तथा प्रशंसनीय युगद्रष्टा के रूप में संस्कृत साहित्य में सदैव स्मरण किये जाते रहेंगे ।

सहायक ग्रन्थ-सूची

1- अभिषेक-नाटकम्-टीकाकार-मोहन देव पन्त, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी- 1974

2- अनर्घराघवम्- व्याख्याकार- आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960

3- अभिज्ञान-शाकुन्तलम् - डा० कपिल देव द्विवेदी, लीडर प्रेस इलाहाबाद - 1985

4- अभिनव भारती - अभिनव गुप्त

5- उत्तररामचरितम् - डा० लाल रमायदुपाल सिंह, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद - 1985

6- उत्तररामचरितम् - कपिलदेव द्विवेदी

7- उत्तररामचरितम् की शास्त्रीय समीक्षा, डा० सत्य नारायण चौधरी, चौखम्बा ओरियन्टालिया, 1980

8- कुन्दमाला, चुन्नी शुक्ल, साहित्य भण्डार सुभाष बाज़ार, मेरठ 1972

9- काव्यादर्शः, महाकवि दण्डी विरचित, व्याख्याकार आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी - 1972

10- काव्यालंकार - महाकवि रूद्रट विरचित, पंडित रामदेव शुक्ला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी - संवत् 2023 वि०

11- काव्य प्रकाश, व्याख्याकार सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 1, द्वितीय संस्करण

12- काव्य बिम्ब स्वरूप और संरचना, डॉ० पी आदेश्वर राव, कालिन्दी कावेरी प्रकाशन - 1978

13- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति , व्याख्याकार - डॉ० बेचन झा, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी

14- दशरूपकम् - श्री धनञ्जय विरचित, व्याख्याकार - डा0 श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ- 1973 ई0

15- ध्वन्यालोक:, आनन्दवर्धनाचार्य विरचित, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी संवत् 2028 वि0

16- नाट्यशास्त्रम् - व्याख्याकार - श्री बाबू लाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान 1972

17- नाट्य दर्पण - श्री रामचन्द्र गुणचन्द्र विरचित, प्रधान सम्पादक डा0 नगेन्द्र, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली - 1961

18- प्रतिमा नाटकम् - भास विरचित

19- प्रसन्नराघवम् - श्री जयदेव कवि विरचित, वासुदेवशर्मणा, पाणिनी नई दिल्ली 1982

20- प्राच्य एवं पाश्चात्य नाट्यकला - डा0 सुदर्शन मिश्र, भारत मनीषा, बनारस 1974

21- वाल्मीकि - रामायण उत्तरकाण्ड, द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक - राम नारायण लाल, इलाहाबाद 1950

22- वाल्मीकि-रामायण एवं संस्कृत नाटकों में राम - डा0 मंजुला सहदेव विमल प्रकाशन, 413 ए, रामनगर गाज़ियाबाद, 1979

23- भवभूति के नाटक - डा0 ब्रज वल्लभ शर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, इलाहाबाद प्रेस - 1973

24- भवभूति और उनकी नाट्य कला, डा0 अयोध्या प्रसाद सिंह, पटना विश्वविद्यालय, पटना

25- भारतीय दर्शन, डा0 वाचस्पति गैरेला, लोक भारती प्रकाशन

26- महावीर-चरितम्, व्याख्याकार राम प्रताप त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन 15 ए, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद

27- मालती-माधवम् , महाकवि भवभूति विरचित

28- मेघदूतम् , डा० बाबू राम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा नवीन संस्करण

29- रघुवंशम् , श्री कनक लाल ठाकुर , चौखम्बा - संस्कृत - सीरिज - आफिस , विद्याविलास प्रेस , बनारस

30- रस सिद्धान्त , डा० नगेन्द्र , नेशनल पब्लिशिंग हाऊस , दिल्ली 1964

31- रस प्रक्रिया, डा० शंकर देव अवतरे, सैनी प्रिंटर्स, दिल्ली 1975

32- विक्रमोर्वशीयम् , रामाभिलाष त्रिपाठी , मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी - 1980

33- वृत्तरत्नाकरम् , श्री धरानन्द शास्त्री , मोती लाल बनारसी दास, 1975

34- वक्रोक्तिजीवितम् - आचार्य कुन्तक विरचित

35- स्वप्नवासवदत्तम् - जयपाल विद्यालंकार , मोती लाल बनारसी दास प्रथम संस्करण - 1968

36- संस्कृत नाटक में अतिप्राकृत तत्त्व - डा० मूलचन्द्र पाठक, देवनागर प्रकाशन, जयपुर

37- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , द्वितीय भाग, नाट्य साहित्य (प्रथम खण्ड) राम जी उपाध्याय, नव साहित्य प्रेस इलाहाबाद 1973

38- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास , डा० कपिल देव द्विवेदी साहित्य संस्थान इलाहाबाद 1979

39- साहित्य दर्पण , विद्या वाचस्पति, श्री शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युञ्जय औषधालय , ऐवट रोड, लखनऊ

40- संस्कृत नाटक , ए बी कीथ , मोती लाल बनारसी दास 1965

41- संस्कृत साहित्य का इतिहास , वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1967

42- सरस्वतीकाण्ठाभरण - भोजराज विरचित , ए0आर0बरूआ, पब्लिकेशन बोर्ड , गोहाटी , 1969

43- हनुमन्नाटकम् - व्याख्याकार - पं0 जगदीशमिश्र काव्यतीर्थ, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी 1967